राग-रेखा

*

राय-रेखा

(विजयनगर-राज्य उपन्यास-माला का चौथा पुष्प)

लेखक

गुणवंतराय आचार्य

*

अनुवादक

परदेशी
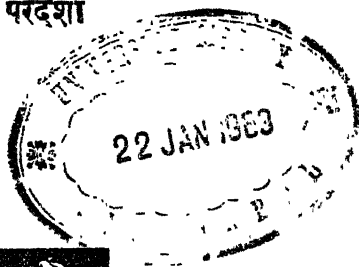
वोरा एण्ड कंपनी, पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड

३, राउन्ड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई २

आरम्भ से पूर्व

राय हरिहर और कृष्णाजी नायक के पश्चात् विजयनगर के विजयधर्म-राज्य-सम्बन्धी उपन्यासों की परम्परा में ऐतिहासिक महत्त्व का नया ग्रंथ 'राय रेखा' है। रायरेखा का अर्थ राय की रेखा है, जिसके अनुसार, विजय-धर्म के राजत्वकाल में राज्य और समाज के प्रत्येक सदस्य के अधिकार और उत्तरदायित्व की सीमारेखा अंकित कर दी गई थी। प्रत्येक वर्ण, वर्ग और विश्वास के नागरिक को संतुष्ट और सुखी करने के लिए मर्यादा की पुन-र्स्थापना हुई थी, इसलिए कि देश के सभी हिस्से और समाज के सभी व्यक्ति एकमत और एकमन होकर विदेशी वैरी के विरुद्ध लड़ सकें और फिर से भारतीय स्वतन्त्रता की पुण्य-पताका सर्वत्र फहराए।

रायरेखा इसी दिशा में एक महान् प्रयत्न है, इसी सिद्धांत और विचार के प्रणेता उन महापुरुषों की; भारतीय जनता चिरकाल तक ऋणी रहेगी, जिन्होंने समाज को संगठित करने के निमित्त यह अचूक लक्ष्य और मार्ग अपनाया। आततायी तुर्कों को नीचा दिखाने के लिए, सदा के लिए उनकी पैशाचिक प्रवृत्तियों से मातृभूमि को मुक्त करने के लिए आज से कई सौ वर्ष पूर्व जिस व्यवस्था की सर्जना हुई, वह आज भी चिर नवीन प्रतीत होती है। और चाहे तो आज का भारत भी इस सुव्यवस्था से लाभ उठा सकता है।

धर्म का धर्म से वैर नहीं। कोई चाहे हिन्दू हो या मुसलमान। धर्म का अधर्म से वैर है। जब एक जाति अपने स्वार्थवश दूसरी जाति के अधिकारों का हनन करती है, तब जातीय विद्वेष वस्फोट होता है और फूट के बीज फलते हैं। और वे अपने फूलों की गंध से विदेशी आक्रान्ताओं को स्वदेश का सर्वस्व अपहरण करने के लिए लालायित करते हैं। यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि जिस देश में फूट नहीं फूटती, उस देश पर कभी बाहरी आक्रमण नहीं होता। बाहरी हमला इस तथ्य का द्योतक है कि देश विशेष भेद-विभेद से विशृंखल और जर्जर हो रहा है।

रायरेखा इन्हीं रोगों की रामबाण औषधि है। विस्मय की बात तो यह है कि यह अनुभूत औषधि वर्तमान परिस्थितियों में भी उतनी ही गुणकारी सिद्ध हो सकती है, जितनी उपयोगी पुराकाल में प्रमाणित हुई थी !

राय हरिहर और कृष्णाजी नायक के अनुवाद इन्हीं पंक्तियों के लेखक ने किए, पाठकों ने उन्हें स्वीकार कर, उनकी सराहना की, यह सत्य अभिनन्दनीय है। अब रायरेखा का अनुवाद भी आपके हाथ में है। आशा है, इसे भी अपने पूर्वज उपन्यासों की परम्परा में पसंद किया जाएगा। पाठकों की उस स्वीकृति की समस्त श्रेयधारा उपन्यास के मूल लेखक श्री गुणवंतराय आचार्य की ओर प्रवाहित होनी चाहिए।

—परदेशी

अनुक्रम

	पूर्वरंग	६
१	समर के समाचार	१६
२	भालारी बिबोया	२७
३	राजसंन्यासी की अकाल मृत्यु	३७
४	मनुष्यता का मोल	४१
५	एक शर्त्त	५६
६	गोमती	८४
७	राय-रेखा	१०१
८	परचेरी	११५
९	मोहलत	१३०
१०	दो मुसाफिर	१५५
११	परचेरी का विद्रोह	१६
१२	ये निर्बल-निस्सहाय !	१७८
१३	तुम्हारी धर्मपत्नी !	१९५
१४	सिंहनी का कराल कोप	२०५
१५	बिच्छू का डंक	२१३
१६	विराट प्रतिमा	२३९
१७	हरि करे सो होय !	२५३
१८	अभिषेक	२६२
१९	राय-रेखा	२९४
२०	फिर......	२८३

* पूर्वरंग

भारतवर्ष में आकर तुर्क उत्तर में स्थायी रूप से रहने लगे ।

साम्प्रदायिक विद्वेष, पारस्परिक वैमनस्य, प्रतिकूल साधन, मत और मन; तथा प्रतिकूल योग एवं विरोधी दृष्टि रखकर भी वे चक्रवर्ती बनने के स्वप्न देखते थे, लेकिन, एकता और संगठन के विपरीत कार्य करते थे, पड़ोसी सीमा पर सदैव अशांति रहती थी । परिणाम में, तुर्क आए और उन्होंने भारत भर को रौंद डाला !

ईस्वी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी में आरम्भ यह आंतक—वैयक्तिक सरफरोशी, सामूहिक निराशा और जाति या अहंवाद की पृष्ठभूमि के बीच, ईस्वी सन् की तेरहवीं शताब्दी में, अंततया तुंगभद्रा नदी के तीर पर, आकर खड़ा हो गया !

अलाउद्दीन खिलजी ने सिकंदर सानी बनने के स्वप्न देखे और उन्हें प्रत्यक्ष में भी प्राप्त किया । अपने गुलामों में से एक—जो सिपहसालार बन गया था, उस मलिक काफूर को तुङ्गभद्रा को पार करने के लिए भेजा !

और मलिक काफूर ने दक्खन में 'कालयवन' की भयंकर उपाधि पाई । उसने देवगिरि का विनाश किया । व्याकरण-ग्रंथों के रचयिता पंडित हेमाद्रि, भागवत को वर्तमान रूप देनेवाले प्रसिद्ध पंडित बोपदेव तथा 'चक्रवर्ती' बनने का स्वप्न देखनेवाले समकालीन राजाओं में इस स्वप्न को अधिकांश में प्राप्त करने वाले समर-केसरी सिंहण राजा के पादपद्मों से पुनीत एवं राजा रामचंद्र के रामराज्य के रूप में यशस्वी देवगिरि इस मलिक काफूर

के कहर से काँप उठा। इसने कर्नाटक के धुरंधर राजा बल्लालदेव होयसल-राज को हराया। इस कलियुगी कालयवन को बल्लालदेव कर्नाटक की राजधानी द्वारसमुद्र में दण्डवत करने पर बाध्य हुआ। इसने मलाबार का विध्वंस किया। और तुंगभद्रा और कावेरी के बीच दिल्ली की सल्तनत का झंडा फहराया।

इस कालयवन ने अपार लूट की। अनेकानेक गाँव जलाकर भस्म कर दिए। कई मंदिर तोड़ डाले।

कावेरी के पार था पांड्य संघ। अनादि काल से अचल, अपराजेय। इस संघ को मलिक काफूर चलायमान तो न कर सका, परंतु उसमें फूट के बीज बो सका।

पांड्य संघ की राजधानी थी मदुरा।

राजा के अवसान-समय तीन पुत्र थे। बड़ा सोमैया नायक, जिसने युवराजपद छोड़कर ननिहाल में निवास किया। राजा की प्रिय रानी का पुत्र था वीर पांड्य, वही मदुरा का राजा बना।

वीर पांड्य का भाई था सुन्दर पांड्य, उसने चाहा कि पितामह का गौरव उसे प्राप्त हो। तत्कालीन सुन्दर पांड्य, सोमैया और वीर पांड्य के दादा का नाम भी सुन्दर पांड्य था। यह असह्यवीर्य संघपति कावेरी पार कर तुंगभद्रा तक—कालाग्नि की भाँति घूम गया! इस प्रदेश पर अपने प्रभुत्व का पहरा बिठाया। इसने मजबूर कर दिया कि कर्नाटकराज को वनों में वास करना पड़ा। चोलों को तितर-बितर कर दिया। चेरमंडल को तहस-नहस कर डाला। मलाबार को सूखे पत्तों की तरह उड़ा दिया। दो सौ दुर्गों को मिट्टी में मिलाया।

समकालीन अध्ययन की दृष्टि से, सुन्दर पांड्य 'अरि मदमर्दन' था। उसके पैरों में गिरने वाले राजाओं के राजमुकुट के रत्नों के रंगों से बनने-वाले इन्द्रधनुष के बीच वह इन्द्र के समान सुशोभित होता।

ऐसे समरकेसरी, अरि-मद-मर्दन दादा के पौत्र को भी इस 'सुन्दर' नाम की ख्याति से मोह हो चला। लेकिन, पांड्य संघ में जब इसकी चाल न चल सकी तो यह मलिक काफूर की सेना को मदुरा में बुला लाया! अंत

में, इसकी आशा निराशा में बदल गई; सारा गणित विफल रहा! इस काले नाग को कटु अनुभव हुआ! तुर्कों ने मदुरा पर विजय पाई और इसे—सुन्दर पांड्य को अगूंठा दिखा दिया!

मलिक काफूर ने सुन्दर पांड्य को 'राजा' नहीं बनाया, स्वयं मदुरा का सुल्तान बन बैठा।

उसने मदुरा के परम वैष्णव धाम, रंगनाथ के मंदिर को अपना स्थायी आवास बनाया!

श्री रंगनाथ—भागवतों का परमतीर्थ! श्रीमद् वल्लभाचार्य का पुण्यधाम। उनके भाँजे भगवान रामानुज का प्रमुख स्थल। दूसरे भाँजे भगवान वेदांतदेशिक का भी मुख्य धाम!

मदुरा की विजय के समय भगवान वेदांतदेशिक महाराज, रंगनाथ की मूर्ति लेकर, मदुरा छोड़कर चले गए। अनेकानेक स्थानों में वे साधु, भिक्षुक, ब्राह्मण और चारण-भाट के रूप में, विविध छद्मवेशों में रहे और मूर्ति की निरन्तर रक्षा करते रहे!

अन्त में कालमुख भगवान विद्याशंकर ने इस मूर्ति का संरक्षण स्वीकार किया। इस ओर से मुक्त होकर भगवान वेदांतदेशिक महाराज भागवतधर्म की विजयपताका फहराने के प्रयास में निरत हुए।

इस समय दक्षिण में भाषाएँ चार थीं। चारों भाषाओं के अपने-अपने राज्य थे। कन्नड़, तमिल, तेलुगु और मलयालम। चारों के बोलनेवाले भीतर-भीतर आपस में झगड़ते थे।

चार सम्प्रदाय थे—भागवत, जैन, वीरशैव और शैव। इन चारों सम्प्रदायों के आचार्य भी परस्पर झगड़ते थे। और उनके अनुयायी भी आंतरिक विग्रह और विद्वेष के विकास में किसी से पीछे न थे।

इन सारे बखेड़ों और झगड़ों से परे रहने वाले थे वीर वणिक्! आंतरिक अशांति से रक्षित रहने के लिए ये अपनी-अपनी सेना रखते।

वीर वणिक विदेशों तक व्यापार करते। अपने व्यापारिक हितों के लिए राज्यों से भी संघर्ष करते और अपने व्यापार की सुरक्षा के अतिरिक्त

किसी चीज़ की ओर ध्यान न देते। वे अपने आप को 'नाना—छप्पन देशों' के निवासी बतलाते !

प्रान्तीय राज्यों के पारस्परिक युद्धों से इनका कोई सम्बन्ध न था। एक ओर चीन से लेकर फ़ारस (ईरान) तक, देश-विदेश में व्यापार करते !

कलियुगी कालयवन आया। संहार के पश्चात् लौट गया। उधर दिल्ली में तख़्तनशीनी के दावेदार बढ़ गए। संघर्षण में मलिक काफ़ूर मारा गया।

उन दिनों तेलुगु प्रदेश से ऊपर की ओर स्थित, वारंगल राज्य—एक मात्र स्वाधीन राज्य था।

दिल्ली की सल्तनत के दावेदारोंमें, अंततया, गयासुद्दीन तुग़लक़ गद्दी पर बैठा। तब से दिल्ली की सल्तनत के सामने धन की तंगी का सवाल सदैव उठता रहा।

अलाउद्दीन खिलजी को प्राप्त अनन्त लूट के अपार धन को भी लज्जित करने वाला राजकीय भांडार अचानक कहाँ ओझल हो गया, छिपा दिया गया, कोई जान न सका! आज तक भी कोई पता न पा सका।

इसलिए दिल्ली की सल्तनत पर काबिज, अनुभवी और अक्लमंद माने जाने वाले मलिक गाज़ी उर्फ़ ग़यासुद्दीन तुग़लक़ जैसे सुल्तान को भी अपने मलिकों के संतोष और सिपाहियों को रोटी देते रहने के लिए लूट की राह अपनानी पड़ी। और लूट के योग्य, यदि कोई भारतीय भाग अवशिष्ट रहा था तो वह तुंगभद्रा के उस पार का भारत था।

अपनी इस राह को आसान बनाने के लिए उसे वारंगल पर चढ़ाई करनी पड़ी।

इसी अवसर पर कर्नाटकराज वीर वल्लालदेव के मन में सप्तसामंतचक्र-चूड़ामणि बनने की आकांक्षा जागृत हुई।

और इसी अवसर पर भगवान वेदांतदेशिक को भागवत धर्म की दिग्विजय के निमित्त वल्लालदेव को प्रेरित करने का धर्म-कर्म सूझा।

यह सब देखकर तपस्वी विद्याशंकर महाराज समाधि से जागे और जाग-कर देखा तो दुनिया बदल गई थी, दुख हुआ, बाहर आए।

उन्होंने समस्त पथक को विजयधर्म का बोध प्रदान किया। चारों भाषाओं, चारों सम्प्रदायों और चारों समयों के एकीकरण का शुभ प्रस्ताव रखा।

सबने उनके प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया।

और नौजवान राय हरिहर इस विजयधर्म की पताका की छाया में स्थापित राज्य का महामंडलेश्वर बना!

वारंगल का विनाश हुआ। अनन्त प्रयत्न पर दिल्ली के सुल्तान की विजय हुई।

इस सर्वनाश के बीच केवल एक व्यक्ति जीवित बचा। वह था पांड्य देश का दास—लेकिन, वारंगल के युद्ध में अपने शौक की खातिर शामिल हुआ था। और उसकी तलवार का जौहर देख तुर्क-म्लेच्छ दंग रह गए थे।

अकेला वह जीवित बचा और विजयधर्म के अनुशासकों ने उसे वारं-गल के स्वर्गवासी राजा प्रतापरुद्रदेव के दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया। इस वीर पुत्र का नाम था—कृष्णाजी नायक।

कृष्णाजी नायक और विजयधर्म के विजयराज्य के तुंगभद्रा-सीमान्त प्रदेश के संरक्षक काम्पिलगढ़ के महाराज के बीच संघर्ष शुरू हुआ। गंगू कन्याली नामक ब्राह्मण की सहायता से कृष्णाजी नायक ने पंपावन प्रदेश के राजा शंबूर—किरातराज को मारकर वारंगल पर अधिकार किया।

उस समय ग़यासुद्दीन तुग़लक का बेटा मुहम्मद तुग़लक़ दिल्ली का सुल्तान था। वह इस उपाय में था कि दिल्ली राज्य के अपने बखेड़ों से बाहर देख सके। उस समय मलिकों यानी लश्कर रखनेवाले और मसनदी सरदारों और अमीरों यानी मुल्की जागीरदारों के बीच सल्तनत में भारी मतभेद उत्पन्न हो गया था। सशस्त्र संघर्षण भी हुए। एक ओर रूपये की

तंगी, दूसरी तरफ़ ये झगड़े-फ़साद ! इन दोनों से बचने का एक ही मार्ग था—नई विजय प्राप्ति और नए युद्धों की रचना करना ! यदाकदा मलिकों को अमीरों से लड़वाना और यदाकदा अमीरों को प्रोत्साहन देकर मलिकों को वश में रखना।

मुहम्मद तुग़लक़ युद्धवादी व्यक्ति नहीं था। वह सहज शांतिवादी था। कवि था। दार्शनिक था। लेखक था। कलाकार था। लेकिन वह भूल गया कि किस समय कविता लिखी जाए और किस समय तलवार उठाई जाए ! और युद्ध में उसने भयंकर कठोरता और क्रूरता का परिचय दिया। यदि विद्वता में वह प्राचीन पण्डित को पीछे छोड़ देता था तो युद्ध के समय, अपनी भीषणता के कारण, अलाउद्दीन खिलजी और मलिक काफ़ूर को भी मात करता था !

विजयधर्म के विजयराज्य को अपनी राज्य-रचना, और साधन-साधना के निमित्त, दक्षिण में तुर्कों के द्वारा विनष्ट राज्यों के खंडहरों पर विजय-राज्य के राजभवन के शिलान्यास के हेतु विशेष अवधि की आवश्यकता थी। भगवान् विद्याशंकर ने इसके लिए सात वर्ष की समय-सीमा निश्चित की थी।

उधर तुग़लक़ के लिए, अमीरों और मलिकों को निरन्तर युद्ध में व्यस्त, त्रस्त रखना ज़रूरी था किन्तु युद्ध के लिए धन की आवश्यकता थी और दिल्ली के सुलतान के यहाँ धन का अभाव था। इसलिए, उसने चमड़े का सिक्का चलाया और अमीरों-मलिकों पर पूरी निगरानी रखने की सुविधा देखकर, राजधानी दिल्ली से हटाकर देवगिरि लाया।

इधर कृष्णाजी नायक ने गंगू कन्याली की सहायता से वारंगल पर विजय पाई। गंगू कन्याली बाहर-बाहर तो भारत का शत्रु था, भीतर-भीतर वह हितैषी था। वह जानता था कि इस समय विजयधर्म की स्थापनार्थ अवधि और अवसर की प्रतीक्षा है, अतः उसने अपने साथी मलिक रहमान तग़ी से गुजरात में बलवा करवाया !

काम्पिलगढ़ का पालेर हसन अपने स्वामी गंगू कन्याली के सहयोग से अमीर पद तक पहुँच गया।

उस समय मदुरा में सुल्तान एहसानशाह राज्य करता था।

उस समय दादैया सोमैया विजयधर्म के नए राज्य का महा-करणाधिप था।

कर्नाटकराज वीर बल्लालदेव तृतीय, भगवान् विद्याशंकर को अपना राज्य सौंपकर, राजसंन्यासी के रूप में चारों ओर विचरण कर रहा था।

राय हरिहर को चारों सम्प्रदायों और धर्मों के चारों धर्माचार्यों का सहयोग प्राप्त हुआ था। प्रमुख दुर्गों के सभी दुर्गपालों का योग भी सुलभ था।

इस महान सहयोग को समस्त प्रजा में वितरित कर, इसके बीज को जन के मन में बो कर, विजयधर्म राज्य की स्थापना करना—राय हरिहर का कर्तव्य था, पुरुषार्थ था, जीवन मरण का प्रश्न था।

अब पढ़िए—

: १ : समर के समाचार

विक्रम संवत् १३९२ का साल। महाशिवरात्रि की तिथि। शैवों और वीर शैवों के महोत्सव की रात्रि!

भागवत भी इस महोत्सव को मनाते। भाव्य अथवा निगंठ भी उत्सव मनाते! मूल जैन संघ के जैन लोग भी समारोह का सुआयोजन करते! वे गोमटाभिषेक का प्रबन्ध करते!

इस समय, इस दिन मंदिरों में महापूजा होती है। अग्रहारों में धर्मध्यान किया जाता है। भगवान् रामानुज का जन्म-दिवस मनाया जाता है। जैनों के महाआचार्य भद्रबाहु की स्मृति में गोमटाभिषेक का उत्सव और भगवान बसव द्वारा दक्षिण में प्रारम्भ 'भूरुद्रस्थापना महोत्सव' भी इसी दिन मनाया जाता है।

भूरुद्र से तात्पर्य है—धरती पर सदेह विचरण करनेवाले ग्यारह रुद्रों के मानवावतार। वे हैं वीर शैवों के ग्यारह महातपस्वी संन्यासी। इनके पीठ भगवान् बसव ने शिवरात्रि के दिन स्थापित किए थे, अतः प्रतिवर्ष उनका धर्मोत्सव इस दिवस मनाया जाता है।

इस प्रकार तुंगभद्रा और कावेरी के मध्य स्थित अखिल कुंतल प्रदेश में आज का दिन अद्वितीय माना जाता था।

लोग नए वस्त्र पहनते। बड़े-बड़े मेले लगते। निकट और दूर के मंदिरों में साठ घड़ी और आठ प्रहर, भाँति-भाँति की पूजाएँ होतीं। आरती के घण्टनादों से दिशाएँ गूँज उठतीं।

आसपास का वातावरण इस कोलाहल से प्रतिध्वनित होता। धूप और गंध से महक उठता।

वीर वणिकों के जुलूस निकलते। वीर वणिक, यों तो, भागवत भी होते हैं और नि ंठ भी। शैव और वीर शैव भी होते हैं, परन्तु सबसे ऊपर और अधिक ये व्यापारी होते हैं।

ये कुंतल, तेलंग, तमिल, चोल और छप्पन देश के निवासी बतलाए जाते हैं। सभी अपने-अपने धर्म-क्षेत्र में बड़े-बड़े दान और अनुष्ठान-कार्य करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर रूपए-पैसे से राज्य की भी सहायता करते हैं।

किन्तु इनकी इन दो बातों से ही मातृभूमि की शृंखला की कड़ियाँ जुड़ती हैं। इन दो के अतिरिक्त, ये न तो किसी धार्मिक बखेड़े में भाग लेते हैं और न राजनैतिक समस्याओं में ही अपना पैर फँसाते हैं। इन्हें तो ये भले और इनका व्यापार भला।

इनके मन में एक अभिमान—हम चक्रवर्ती हैं। पूर्व, पश्चिम और दक्षिण समुद्र, समुद्र के उस पार खत्ता और बालीद्वीप तक और तुँगभद्रा के इस पार—दूर गुजरात, सौराष्ट्र, प्रभास, सारस्वत, कच्छप, बंग, होर्मभ, ब्रह्मा, मलय देश आदि देशों में भी हमारी आवाज गूँजती है। इन कई देशों और प्रान्तों में हमारे लोग रहते हैं। अनेक राजाओं की सेना से बड़ी सेना हमारे पास है। हम ही सात सागर पार पहुँचकर, अनेक संकट उठाकर देश-विदेश का सामान अपने देश में लाते हैं और उसे समृद्ध बनाने का प्रयत्न करते हैं। हमें राजा की सीमा और धर्मगुरु के मतभेद से क्या प्रयोजन ?

और हमारा ध्वज अलग। हमारा मार्ग भिन्न। हमारे स्वार्थ अलग।

इस प्रकार कुंतल देश में, तमिल देश में और तेलंग देश में, वीर वणिकों का विचित्र तंत्र था। श्रवणबेलगोला उनकी मुख्य भूमि थी और अहिच्छत्र उनकी प्रमुख नगरी थी।

इसलिए इतना बड़ा उत्सव होने पर उनके काफ़िलों और संघों का आगमन स्वाभाविक ही है। और उनके एक संघ का मतलब हुआ, चलता-फिरता एक मेला।

अतएव, खास और शहरों में, बाजारों और मार्गों में, गाँवों और कस्बों में अपार आवागमन फैला था। बड़े-बड़े कामदार चोंगे पहने राजकीय अधिकारी, भारप्रद बड़े-बड़े शाल-दुशाले ओढ़े ब्राह्मण, रेशमी परिधान में सुसज्जित सुन्दरियाँ—आदि का अनन्त प्रवाह बह रहा था।

राह-रास्तों में पालकी ढोनेवाले कहारों की अविरत ध्वनियाँ, घोड़ों के गले के घुंघरू और बैलों की घण्टियाँ और घुंघरू, रथों के झाँझर और सिपाहियों की पदचाप—सबने मिलकर अखंड कलकल और कोलाहल का सर्जन किया था।

मार्ग के दोनों ओर छोटे-छोटे छात्र (झोपड़ी जैसे विरामस्थल) थे और स्थान-स्थान पर भाँति-भाँति के भिक्षुक कपड़ा बिछाकर बैठे थे। उत्सव-प्रेमी जनता का उत्साह इतना अमित था कि इन भिखारियों के सामने अगणित जीतलों (ताँबे का सिक्का) के ढेर लग गये थे। इतना ही नहीं, सांध्य-गगन में चमकनेवाले शुक्र नक्षत्र के समान, जीतल के ढेरों में यत्र तत्र चांदी के फनोस और सोने के वराह नामक सिक्के भी प्रस्तुत थे!

इस व्यस्त राजपथ पर एक अश्वारोही चला जा रहा था।

उसका अश्व ऊँचे क़द का था। उसे देखकर उसकी बढ़िया नस्ल का परिचय मिलता था। बड़ी देर तक उबलते रहे दूध की तरह उसका खासा बादामी रंग था। उसका उठाव, नाज़ुक पर मजबूत शरीर, अगले पैरों के मोड़ और पिछले पैरों की ठसक, गरदन का मोड़, कनेर के पतले पत्तों जैसे पतले-पतले कान—यह सब देखकर यह सहज ही स्पष्ट हो जाता कि यह शानदार विदेशी घोड़ा मंगलौर के बंदरगाह पर बिका है। और कम से कम एक हज़ार वराह इसका मूल्य है!

लेकिन इस समय, इस घोड़े के मोड़, इसकी ख़ूबसूरत रेखाएँ और गुण जैसे विलय हो गए थे। यह थका हुआ था और इसका अंग-अंग शिथिल हो रहा था! थके हुए धनुष की तरह उसकी कमान नर्म और झुकी-झुकी-सी थी! कान झुके हुए थे। चाल थकी-थकी-सी थी। मुँह पर फेन के परत जम गए थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानो जीवंत थकान

घोड़े के रूप में सदेह खड़ी है। इस मूल्यवान पशु की ऐसी थकी-हारी दशा देखने वाला दर्शक, उसके सवार पर रोप और चिढ़भरी नज़र उठाता !

लेकिन सवार की आँखें देखकर, देखनेवालों का रोष दूर हो जाता। क्योंकि, सवार घोड़े से भी ज़्यादा थका हुआ था।

यदि घोड़े की देह में सभी प्रकार की नज़ाकत से भरा हुआ अरबी उठाव था तो सवार के शरीर में पहाड़ों और घाटों का भराव था। किसी विशाल प्रस्तर खंड से कुशल शिल्पी ने महामूर्त्ति का अंकन किया हो और विधाता ने उस मूर्त्ति में प्राण की प्रतिष्ठा कर दी हो, ऐसी प्रचंड प्रतिमा थी घुड़सवार की !

काले-भँवर उसके केश थे। तनिक सँकरा कपाल, पतला-सा भरा-भरा चेहरा। बड़ी काली आँखें। साधारण आदमी की जाँघ-जैसे विशाल भुजदड—ऐसा प्रतीत होता था मानो असाधारण शक्ति घोड़े पर सवार हो कर चली जा रही है !

तथापि असामान्य थकाव उसकी देह को दबा रही थी, पाताल में पठा रही थी। जैसे उसकी आँखों की दृष्टि और कानों की श्रवणशक्ति ओझल हो गई है। किसी कद्दावर पेड़ का पुतला मानो निष्प्राण-सा चला जा रहा है।

अतिथकित अश्व अपने आरोही की शक्ति-प्रेरणा से आगे बढ़ा जा रहा था अथवा अतिथकित अश्वारोही अपने अश्व के उत्साह को अपने में पाकर आगे बढ़ रहा था—कहना कठिन था !

उसके चेतनाहीन हाथ की प्राणहीन उँगलियों में घोड़े की लगाम थी। उसका शीश उसके सीने पर ढला था। उसका शरीर सीधा-तना न था, जैसे हाड़-मांस का निर्जीव पिंड अश्व पर बैठा है !

—ऐसा यह सवार और ऐसा यह घोड़ा राजमार्ग पर चला जा रहा था।

राहगीर चकित थे कि इतना-इतना यह घुड़सवार थका है किंतु किसी 'छात्र' में पल-भर के लिए विराम क्यों नही लेता ? लेकिन उससे कुछ पूछने का दम किसी में न था। अपार थकान और अपार निराशा का

अगोचर आवरण ओढ़े यह मुसाफिर-घुड़सवार राहगीरों की दुनिया से एकदम अलग पड़ गया था !

× × ×

मायण पंडित मूलतया काशी के वासी थे, पर वर्षों से द्वारसमुद्र में रहते थे। वे श्रौत-स्मार्त पंडित थे। उनकी ज्योतिष-विद्या की धाक थी। पुराण के विद्वान थे। अत्यंत धर्मनिष्ठ शैव थे। द्वारसमुद्र के सातगढ़ के बाहर, भद्रावती नदी के किनारे स्थित भद्रेश्वर महादेव के मंदिर की ओर वे जा रहे थे। वहाँ, श्रद्धावान यजमानों के लिए, वे पुरुषसूक्त का पाठ करने वाले थे। चाहते थे कि भद्रेश्वर महादेव का अभिषेक करें।

मायण पंडित के साथ एक कुंभकार था। वह रुद्राभिषेक और पुरुष-सूक्त के प्रत्येक पाठ के पश्चात् स्नानविधि के लिए जल भर-भर कर देने वाला था। कुंभकार साधारण कुम्हार न था, कुंभकार जाति का मुखिया, कुंभकारश्रेष्ठी था ! उसके प्रत्येक हाथ में मिट्टी का एक-एक घड़ा था।

इन दोनों के आगे-आगे एक शिष्य चल रहा था। यह ब्राह्मण-शिष्य अभ्यास के लिए पंडित मायण के यहाँ रहता था। इस के पिता एक अग्रहार के भोक्ता थे। ताँबे के जलपात्र में जल भरा था। दूब के दल उसमें पड़े थे। दूब के दलों को बार-बार जल में भिगोकर, वह पंडित मायण के मार्ग का प्रक्षालन करता जाता था !

सबसे पीछे मायण के यजमानों के दो पालेर चल रहे थे। उनके सिरों पर पूजा और फलाहार सामग्री की बड़ी-बड़ी पोटलियाँ थीं।

पण्डित मायण साधारण ब्राह्मण न थे। फिर भी वेद और पुराण-शास्त्रों के पांडित्य के गर्वगगन के अकेले नभचारी न थे। साधारण लोगों से साधारण वार्तालाप करने का उन्हें शौक था। उनके मुख से निकली छोटी-छोटी बोध-कथाएँ, कानोंकान प्रचार पा कर, घर घर पहुँच गई थीं।

कुंभकार सेट्टि नरसा नौजवान था। बाप-दादाओं के बल से, सेट्टि की उपाधि उसके कुल में वारसागत रूप में चली आती थी। जब किसी जवान आदमी को वंश परम्परागत अधिकार प्राप्त होते हे तब वह या तो अभिमान

की शिला से टकराकर चूर हो जाता है या उसकी पिछली पीढ़ियों के संस्कार उसमें अपनी छटा दिखलाते है और वह सौजन्य, माधुर्य और सरलता का केन्द्र बन जाता है—कुंभकार सेट्टि ऐसा ही व्यक्ति था—सरलता और विनम्रता की प्रतिमा-सा, सज्जन !

कुंभकार सेट्टि नरसा, मार्ग में मिलनेवाले वणिकों से व्यापार-विषयक वार्तालाप करता। पण्डितों से शास्त्रधर्म और लोकधर्म के बीच का अतिसूक्ष्म और गूढ़ भेद जानने-समझने का प्रयत्न करता। इस प्रकार, अपनी जाति और अपने कर्मक्षेत्र के बाहर की बातें जानने की जिज्ञासु वृत्ति भी उसमें पर्याप्त थी।

शिष्य का नाम था अनन्त। भविष्य जिसका महान् और दिग्दिगन्तों में कीर्ति-कौमुदी छिटकानेवाला था ! शैव, वीर शैव, जैन और भागवत—चारों 'समय' के; संस्कृत, कन्नड, तमिल, तेलुगु और मलयालम—पाँचों भाषाओं के प्रकांड पण्डित और प्रमाणशास्त्री के रूप में जिसे अनंत गौरव प्राप्त होनेवाला था। यह था—भावी का, हरिप्रपन्न अनन्ताचार्य—पाँचों भाषाओं में महाकाव्य लिखनेवाला, पण्डितश्रेष्ठ—लेकिन, इस समय अपने भविष्य से अनजान था। इस समय उसके पिता एक अग्रहार के भोक्ता थे। माता का अवसान हो गया था। और पिताश्री को धरती की खेती, मस्तिष्क की खेती की अपेक्षा विशेष प्रिय थी, सो वे तो अन्न की रचना में ही रत रहते ! उन्हें क़लम के बजाय हल अधिक हल्का प्रतीत होता था। लेकिन वे जानते थे कि ब्राह्मण का बेटा बिना-पढ़े जीवित नहीं रह सकता ! यह सूत्र उनके मन में मौजूद था। भले, वे स्वयं संस्कृत का अक्षरमात्र भी न जानते हों, उनका पुत्र ब्राह्मणों में ब्राह्मणश्रेष्ठ बन जाए, यह, उनकी ब्राह्मणसुलभ स्वाभाविक अभिलाषा थी।

जब से भगवान् कालमुख विद्याशंकर ने पण्डित मायण के तीन-तीन पुत्रों को—माधव, सायण और भोगनाथ को—अपने शिष्यसम्पर्क के हेतु पसन्द किया था, तब से पण्डित मायण की ख्याति बहुत बढ़ गई थी। काशीवासी ब्राह्मण थे, अतः सहज ही विद्याधन तो माने ही जाते थे !

यों, अग्रहारी ब्राह्मण ने अपने पुत्र को पण्डित मायण के पास विद्या-

ध्ययन के लिए भेजा था। और स्वयं पण्डित मायण के अपने तीन बेटे तो सात साल के लिए मानो अन्तर्धान हो गए थे ! भगवान् कालमुख विद्याशंकर का नियम था कि उनकी शिष्यवृत्ति की अवधि में कोई शिष्य बाह्य-संसार से किसी प्रकार का सम्पर्क न रक्खे !

इन दिनों मायण के घर में, उनकी एक पुत्री लेखा रह गई थी। और कोई न था। इस कारण भी, शिष्य अनन्त उन्हें पुत्रवत् प्रिय था। और यों, अनन्त और मायण के बीच, गुरुशिष्य के सम्बन्ध के अतिरिक्त—पितापुत्रवत् सम्बन्व भी था !

साथ के दोनों पालेर भी बहुत पुराने सेवक थे। उनके प्रमुख श्रेष्ठी का देहान्त हो चुका था। रह गए थे पीछे से—विधवा और नन्हें शिशु। पालेर दोनों विश्वासपात्र थे। अनेक बार अनेक क्रियाकाण्डों के निमित्त पण्डित-जनों से पूछताछ करने के लिए आते-जाते रहने के कारण, बातचीत और कामकाज में होशियार थे !

इसलिए यह धर्ममण्डल, मुल्क-जहान की बातें करता भगवान् भद्रेश्वर के देवद्वार की ओर बढ़ रहा था।

जब कुंभकार सेट्ठि नरसा की नज़र अश्वारोही पर पड़ी तो उसके मुँह से निकला—

"अरे, बड़ा थकाहारा व्यक्ति है कोई ! मानो, न जाने कहीं से तुरुष्कों, किरातों अथवा गौड़ लोगों से लड़ कर लौट रहा है !"

एक पालेर ने कहा—"ज़रा देखो, इसका घोड़ा थकान से अधमरा हो रहा है।"

"घोड़ा और सवार—दोनों प्यासे हैं। प्यास से मरे जा रहे हैं, किन्तु आश्चर्य है, पानी पीने के लिए यहाँ रुके नहीं !"

दूसरे पालेर की ओर देखकर कुंभकार सेट्ठि ने कहा—"तू जा। नदी से ये दोनों घड़े भर कर ले आ। जल्दी कर।" कहने को तो वह कह गया किन्तु तुरन्त चुप रह गया। ये तो असाधरण घट थे, भगवान् शिव शंकर को चढ़ाने के लिए शुद्ध जल भरने के लिए साथ में लिये गये थे। जलाधारी के लिए निर्मित जल के सिवाय दूसरे किसी जल के स्पर्श से,

अथवा, कुंभकार के सिवाय दूसरे किसी के हाथों के स्पर्श से ये सहज ही अपवित्र और अशुद्ध हो जाते थे !

कुंभकार के मन में प्रश्न उठा—"पण्डित मायण के अभिषेक का क्या होगा ? उनके एक सौ आठ स्नान का क्या होगा ?"

उधर मुसाफिर प्यासा था। घोड़ा प्यासा था। उन दोनों को जल की आवश्यकता थी।...परन्तु...परन्तु आज महाशिवरात्रि के पुण्य पर्व पर भगवान् भद्रेश्वर को भी इन घड़ों की कुछ कम आवश्यकता न थी !

सिर खुजलाते हुए उसने पालेर से कहा—"ठहर, जल भरने न जा !"

पण्डित मायण ने कहा—"क्यों नरसा भगत ! तुम तो नायंवार। प्यासे को पानी पिलाने का यह सुन्दर विचार क्यों छोड़ दिया ?"

"पंडितजी, सवार और घोड़ा, दोनों प्यासे हैं, इस प्रकार का विचार तो मन में उठा, लेकिन फिर सोचा—हमारे पास जल के लिए पात्र कहाँ है ?"

"क्यों, ये दो घड़े जो हैं ?"

"जी, किन्तु ये तो रुद्राभिषेक के लिए हैं।"

"नरसा सेट्ठि ! तुम तो नायंवर, शिव के भक्त ! तुम खुद आगे बढ़कर भगवान शिव के प्रति अन्याय कर रहे हो ?"

"कैसे, बापा !"

"सामी ! प्यासे को पानी पिलाने के लिए स्वयं भगवान आता है। इसी निमित्त वह अपने भक्तों को भेजता है। फिर भला, वह अपने घड़े का उपयोग करने से कैसे इन्कार कर सकता है ? होलेय, पालेर और किरात भी जिस काम के लिए इन्कार न करें, उसके लिए भगवान कैसे इन्कार कर सकता है ?"

"पंडितजी, मैं तो चाहता हूँ—आज की धर्मविधि में कोई कमी न रह जाए, किसी को कुछ कहने का मौका न मिले और भगवान भी नाराज न हो जाए !......"

"पागल हो ? भगवान के घर में स्वर्णपात्रों की क्या कमी है ? वह तो सिर्फ़ भक्त की भावना देखता है। वह प्रसन्न होता है तो श्रद्धा देखकर !

उपकरणों से नहीं। जाओ, निःसंकोच होकर इस मुसाफिर और घोड़े का दुख दूर करो।"

"परंतु गुरूजी!" अनन्त ने बीच में ही कहा—"क्रियाकांड!"

"वत्स!" पंडितवर बोले—"मैं तेरा सवाल समझ गया। अब मेरा जवाब सुन। अपने अन्तरतम में इस उत्तर को अंकित कर ले। अपने जीवन और मरण में भी इस बात को स्मरण रखना कि प्रत्येक देवता फिर वह चाहे किसी मजहब या मत का क्यों न हो, दो प्रकार से पूजा जाता है। और देवता यह चाहे मूलसंघ का निगंठनाथ हो, वीर शैवों का अघोर रुद्र हो, भागवतों का विष्णु हो अथवा शैवों का शंकर! भगवान के दो स्वरूप यों हैं - एक तो मंगल स्वरूप और दूसरा उग्र स्वरूप। हम लोग उग्रसेवी नहीं, मंगलसेवी हैं। जितनी अधिक हम पर आपदाएँ आती हैं, उतनी अधिक हमारी भक्ति बढ़ती है। लेकिन भगवान की सेवा के नाम पर दूसरे के कष्ट के प्रति अकरुण बनना—अघोर पंथ का काम है। वैसे, भगवान को कुछ भी देनेवाले हम कौन, क्योंकि भगवान जगत्मात्र को मुक्तहस्त अनन्त दान दे रहा है।

"जाओ नरसा भगत! प्यासे को पानी पिलाओ। यह पानी, हमसे पहले, भगवान भद्रेश्वर के पास पहुँच जाएगा।"

पालेर पानी लाने के लिए दौड़ चले और नरसा घुड़सवार के पास गया।

नरसा की पुकार सुनकर उसने घोड़ा रोक दिया। फिर उसके हाथ का सहारा लेकर वह घोड़े से नीचे उतरा। तभी, घुड़सवार और घोड़ा, दोनों ज़मीन पर गिर पड़े!

पालेर जल लाया। नरसा ने भरा हुआ घड़ा घोड़े के मुँह और ग्रीवा पर डाल दिया। कान, आँख और होठ पर ठंडे पानी के छींटे दिए। शीतलता के कारण घोड़े के बदन में हलचल आई। वह अपने होठ पर ढलता जल चाटने लगा।

उस खाली घड़े को फिर से भर लाने के लिए पालेर दौड़ कर चला गया।

नरसम ने तनिक विस्मय से मायण पंडित की ओर जिज्ञासापूर्वक देखा—"पास ही भद्रावती नदी है फिर भी इतनी तृषा ! गुरूजी, कुछ समझ में नहीं आता !"

पंडित मायण ने कहा—"हमें समझने से क्या प्रयोजन ?" सिर्फ़ पानी पिलाना चाहते हैं। मेरी बनिस्बत तुम घोड़े के मामले के ज़्यादा जानकार हो ! तुम घोड़े को सँभालो, मैं सवार को जल पिलाता हूँ।"

नरसा ने चेतावनी के स्वर में कहा—"गुरूजी, सवार भी घोड़े के समान ही थका-हारा है। बड़ी देर से दोनों प्यासे हैं। आप इन्हें जल पिलाएँ तो बहुत धीरे-धीरे पिलाइएगा और बूंद-बूंद कर, अन्यथा नई विपदा ख़ड़ी हो जाएगी।"

"घबराने की बात नहीं। लाओ, घड़ा मुझे दो।"

पंडित मायण ने घड़ा अपने हाथ में ले लिया। और बढ़कर सवार की तरफ़ चले। उसका चेहरा कुछ पहचाना-सा प्रतीत हुआ। ध्यानपूर्वक देखा—उसकी कामदार टोपी उठाकर धूलभरा चेहरा देखा, उस पर पानी का हाथ छुआया।

विस्मयपूर्वक उन्होंने देखा—मुसाफिर के चेहरे पर फिराया पानी वाला हाथ लाल रंग से रंजित हो गया। इससे लहू-सना चेहरा तनिक स्पष्ट दीखने लगा।

"कौन ? बिबोया ? भालारी ?"

पंडित का स्वर कुंभकार सेट्टि ने सुना। दौड़ कर वह आगे बढ़ा—"क्या है ? क्या है ?"

"ये तो बिबोया हैं ? यहाँ कैसे आए ?"

"बिबोया कौन ? मैं नहीं पहचानता ! आपके परिचित हैं ?"

"तुमको याद नायंवर ! भगवान कालमुख विद्याशंकर द्वारसमुद्र से सात शिष्य अपने साथ ले गए थे ?"

"हाँ, इस घटना को सब लोग जानते हैं। भगवान ने कहा था कि सात बरस बाद मेरा देहावसान होगा। अतः इस अवधि में अपनी सप्तविद्याओं को सिखाने के लिए मुझे सात शिष्यों की जरूरत है। इनमें तीन तो आपके पुत्र थे। उनके अतिरिक्त एक जैन था। एक भागवत था। एक वीरशैव

था और एक पांचाल या पंचकारू था। लेकिन, उस बात से क्या सम्बंध ?"

"नरसा सामी ! तुम जिसे पांचाल या पंचकारू कहते हो वह था एक भालारी ! बिबोया उसका नाम !"

"जी !"

"वही बिबोया, यह व्यक्ति है।"

"यह ! यही मुसाफिर !......यह भगवान कालमुख के सात शिष्यों में से एक। ऐसा महाभाग व्यक्ति इस दशा में ?"

"कौन जाने ?"

"सुधि आने पर यह स्वयं बतलाएगा। लेकिन, पंडितजी, आपकी एक बात सच है।"

"कौन-सी ?"

"यदि इस समय हम जलाभिषेक की गड़बड़ में पड़े रहते तो इस भालारी को पहचान न पाते ! इसे होश आने पर हमें भगवान कालमुख और आपके पुत्रों के समाचार मिलेंगे। सचमुच पंडितजी, यह कलियुग है ! करो और देखो !"

नरसा घोड़े की देखरेख के लिए चल दिया। पंडितजी धीरे-धीरे बिबोया को जल पिलाने लगे !

कुछ देर बाद घोड़े को भान आया। आसपास के पथक से कुछ घास काट कर, नरसा ने उसके सामने रख दी थी, घोड़ा धीमे-धीमे उसे खाने लगा। बिबोया को भी तनिक भान आया।

उसने आँखें खोलीं। मायण पंडित को वे आँखें देखती रह गई। कुछ पल अपलक रहीं। फिर उन्होंने पंडितजी को पहचान लिया।

भालारी उठा। चीख-सी आवाज़ में बोला—

"बंद करो ये उत्सव ! बन्द करो ये मेले ! राजसंन्यासी बल्लालदेव की अकाल मृत्यु हुई है !"

पंडित मायण और शेष सब लोगों ने स्तब्ध होकर, इस चीख को सुना !

दूसरे ही क्षण भालारी बेहोश होकर धरती पर ढल पड़ा।

: २ : भालारी बिबोया

सब चुप-मौन रहे ! विस्मयसहित पहाड़ जैसे इस पुरुप को धरती पर गिरते देखते रह गए ! नरसा ने उसकी आँखों और सिर पर पानी के छींटे दिए। उसके घोड़े की भी शुश्रूषा की।

अनन्त और पंडित निष्क्रिय-से एक दूसरे को देखते रहे !

अन्त में मायरण पंडित ने कहा—"यह तो कालमुख विद्याशंकर महाराज के पास सात वर्ष के लिए गया था। मेरे तीन पुत्र भी वहीं हैं और कालमुख महाराज किसी शिष्य को बाहर नहीं निकलने देते ! फिर यह यहाँ कैसे आ गया ?"

"और इसकी बात भी कितनी विचित्र है ! अभी ही मैंने अपने पिता का भेजा पत्र पढ़ा है। उसमें लिखा था कि राजसंन्यासी हमारे अग्रहार के अतिथि बने हैं। फिर भला, अकारण उनका देहान्त कैसे हो गया ? अकाल-मृत्यु, किसी दुर्घटना से ? ऐसा तो नहीं हो सकता !"

"मनुष्य अपनी मृत्यु के विषय में, किसी को कभी खतपत्र लिखता है क्या ? जब आदमी को मौत बुलाती है, तब उसे जाना पड़ता है, वह मौत की आवाज़ को खाली नहीं लौटा सकता !"

"गुरुदेव !" अनन्त ने भालारी की ओर देखा—"गुरुदेव, जैसे बने वैसे, हमें इस अश्वारोही को महाकर्णाधिप सोमैया के पास पहुँचाना चाहिए।"

"हाँ, राजसंन्यासी की अकाल मृत्यु की या तो उन्हें खबर होगी या भालारी उन्हें बतलाएगा।" पंडित मायरण ने कहा—"अगर यह खबर सच है, तो बड़ी आपत्तिसूचक है।"

"जब यह होश में आ जाएगा, हम इसे पूछेंगे !" अनन्त ने भालारी की ओर देखा। भालारी अपनी मूर्च्छा से जागता प्रतीत हो रहा था।

"न, पूछ कर, हमें क्या करना है," मायण ने अनन्त की सूचना अस्वीकार की—"फिर भी यह स्वाभाविक है कि हमारे मन में पूछने, जानने की उत्सुकता उठती है। और ऐसे संवाद-समाचार सच हैं या झूठ ? कहीं से जानकारी मिली है ? कानोंकान सुने हैं ?—ये सब सूचनाएँ, पहले महाकर्णाधिप को सुनाना भालारी का कर्त्तव्य है।"

"हाँ, यह सच है। सहज है..."

"नहीं अनन्त ! सहज भी नहीं और प्रास्ताविक भी नहीं। यदि हम ब्राह्मण होकर भी विवेक और मर्यादा का पालन नहीं करेंगे तो दूसरा कौन करेगा ?"

"जी, गुरूजी ! अविनय कभी न हो, न होना चाहिए। लेकिन ऐसी छोटी-सी बात को इतना बड़ा रूप देने का अर्थ ही क्या ?"

"तुझे यह छोटी-सी बात प्रतीत होती है, क्योंकि यह मेरे और तेरे ब्राह्मणक्षेत्र के बाहर की है। किंतु महाकर्णाधिप, शायद इसे अधिक महत्वपूर्ण मानें। शायद सोमैया नायक इसे सब के लिए जाहिर करना पसंद न करें। वत्स अनन्त, काल अत्यंत कठोर है, कठिन है ! समय अच्छा नहीं है। महाकर्णाधिप सोमैया नायक का मार्ग कठिन है। क्या इस बात को मैं या तुम हम नहीं जानते ? वे तो मानो पंचाग्नि के बीच में बैठे हैं। उनके चक्षु चर्मचक्षु नहीं हैं, प्रज्ञाचक्ष हैं। उनकी योजनाएँ, उनका गणित, भला, हम कैसे समझ सकते हैं !"

"क्षमा गुरुजी ! आपके उलाहने का मैं पात्र हूँ।" अनन्त ने क्षमा मांगी।

"यह उलाहना नहीं वत्स, किंतु समय और संयोग की शिक्षा है। सब कुछ जानने के लिए और जानकर सब कुछ करने के हेतु हमने एक ही व्यक्ति का निर्वाचन किया है, और वह जितनी जानकारी रखता है, उस में से कितनी सूचना दूसरों को देना और कितनी न देना, यह सब उसके हाथ

है और उसे इस विषय का अधिकार स्वयंसिद्ध रूपेण प्राप्त है। समय विकट है। बाहरी और भीतरी दुश्मन मुखर हो उठे हैं। इस वक्त अगर महा-करणाधिप हमें पसंद न हों तो उनके बजाय दूसरे योग्य पुरुष की नियुक्ति की जा सकती है परंतु एक बार जब हमने उन्हें अपने पद पर प्रतिष्ठित किया तो उनका अपमान नहीं किया जा सकता।"

"जी गुरुजी!"

"महाकरणाधिप को खंडहर के स्थान पर भव्य भवन बनाना है, अतः उनका कार्य दुष्कर है। हज़ारों वर्षों के राग-द्वेष में पड़े समाज का उद्धार कर, उसे एकत्र एवं संगठित करने का महत्कार्य इसी व्यक्ति के कंधों पर है। विगत ढाई सौ सालों से जो तुर्क समस्त भारतवर्ष में अकांड ताण्डव कर रहे हैं, उन्हें खदेड़ने का भार भी उनके कंधों पर हैं। घर-घर, मंदिर-मंदिर, सीमा-सीमा और गाँव-गाँव के अगणित मतभेदों को नष्ट करना है। आज तक कन्नड़ और तेलुगु; तमिल और मलयाली आपस में लड़ते-झगड़ते रहे हैं और प्रत्येक अपने आपको सार्वभौम सत्ता के रूप में देखता रहा है—इस समस्त समाज-मंथन से जो हलाहल कालकूट निकलनेवाला है, उसे शिव शंकर की तरह पीना है। ऐसे अवसर पर हमें राजनीतिक द्वंद्वों में न पड़कर जितना वे कहते हैं, उतना काम पूरा करना चाहिए।"

"जी गुरुजी! मैं तो सहज कौतूहल से कह रहा था। मानवीय स्वभाव की सहज निर्बलता मुझे भी छू गई थी। अब मेरी समझ में आ गया कि राजसंन्यासी का अच्छा या बुरा वर्त्तमान और उसके समाचार सबसे पहले और सबसे गुप्त रहकर, महाकरणाधिप की सेवा में प्रस्तुत किए जाने चाहिए। आगे ऐसी ग़लती नहीं होगी।"

"वत्स, आज इस देश का भविष्य मृत्तिकापिंडवत् है। कालचक्र घूम रहा है और सोमैया नायक महाकुम्भकार के समान बैठे हैं। जैसा वे चाहते हैं, वैसा आकार सर्जित होगा या नहीं यह तो केवल भगवान जानते हैं किन्तु राजनीति विषयक सभी कार्य उनकी चिंता के विषय हैं।"

"जी!"

"तो वत्स हम ऐसा करें—तू नगर में जा—महाकरणाधिप के यहाँ, और

उनसे कहना—भालारी बिबोया महत्त्व के समाचार लिए आ रहा था कि दुर्बलतावश मार्ग में, नगर बाहर पड़ा है। फिर जो कुछ करणीय होगा, वे करेंगे।"

"जी !"

—इतना कहकर अनन्त नगर की तरफ बढ़ा।

पंडित मायण और नरसा की सेवा-शुश्रूषा से भालारी बिबोया की मूर्च्छा दूर हुई। उठकर वह बैठ गया और चारों ओर देखने लगा। धीरे-धीरे उसकी आँखों पर से मूर्च्छा के आवरण दूर होने लगे। और उन्हीं आँखों ने पंडित मायण को पहचाना।

वह पंडित मायण को देखता ही रहा। और फिर उसकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। इसके बाद, पहाड़-जैसा कायावंत यह व्यक्ति विचलित स्वर में रोने लगा !

मायण चुप रहे। उन्होने कुछ देर उस व्यक्ति को रोने दिया। नरसा कुछ न समझा। वह तो विस्मयमयी दृष्टि से, जिस भाँति पर्वत से शिलाजित बहता है उस भाँति इस व्यक्ति का अश्रुप्रवाह देखता रह गया !

जी जब कुछ हल्का हुआ तब भालारी सिसकी भरते हुए कहने लगा—

"पडितजी, पंडितजी ग़ज़ब हो गया है ! राजसंन्यासी का देहान्त हो गया। कर्नाटक के होयसलराज वीर बल्लालदेव का स्वर्गारोहण हुआ !"

"शांत हो जाओ, भाई, शांत हो जाओ। तुम जो कुछ कह रहे हो, वह मेरे, नरसा के, इन पालेरों के या अन्य लोगों के कान तक नहीं जाना चाहिए। तुम्हें यह बात सबसे पहले महाकर्णाधिप तक पहुँचानी चाहिए। मेरा शिष्य अनन्त नगर में महाकर्णाधिप के पास, ये समाचार लेकर, गया है। तब उनके आनेपर यह समाचार तुम उन्हीं को सुनाना।"

"जी...जी....जी...परन्तु....पण्डितजी...राजसंन्यासी....!"

"भैया, ज़रा अपना दिल काबू में रक्खो ! जो कुछ हो गया, वह अब न होनेवाला नहीं। अब तो समाचारों के अनुसार राजकाज की चिंता है। यह साधारण जनता की रुचि या कौतूहल का विषय नहीं है। किस समय

कौन-सी बात कितनी और कब की जानी चाहिए, यह महाकर्णाधिप के अधिकारान्तर्गत है, मेरा, नरसा का या तुम्हारा यह काम नहीं !"

"जो...जी....जी।"...और भालारी बिबोया ने अपने-आपपर अधिक काबू रखने के लिए घड़ा ऊँचा उठाकर पानी पिया। वह तो एक ही श्वास में पूरा घड़ा पी गया..."हाँ...हाँ....हाँ...." उसने कहा—"आज पाँच दिन बाद जल का बिन्दु मिला है।"

पण्डितजी ने पूजा के उपकरण देखे, उनमें से दो पात्र बाहर निकाले।

"पाँच दिन के भूखे भी होगे तुम। भैया, लो ये, दूध पी लो। ये रहे कुछ फल।"

भालारी दूध का पूरा पात्र एक साँस में पी गया। फिर बारी-बारी से उसने समूचे फल हड़प किए।

"हाँ...हाँ, पण्डितजी, अब काया में कुछ माया उपजी है। सचमुच !"...

"तो भले आदमी, मेरी एक शंका का निवारण करो। तुम तो भगवान् विद्याशंकर महाराज के पास, उनके सप्तम शिष्य के रूप में सप्त विद्याध्ययन के लिए गये थे न ?"

"गया था। फिर लौट भी आया।"

"यानी क्या महाराजश्री ने गुरुकुल समाप्त कर दिया ?"

"नहीं पंडितजी, महाराज की विद्या पूरी नहीं हुई। और आपके पुत्र तो वापस भी नहीं आते। मैं अकेला ही वापस लौटा हूँ। शेष छहों छात्र तो आज भी वहाँ छत से अपनी शिखा बाँधकर रातदिन रटन्त विद्या का अर्जन कर रहे हैं।"

"तब तुम भला क्यों लौट आए ?"

"सच बतलाऊँ पंडित जी ! मैं उस अभ्यास के अयोग्य था। मैं तो आवारा आदमी। फिर मैं गुफा के बाहर पैर तक न रखने के आदेश का पालन कैसे कर सकता हूँ।"

"तब क्यों गये थे ?"

"उमंगवश चला गया था ! सच तो यह है पंडितजी, आप कहें उसकी शपथ लूँ, आप कहें वह प्रतिज्ञा पूरी करूँ, झूठ बोलूँ तो मुझ पर पंचपातक

का पाप ! विद्याशंकर महाराज सचमुच तपस्वी, विद्याभास्कर, विद्यातीर्थ और विद्यारण्य, किंतु मेरे-जैसे भालारी के लिए तो दूर से ही उन्हें नमस्कार करना ठीक है।"

"क्यों, ऐसा क्यों कहते हो भैया ? वहाँ तुम्हें कौन-सा कष्ट था ?.... पंपाक्षेत्र जैसा स्थल, पंपापति जैसा धाम, किष्किंधा जैसी गुहा। भगवान कालमुख जैसे गुरु—पूर्व के अनेकानेक भवों के अनेक पुण्यों के कर्मफल सफल हों तभी इस भव में ऐसा योग मिलता है !"...

"यह आप-जैसे ब्राह्मणों के लिए भले उचित हो पंडित जी, किंतु हम-जैसे कम्पू-चम्पू के लिए नहीं। हम तो पांचाल। कुल्हाड़े और फावड़े उठाते हैं, क़लम ने सिरपच्ची हमारा काम नहीं। हाथ में लेना ही जैसे पाप है ! गुरू जी ने छत से मेरी शिखा बाँध दी और एक श्लोक दिया रटने के लिए। झोंके खाते-खाते शिखा के सारे केश उड़ गए लेकिन एक श्लोक भी कण्ठस्थ न हुआ सो न हुआ।"

"यह तो स्मरणशक्ति की बात है। प्रयास करने पर यह शक्ति प्राप्त हो सकती है। शरीर और मन का प्रत्येक बल और साधन जब हमारी माँग के अनुसार काम देने लग जाता है, तब कहा जाता है—अभ्यास पूरा हुआ।"

"अरे पंडित जी, मैंने बहुतेरा प्रयत्न किया, परन्तु स्मरणशक्ति प्राप्त नहीं हुई। फिर गुरूजी ने मेरी स्मरणशक्ति का भार अपने कन्धों पर लिया, तब तो मैं भाग निकला !"

"क्यों"

"पहले तो वे बोले—उपवास कर ! भला, मेरी देह की ओर तो देखिए। ईश्वर ने इस देह को उपवास के हेतु बनाई है या खाने के लिए भला ? मैं तो भाग चला !"

"अच्छा !"

"हाँ, भागकर इस ओर आता तो शर्म आती ! इसलिए दक्षिण की ओर गया। सुना था, वहाँ लेखनी से अधिक हाथ की महत्ता और महिमा है।"

"हाँ, तमिल प्रदेश में ऐसी ही बात है।"

"मैं वहीं चला गया था। स्थान-स्थान पर मजदूरी की। खाता-पीता, श्रम करता ठेठ लंकाद्वीप तक चला गया। बड़ा मज़ा आया लंका में। वहाँ हाथी पाले जाते हैं। मैंने भी उसमें दिलचस्पी ली।"

"अच्छा!"

"और पंडित जी, ऐसी बात नहीं कि भगवान जब देना चाहता है तब मात्र विद्यावंत को ही देता है! नहीं। मूर्ख को भी देता है। मुझे ही देखिए। न तो मैं अपने गाँव में पढ़ा और न कालमुख विद्याशंकर-जैसे प्रचंड गुरूजी के यहाँ आपके पुत्र-जैसे विद्यार्थियों के साथ पढ़ा।...फिर भी आप मेरे पितृतुल्य हैं अतः कहता हूँ : मेरे पास रत्न-मुद्रा है और लंका में पचास पट्टी ज़मीन है। उस ज़मीन पर किसी प्रकार का कर नहीं लगता। हडियो, तेरीग या अमजी किसी प्रकार का कोई कर नहीं। चाहूँ तो मैं पाँच हाथी और दस सहस्त्र वराह की हुंडी लिख सकता हूँ!'

"अरे वाह! तुमने तो बड़ी उन्नति की। लेकिन यह सब कैसे हो गया?"

"लम्बी है वह बात! वैसे ज्यादा लम्बी नहीं है। मैं सोमैया नायक के पास जल्दी से जल्दी पहुँचना चाहता हूँ अतः विलम्ब करना उचित नहीं है। आप जानते हैं या नहीं, राजसंन्यासी भयंकर मृत्यु...?...."

हाथ उठाकर पंडितजी ने उसे रोक दिया—"बड़े आदमी की बात बड़े आदमियों के समक्ष ही की जानी चाहिए। भालारी, अकारण छोटों के सामने बड़ों की बातें करना अनुचित माना जाता है।"

"हाँ, किन्तु बात यह है...."

"वह भी महाकर्णाधिप को बतलाना!" महाकर्णाधिप शब्द पर जोर देकर पण्डितजी ने कहा—'गहरी नदी, ऊँचे पर्वत और बड़े आदमियों की बातों के प्रवाह और स्वर ऐसे होते हैं कि अनेक बार अन्य जन उनका रहस्य समझने में असमर्थ रहते हैं।"

"हाँ जी, यानी यह बात...."

"हम तो तुम्हारे हाथी और वराह की ही चर्चा करेंगे। जब तक

सोमैया नायक का संदेश लेकर अनंत आता है, तब तक तुम्हारे हाथियों की, तुम्हारी प्रगति की चर्चा ही चलाई जाएगी।"

"समझा ! पंडितजी समझा ! माधव और सायण के लिए भगवान कालमुख कहते थे कि वे दोनों अत्यंत विलक्षण हैं। आप तो उनके पिता।... हाँ, मेरी कहानी साधारण कहानी है। लंका के राजा का अधिकार है वहाँ के समस्त हाथियों पर ! हाथियों की शिक्षा का सारा प्रबन्ध उनके अधिकारी ही करते हैं। उनके अतिरिक्त कोई बाहरी व्यक्ति हाथी को छू भी नहीं सकता। वरना मृत्यु दंड दिया जाता है। मैं भी वही काम करता था। तभी एक दिन एक हाथी भाग निकला—"

"फिर, क्या हुआ फिर ?"

"हाथी भाग चला, हाथी का भागना बड़ी बात नहीं थी। लेकिन यह हाथी ऐसा वैसा नहीं था, नायक गजराज था यह ! राजा का खास हाथी—रामभद्र। सफ़ेद उसका रंग ! उसके शीश से इस प्रकार का, मस्ताना मद झरता था कि दूर-दूर से उसकी गंध से आकर्षित हथिनियाँ आतीं और पगली-सी उसके पीछे फिरतीं—ऐसा यह गजराज, गजवृंद का गुरु—दादा कहो !"

"वह हाथी क्यों कर भाग चला ?" नरसा ने वार्त्ता में रुचि दिखलाई।

"तब राजा के कर्मचारी दौड़े। चारों दिशाओं से दौड़े कि हाथी को पकड़ लें। यदि इस हाथी को न पकड़ा जाए तो सारी हथिनियाँ बिखर जाएँ। अतः इसे पकड़ना जरूरी था, लेकिन पकड़े कैसे ?"

"हाँ जी, हाथी को पकड़ना और पहाड़ को पकड़ना एक-सा कठिन है। तो क्या तुम उसे पकड़ लाए ?" एक पालेर ने उतावली में पूछा।

"सुन तो सही, जल्दी क्यों मचाता है ? राजा ने आज्ञा प्रकाशित की—जो इस हाथी को पकड़ लाएगा उसे पचास पट्टी ज़मीन इनाम में दी जाएगी। सब लोग दौड़े। मैं भी चला। लेकिन यह हाथी तो ऐसा कि आदमी की अक्ल को ठोकर मारे ! मैंने हाथी का पीछा किया। हाथी के पीछे-पीछे हथिनियाँ भी भाग चली थीं। अतएव दूसरे लोग इधर-उधर गड़बड़ में पड़ गए, किंतु मैंने तो सीधा रामभद्र का पीछा किया।"

"फिर ?"

"मुझ से पहले दो आदमी पहुँच गए थे ! रामभद्र ने उन दोनों को मार डाला था ! अतएव, मैंने क्या किया ? जानते हैं आप ?"

"नहीं, तुमने क्या किया ?"

"मैंने एक बड़ा-सा गड्ढा खोद डाला ! उस पर पतली टहनियाँ बिछा दीं। ऊपर ज़मीन जैसी ज़मीन बना दी। ऊपर से देखने पर बढ़िया ज़मीन दिखलाई देती थी। मुझे मालूम था कि ज्यों ही हाथी इस पर चलेगा, गड्ढे में गिर जायगा। फिर बेटा किधर जाएगा ?"

"हाँ जी, कहाँ जाएगा ? फिर ज़रूर वह गड्ढे में गिरा होगा ?"

"अरे सुनो तो सही ! रामभद्र तो सौ साल का अनुभवी और ज़माना उसका देखा ! जाने क्या बात ! कि रामभद्र को रहस्य ज्ञात हो गया जैसे ? उसने अपनी सूंड में एक डाली उठा ली और उससे ज़मीन को पीटता हुआ चलने लगा। मैंने जो गड्ढा खोदा था, उस पर भी डाली पीटकर देखा। तुरन्त वह वहीं रुक गया ! और वापस लौट गया ! अंधकार में जैसे कोई अंधा आदमी लाठी की आवाज़ के साथ आगे बढ़ता है और सहज विलीन हो जाता है, वैसे ही वह हाथी अदृश्य हो गया। ऐसा चतुर था वह हाथी, लेकिन अन्त में मैंने उसे पकड़ लिया !"

"पकड़ लिया ? सो भला किस तरह ?"

"जिस प्रकार बहुत चतुर आदमी एकाध ग़लती कर बैठता है, उस प्रकार इस हाथी ने भी किया। मैंने सोचा कि अगर कई हथिनियाँ इसके आस-पास मँडराएँ तो उनमें से किसी के साथ यह एकांतवास करेगा। तभी कुछ किया जा सकेगा। तब मैं कीचड़ के एक तालाब में गया। ऊपर पानी भरा था, नीचे भयंकर कीचड़ था। पानी में सिर छिपाकर मैंने इस प्रकार नकली चीत्कार किया जिस प्रकार वेदनावंत हथिनी किया करती है। वहाँ हटकर मैं एक झाड़ के पीछे छिप गया और वहीं से जब-तब चीत्कार कर पुकारता रहा। चीख पर दौड़कर आता हुआ रामभद्र तालाब में फँस ग़या। फिर तो मैंने उसे बाँध लिया। राजा को समाचार दिया। फिर पालतू हाथी

आए और रामभद्र को ले गए। राजा ने मुझे पारितोषिक* दिया।

"तब तो तुम जागीरदार बन गए!"

"आपके आशीर्वाद हैं।"

हाथी-जैसे महापशु को वश में करनेवाले इस विचित्र व्यक्ति को विचित्र सम्मानपूर्वक नरसा और अन्य पालेर देखते रह गए!

तभी अनन्त आया। उसके चेहरे पर पसीना झलक रहा था। वह उदास और आकुल था।

आते ही उसने कहा—"सोमैया नायक नहीं मिल सकते। वे भगवान वेदांतदेशिक महाराज के पास गए हैं। महाराज बहुत बीमार हैं और राज-वैद्य किसी को उनके पास नहीं जाने देते।"

भालारी बिबोया उठकर खड़ा हो गया।

"मेरा घोड़ा लाओ। मैं जाता हूँ। भगवान वेदान्तदेशिक महाराज मुझसे अवश्य मिलेंगे।"

---

* इस प्रसंगकथा का उल्लेख नूनीज़ ने अपने रोज़नामचे में किया है।

: ३ :

राजसंन्यासी की अकालमृत्यु

सर्वत्र प्रसरित प्रजा के धार्मिक उत्सव की सुनहरी उषा की वेला ्क छोटी-सी काली बदली छाई थी।

उत्सव में तल्लीन जनता इस बदली की बात से अनजान हो, ऐसी स्थिति नहीं थी। गहराई में भीतर ही भीतर विषाद व्याप्त न था, सो वात ी नहीं थी।

परंतु, जो व्यक्ति स्थिति की गम्भीरता को समझ सकता वह उत्सव की ाज्जा को बिखेर देता, विषाद ऐसा था! और उसकी गम्भीरता को गिने- ुनें अंतरंग व्यक्ति ही समझ सकते थे!

भगवान वेदांतदेशिक महाराज भागवतों में प्रथम और श्रेष्ठ थे—वही भगवान वेदान्तदेशिक महाराज, भगवान वल्लभाचार्य प्रभु के भाँजे और भगवान रामानुजाचार्य के भाँजे रुग्ण थे!

कोई वैद्य ऐसा न था, जो इस रोग को समझने में समर्थ होता! राज- ैद्य वाचस्पति को समस्त कुंतल देश में, समस्त विजयधर्म प्रदेश में— ान्वन्तरि की प्रतिभा और प्रतिष्ठा प्राप्त थी। तथापि, वे भी इस बीमारी ो समझने में असफल रहे थे!

आचार्य प्रभु स्वस्थ थे। एक मास पूर्व, वे एकदम अच्छे थे। अत्यन्त उल्लास में थे। तब राजसंन्यासी पधारे थे। सतत परिभ्रमण से थकित ाजसंन्यासी और सतत परिव्रज्या से थकित आचार्य साथ-साथ रहे थे। ाथ-साथ घूमे थे। समस्त नगर को उन्होंने एक साथ दर्शन दिए थे। देव-

दर्शन के लिए भी एक साथ गए थे। प्रज्ञाचक्षु महाकर्णाधिप भी उनके साथ रहे थे। वे गम्भीर प्रतीत होते थे। उनके सिरपर त्रिभुवन का भार था। फिर वे गम्भीर क्यों न प्रतीत हों? कब वे गम्भीर नहीं दीखते थे?

और जब राजसंन्यासी लौटे थे, तब कदरूपट्टन पर गए थे। कदरूपट्टन राजसंन्यासी की सदा की मज़ाक थी! कदरू यानी घोड़ा और पट्टन यानी राजधानी। कदरूपट्टन यानी घोड़े की पीठ पर जिसकी राजधानी हैं। वे कहा करते थे कि राजा के रूप में मेरी राजधानी और संन्यासी के रूप में मेरा मठ घोड़े की पीठ पर है—यह उनका अपना मज़ाक था। हक़ीकत भी यही थी।

और बात सच थी। जब वे दृष्टिगोचर होते तभी उनसे साक्षात्कार हो सकता था, वैसे उनका पता पाना साधारण काम न था! दस बारह 'गुंडी' या पट्टनों में ढूंढने पर ही कठिनाई से उनका पता मिल सकता था।

ऐसे कदरूपट्टन का ऐसा राजा और संन्यासी द्वारसमुद्र में आया था। किसी काल में द्वारसमुद्र कुंतलदेश की राजधानी थी। राजसंन्यासी वीर बल्लालदेव तृतीय के नाम से इस देश और राजधानी के राजा थे। और आज वही द्वारसमुद्र विजयधर्म-देश का एक दुर्ग था। जब से वीर बल्लालदेव तृतीय ने अपना कुंतलदेशीय राज्य विजयधर्म के निमित्त भगवान कालमुख विद्याशंकर की सेवा में समर्पित किया और भगवान कालमुख ने उसे स्वीकार किया और महाकर्णाधिप के पद पर दादैया सोमैया नायक को प्रतिष्ठित किया। महामण्डलेश्वर का पद राय हरिहर को दिया।

तब से भगवान कालमुख के आदेशानुसार विजयधर्म की ध्वजा लहराई और विजयधर्मदेश के भूगोल की रचना होने लगी। तब से विजयधर्मदेश की राजधानी विजयधर्म देश के अघोर संन्यासी राजा-भगवान् कालमुख विद्याशंकर की तपोभूमि बनी। वही भूमि, जो पुराणकालीन किष्किधा के पर्वतशृंग की तलहटी में स्थित है।....और कोई इस तपोभूमि को विद्यानगर कहता! कोई इसे विजयधर्मनगर कहता। कोई इसे विजयनगर कहता! कोई विश्वनगर भी कहता!

तब से द्वारसमुद्र की गणना एक दुर्ग के रूप में होती थी। इस दुर्ग

का दुर्गपाल आसपास के छोटे-बड़े गाँवों के एक हज़ार सैनिकों का मुखिया—'कर्णाधिप' माना जाता। 'रायस' इस कर्णाधिप की मानद पदवी थी। कथाकाल में द्वारसमुद्र का दुर्गपाल था—महामण्डलेश्वर का छोटा भाई राय बुक्काराय!

राजसंन्यासी द्वारसमुद्र आए थे और बुक्काराय ने उनका स्वागत-सत्कार किया था और भगवान वेदान्तदेशिक उनसे तनिक भी विलग न हुए थे!

और राजसंन्यासी विदा हुए।

कोई कुछ भी कहे, त्याग में एक अनुपम प्रभा होती है। वीर बल्लाल देव ने राजा बनकर जितने पराक्रम प्रदर्शित किए थे, उनकी अपेक्षा, तुर्कों और यवनों से उन्होंने जो अपमान सहे थे, वे कहीं अधिक थे।

कुंतलदेश के कुलदेव के धाम में, कुलदेव के सामने ही उन्होंने कलियुगी कालयवन मलिक काफ़ूर के चरण चूमे थे! चौल मण्डल पर जब काफ़ूर ने हमला किया, तब उसके साधारण आदमी के रूप में वीर बल्लाल को काम करना पड़ा था! इसलिए राजा के रूप में उनकी कार्यमाला जितनी विवाद-ग्रस्ता थी, उतनी कीर्तिवंत नहीं थी।

परन्तु, इस महामानव ने अपने जीवन का उत्तरकाल इस प्रकार सुधार लिया था कि देवों के देवों को भी ईर्ष्या हो सकती थी!

अपनी सकलंक राजत्व-कथा पर उसने त्याग की अनन्य प्रभा प्रसारित कर दी थी। उसके वर्तमान की पवित्र प्रभा के कारण जनता उसके भयंकर भूत को सहज ही नहीं, जानबूझकर भूल गई थी!

जनता एक ध्वज-पताका की छाया में तुरुष्कों से लोहा ले सके; धर्म की रक्षा कर सके और अपने इस प्रयास में वे तुंगभद्रा से रामेश्वर के बहु-जनसमाज से सम्पर्क स्थापित कर सकें—इस हेतु उन्होंने अपना राज्याधिकार त्याग दिया था। त्याग नहीं दिया था, कहें भववान् कालमुख विद्या-शंकर के चरणों में धर दिया था! और स्वयं आप संन्यासी बनकर स्वधर्म, स्वदेश और महामण्डलेश्वर की सेवा के लिए निकल पड़े थे!

अतः इस 'राजवीर', नहीं, 'त्यागवीर' को विदाई देने के लिए जनता बड़ी दूर तक पीछे-पीछे गई थी!

और उस दिन से मानो भगवान वेदान्तदेशिक की ऊँघ उड़ गई थी। तब से आचार्यश्री ऐसी अस्वस्थता को प्राप्त हो गए थे, जो उनकी प्रकृति के विरुद्ध थी।

और धीमे-धीमे यह अस्वस्थता बढ़ती जा रही थी। वैद्य इस अस्वस्थता का पार पाने में असमर्थ थे और आचार्यश्री मानो अवाक् बन गए थे !

स्वास्थ्य बिगड़ता गया। अनिद्रा रोग के साथ अब भूख भी चली गई।

और महाशिवरात्रि के दिन, जब पूर्ण पर्ववेला में समस्त कुंतल प्रदेश—अखिल विजयधर्म प्रदेश—विभिन्न धर्म सम्प्रदायों के इस सम्मिलित त्यौहार और धर्मावसर पर धार्मिक गौरव और सामाजिक आनन्द मना रहा था, तब बहुत ही कम लोग आचार्यजी की चारपाई के पास बैठे थे। इन श्रद्धालुओं की संख्या देखने पर, बहुत कम थी, न देखने पर संख्या का भान ही न हो, ऐसी स्वल्प संख्या में लोग उपस्थित थे।

इन उपस्थित श्रद्धालुओं में प्रज्ञाचक्षु दादैया सोमैया थे। द्वारसमुद्र में जिसका निवास था, जो वनवासी 'हजारी' का मनसबदार कर्णाधिप था और द्वारसमुद्र का दुर्गपाल राय बुक्काराय था। इन में महाकर्णाधिप के महाप्रधान सालुवा माँगी भी थे। और वारंगल के राजा कृष्णाजी नायक भी थे।

और इन में विजयधर्म प्रदेश का महामंडलेश्वर राय हरिहर भी था।

और दादैया सोमैया की पत्नी मालादेवी थीं, मानो शरीर और चेहरे से आँखें अलग जा-गिरी हों, इस प्रकार सोमैया की आँखों का काम करनेवाली मालादेवी निरन्तर उनके साथ रहती थीं, वे भी उपस्थित थीं।

और इन में सप्त-ऋषि-प्रभव राजगुरु क्रियाशक्ति विद्यातीर्थ महाराज भी थे।

भगवान वेदांतदेशिक का जीवन अत्यन्त मूल्यवान था ! इस निमित्त कि विजयधर्म की पताका ठेठ सेतुबन्ध रामेश्वरम् से लेकर तुँगभद्रा सरिता तक, किसी भी प्रकार के अंतराय के बिना, फहराए !

भगवान ने अनेक संकट सहन किए थे। किंतु, किसी पुराण-कालीन ऋषिपर आनेवाले संकट, तूफ़ान और संघर्ष पुण्यवती प्रभा बनकर छा जाते

हैं, उस प्रकार भगवान वेदांतदेशिक की विपदाएँ उनका वैभव बन गई थीं। दिनभर के पवन, बादल और वर्षा के भयंकर तूफ़ान के बाद, जिस प्रकार संध्या की रंगलहरी आकाश को विस्मयभरी नौजवानी अर्पण करती है उस प्रकार भगवान वेदांतदेशिक की काया भी सत्तर वर्ष से भी अधिक समय के जीवन में अनेक आपदाओं के पश्चात् संध्या की बदली-जैसे रंगवाली बन गई थी !

भाव्यो का धर्म—उस में भी बहुसंख्यक मूलसंघ के भाविक के लिए कठोर तपस्या आवश्यक थी।

और वीरशैवों का धर्म तो था ही भूरुद्रों का ! यह जंगमनाथ का धर्म था, जो अघोरियों को भी अघोर प्रतीत हो सकता था। इसके व्रत भी इतने ही प्रचंड और कठोर थे।

शैवों का समय था—श्मशान, भस्म और पंचाग्नि का। भागवतों का वल्लभ समय, प्रसन्न समय था और इस कारण सामान्य जनसमाज में इस के प्रति आकर्षण अधिक था।

तुरुष्कों के आक्रमण-काल में श्रीमंत लोगों के महल खंडहर बने थे, जनता का अपार वैभव लूटा गया था और इसी वजह आदमी अब देवों का श्रृंगार कर निजानंद प्राप्त कर रहा था !

इस लिए वेदांतदेशिक महाराज इस विजयधर्म की नींव के महापाषाण-समान थे। और महाराज बल्लालदेव को भागवत सम्प्रदाय की गौरव-ध्वजा फहराने के लिए प्रेरित करनेवाले भी वही थे।

अतएव उनका स्वास्थ्य विजयधर्म की राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। और कई जानकारों के मन में भय था कि उनका स्वास्थ्य जितना खराब हुआ, उतना विजयधर्म की ऊंची उठनेवाली इमारत भी बनने से पहले ही लड़खड़ाई थी।

अस्वस्थ तो सभी थे। भगवान राजगुरु क्रियाशक्ति महाराज के वृद्ध भाल की रेखाओं में चिंताओं की एक और रेखा बढ़ गई थी। राय हरिहर भी सचिन्त थे। बुक्काराय की तो गिनती अब भी बालकों में होती थी, कठिनाई से वह बीस वर्ष का था—इस लिए राजनीति की गहराई में बहनेवाली

धाराओं को वह अधिकांश में नहीं समझ सकता था ! फिर भी दूसरे जन जितने गम्भीर थे, उतनी ही गम्भीरता की छाया उसके चेहरे पर भी पड़ी थी !

तोताचार्य जंगमनाथ को संदेश भेज दिया गया था और वे आने ही वाले थे !

कृष्णाजी नायक वारंगल का राजा। राजतंत्र-भार उसके कंधों पर था। तेलुगु, किरात और वनवासी उसे परेशान करते थे, फिर भी इस समय वह यहाँ उपस्थित था। वह आया था किसी दूसरे हेतु से। लेकिन आने के बाद रुक गया था। आचार्यश्री नागमूर्ति महाराज—भाव्यों के कुलगुरु—उन्हें भी संदेश भेजवा दिया गया था। कुलगुरु महाराज विहार करते थे और संदेश-वाहक उनके पीछे-पीछे फिर रहा था !

सभी लोग क्षोभ ओर चिंता में निमग्न थे। चार सेर मोतियों की माला का यदि एक सिरे का सूत्र छिन्न हो जाए तो, माला क्या खंडित नहीं होगी ? तमिल, तेलुगु, मलयाली और कन्नड़ की, चार सेर की मोती की इस माला में से, इस वक्त भागवतों का सूत्र भिन्न हो रहा था !

आचार्य वाकरहित थे। पिछले पन्द्रह दिन से उन्होंने अन्नग्रहण न किया था। नींद भी उन्हें न आई थी। और उनके मुख से एक भी शब्द न निकला था। मानो वे अवाक् थे !

और यह रोग किस जाति या प्रकार का था, यह वैद्यराज कुछ-कहीं समझ न पाए थे, हालांकि चरक और सुश्रुत के ग्रंथों को उन्होंने कई बार उलटा-पलटा था !

धीमे-धीमे बातें चल रही थीं। ये बातें साधारण थीं तथापि उन में भावी की चितारेखा व्यक्त थी !

भगवान् सप्त-ऋषि-प्रभव राजगुरु क्रियाशक्ति महाराज ने पूछा—

"क्यों, तुम्हारा काम कहाँ तक पहुँचा है ?"

"महाराज !" मानो ऊँघ से जाग कर राय हरिहर बोले, और प्रश्न समझ न पाए हों, इस तरह उन्होंने कहा—"जी महाराज, भगवान ने क्या मुझसे प्रश्न पूछा है ?"

"हाँ, तुम्हारा काम कहाँ तक संपन्न हुआ है ?"

"जी महाराज, अभी तो मुश्किल से चौथाई भाग समाप्त हुआ है।"

"बस !" राजगुरु ने विस्मय प्रकट किया—"बहुत धीमा चल रहा है, ऐसा प्रतीत होता है।"

उपस्थित सज्जनों में सबसे अधिक स्वस्थ प्रतीत होता था—सोमैया नायक ! और अधिकाधिक भार उसीके सिर पर था, परन्तु जैसे कम से कम भार वह महसूस कर रहा था।

स्वस्थ स्वर में सोमैया नायक ने कहा—

"भगवान् ! हम सब में सबसे विकट कार्य राय हरिहर के कंधों पर पड़ा है। भाँति-भाँति के अधिकार पत्रों, दानपत्रों, शिलालेखों और रूढ़ि-आचार, लोक-व्यवहार आदि की मालाओं में से—एक सीधी, सरल और सर्वमान्य रेखा खींच देना, कठिन कार्य है, भगवन् !"

फिर रुक कर बोले—

"यह काम शांति का है, उतावली में नहीं किया जा सकता ! स्वयं भगवान् विद्याशंकर महाराज ने इस कार्य के निमित्त, कम से कम सात वर्ष का अनुमान लगाया है। मेरा खयाल है दस-बारह वर्ष भी कम ही होंगे।... यदि भगवान की मर्जी होगी और सह्यवासिनी देवी की आज्ञा होगी तो विजयधर्म की पताका समस्त भरतखंड तो क्या समस्त अवनीतल पर फहराएगी ! और तब उसकी नींव में राय-रेखा रहेगी।"

"लेकिन, इसी हेतु आपने हमारे हाथ क्यों बाँध रक्खे हैं ?...." जवानी के जोश में राय बुक्काराय बीच में ही बोला ! परंतु, जैसे, सहज ही उसे यह ध्यान आ गया कि अपने से बड़ों के बीच में बकवास कर उठा है, वह तत्क्षण चुप रह गया। उसके कोमल, नवयुवा, नादान चेहरे पर लज्जा और संकोच के भाव आए और उसने फौरन सिर झुका लिया।

"यह कौन....बुक्काराय था क्या ?" सोमैया ने पूछा। उसके स्वर में स्वस्थता थी और उलहना भी था !

"जी....जी ..क्षमा कीजिए...बिनाविचारे, उतावली में मैं बोल उठा। क्षमा कीजिए !"

सोमैया के वदन पर एक गम्भीर स्मिति छा गई ! आदमी अगर रो रहा हो तब भी जितना विषाद उसके बदन पर व्यक्त नहीं होता है, उतना विषाद इस 'स्मिति' में अभिव्यक्त था !

उसने कहा—"आओ, बुक्काराय, जरा निकट आओ।"

"जी...जी...अविनय क्षमा कीजिए !"

"क्षमा का सवाल नहीं ! जो बात तुम्हारे मन में है, वह अनेक लोगों के मन में है। मुझ-जैसे प्रज्ञा-चक्षु का जिन पर आधार है उन कृष्णाजी नायक और महामण्डलेश्वर राय हरिहर का भी ख़याल तुम्हारा-जैसा ही है। अतएव, जो कुछ तुम्हें कहना हो, साफ़-साफ़ कहो !"

"भगवान्...क्षमा...!"

"क्षमा की बात नहीं ! मैं तुम्हें क्षमा करूँ, और इस वक्त यह बात बन जाएगी, यह भी ठीक है। लेकिन तब तो तुम मेरे तन के साथी बनोगे और मुझे तो अपने मन के साथी चाहिए। भगवान वेदान्तदेशिक के सान्निध्य में हमें इस प्रश्न पर पूरी तरह विचार करना चाहिए। आप की बात मैं जानता हूँ और मेरी बात आप जानते हैं। अतः क्षमा तुम्हें तभी करूँगा, जब तुम उस बात को प्रकट में सबके सामने कह दोगे, जो तुम्हारे मन में है !"

"भगवान् ! आप महाकर्णाविप हैं। राजसंन्यासी के वाद आपने इस राज्य को चलाया है ! आप ही कार्याकार्य के समस्त उत्तरदायित्व सहित भगवान विद्याशंकर को यह राज्य सौंप देंगे ! अतएव, आपकी आज्ञा सदैव शिरोधार्य रहेगी। तथापि, चूँकि आप आज्ञा दे रहे हैं, मैं अपने मन के ढक्कन खोलता हूँ, और उसके नीचे दबे हुए शंका के भूत को वाचा देता हूँ—"

"तुम्हारे मन में शंका का जो भूत घुसा-बैठा है, वह या तो हम सबको भी लग जाएगा या उसका शमन हो जाएगा। अतः निःसंकोच होकर कहो—तुम्हारी क्या शंका है ?"

"तो भगवान् ! मेरी शंका यह है कि जब तक गाँव-गाँव के, जागीर-जागीर के, सीमा-सीमा के, मंदिर-मंदिर के मतभेदों का शमन होता है, जब तक चारों भाषाओं, चारों समय और अठारह वर्ण के लोगों को संतुष्ट कर

सके, ऐसी राय-रेखा का प्रबन्ध पूरा होता है, तब तक आप हमारे हाथ-पैर क्यों बाँधकर रखना चाहते हैं ? हममें उत्साह है। हमारे पास पर्याप्त साधन हैं। हममें शक्ति और साहस है। मरने-मारने का निश्चय है, फिर भला, हम-जैसे मरणाकांक्षियों को आप क्यों रोक रहे हैं ?"

"राय हरिहर की राय-रेखा जब तक पूरी-पूरी अंकित नहीं हो जाती, तब तक तुरुष्कों से कोई युद्ध न करे, कोई बखेड़ा न बनाए—सबके लिए मेरा यह आदेश है। तुम इसका कारण जानते हो ?"

"नहीं जी ! हम, अब तक यह नहीं समझ पाए कि राय-रेखा और युद्ध का क्या सम्बन्ध है।"

"गतानुगतिक व्यक्ति की विचारधारा उसे किस प्रकार दूषित कर देती है, इसका यह उदाहरण है। दो सौ सालों से भरतखंड में, हिमालय से लेकर सेतुबंध तक, तुरुष्कों से युद्ध होते रहे हैं और उन युद्धों में हमारे वीरों में वीरता की कहीं कमी न थी ! सेना-संचालन के कौशल का अभाव भी नहीं था। सिर को हथेली पर धर कर जूझनेवाले मरदानों की भी कमी न थी। मृत्यु के लिए ललकनेवालों का भी अभाव न था। धन भी अपार था। साधन अनेक थे।...

"और हक़ीकत तो यह है कि तुरुष्क जब भारत में आए, तब उनके पास सिवाय सिपाहियों के और कुछ न था ! और हमारे पास सब-कुछ था ! फिर भी हम तुर्कों का मुकाबला न कर सके, इसका कारण जानते हो ?"

"भाग्य ही रूठ गया था, जी !" बुक्काराय के बदले, हरिहर ने उत्तर दिया।

इस उत्तर से सबके सम्मुख एक बात प्रकट हो गई : महामंडलेश्वर महाकर्णाधिप की आज्ञा का पालन तो बराबर करते हैं परन्तु इनका मन अन्यत्र है।

"भाग्य क्योंकर रूठा है ?"

"दैव की अकृपा है ! वह हम से रुष्ट है ! हमारे देश में, प्रत्येक स्थान और स्थल पर तुर्कों को एक या दूसरा देशद्रोही मिला। तुर्कों के आक्रमणों का [illegible] वीरों का इतिहास नहीं है, शानेशमशेरों का इति-

ख़ाम नहीं है। यह तवारीख़ विजय की तवारीख़ नहीं है—भारतीय गद्दारों की तवारीख़ है।

इसलिए तुर्कों के आक्रमण के दो सौ सालों का इतिहास—समर्थ राजाओं के भयंकर देशद्रोह की कहानी है!

भारत मे धर्म का नाश, पराजय, अपमान, अवनति का कारण देश के गद्दार है। इन्हीं ने सूरमाओं को हथकड़ियाँ पहनाईं और सतियों के सतीत्व भंग करवाए!

"जी, यह तो स्पष्ट है।"

"इसका कारण?"

"कारण.. तो महाराज, लोभ और अभिमान हैं।"

"व्यक्तियों के लोभ और अभिमान को वश में रखना हो तो?"

राय हरिहर ने जवाब न दिया। बुक्काराय मानो जवाब खोजने में व्यस्त सिर खुजलाने लगा।

"देवों की कृपा हो तो...!"

"किंतु, देव-कृपा कभी बिना पुरुषार्थ के प्राप्त हुई है? देवों की कृपा का अर्थ है—बहुजन समाज की प्रीति! और उसे प्राप्त करने का साधन राय-रेखा। आज प्राचीन शास्त्रों और स्मृतियों के कतिपय आदेश निरर्थक बन गए हैं। कई युग और योग बदल गए हैं। अतएव, बहुजन समाज को आप न्याय और औदार्य की नींव पर सर्जित समाज की कल्पना दीजिए। रूप-रेखा दीजिए। फिर उससे कहिए कि तुर्कों के आक्रमण न हों, तब भी हमें इस प्रकार रहना है। और आक्रमण होने पर भी, उनकी पराजय के लिए, हमें इस प्रकार, इस व्यवस्था के अन्तर्गत रहना है।

यह व्यवस्था सब पर लागू होगी—राजा पर, साधारण जन पर, नट और बहुरूपियों पर! सब को यह धर्म-पथ पर ले जाएगी। यह विजयधर्म की राय-रेखा है।

आज तक अनेक राजतंत्र बदले। अनेक युग चले गए। इस कारण, जमीन, सम्पदा, धर्म, व्यवहार, कर, चुंगी आदि के नियम भंग हो गए हैं। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। आज व्यक्ति,

समाज और राज्य के सम्बंध बिना मूल के बह रहे हैं ! इस अवस्था में गद्दार लोग लाभ उठा रहे हैं—उन्हें सदा के लिए रोक देना है। मानवमात्र को अपने धर्म, धन, परिवार और सम्मान के भविष्य का अनुमान मिल जाना चाहिए—भले, आज नहीं, सौ वर्ष बाद भी ऐसी व्यवस्था स्थापित हो जाए तो समाज सुसंगठित हो जाएगा। फिर गद्दारों को मौका नहीं मिलेगा। लोग ऐसे विभीषणों की बात न सुनेंगे। जब आप इस चित्र को लोगों के सामने स्पष्ट कर देंगे, तब लोग अपने प्राण देने के लिए निकल पड़ेंगे।—आज नहीं, सौ साल बाद भी बलिदानियों की कमी न रहेगी। यदि तुर्क आक्रमण करेंगे तो, गाँव-गाँव, गली-गली, घर-घर लोग उनका सामना करेंगे।"

"जी, यह बात तो सच है।"

"आज हमारे यहाँ राजकीय कार्यालय नहीं। दानपत्र, अधिकार-पत्र, अग्रहार और देवालयों की कोई व्यवस्था नहीं। वामनमुद्राएँ भी नहीं। लोग स्पष्टतया समझ सकें, ऐसे धर्मादेश नहीं। आन्तरिक मतभेदों को दूर करने के लिए कोई निर्धारित नीति नहीं। आज यदि तुर्कों का हमला हो, तो उन्हें गाँव-गाँव में सुन्दर पांडच मिल जाएंगे। स्थान-स्थान पर गद्दार उनका साथ देंगे, इसलिए जब तक पूरी राय-रेखा अंकित न हो जाए, तब तक तुर्कों से लड़ाई मोल न ली जाए—यह मेरा आदेश है।"

अचानक उस कक्ष के द्वार ज़ोर से खुले और झालारी विबोया भीतर घुस आया !

सब लोग उसे देखते रह गए—रोषपूर्वक सबने उसे देखा। दादैया सोमैया यदाकदा ही ऐसे अच्छे अभिवचन सुनाते हैं, स्पष्टीकरण करते हैं। और आज जब ऐसा एक विरल अवसर आया तब यह बेढंगा आदमी भीतर घुस आया। उसे महाकर्णाधिप के सम्मान का भी ध्यान नहीं ! उनका ध्यान भले, वह न रख किन्तु भगवान वेदांतदेशिक महाराज की बीमारी का तो ख्याल उसे रखना ही चाहिए ! दर्शकों को इस विचित्र व्यक्ति की यह बात विचित्र प्रतीत हो रही थी।

भीतर प्रविष्ट होने पर झालारी कुछ देर खड़ा रह गया ! किसी अन्य

को न देखकर, वह भगवान् वेदांतदेशिक महाराज के बिछौने की ओर दौड़ा। उनकी चारपाई की पट्टी से अपना सिर पीटकर, रोता हुआ गदगद कंठ से कहने लगा—

"आचार्य प्रभु, भगवान्! मदुरा के युद्ध में राजसंन्यासी ने वीर गति पाई! भागवतों की सेना के अधिकांश भाग का संहार हो गया। मदुरा के सुल्तान एहसानशाह ने राजसंन्यासी का सिर रंगनाथ के मंदिर के तोरण पर लटका दिया है!"

अचानक मानो कड़कड़ाती बिजली गिरी हो, उस प्रकार सब लोग स्तब्ध, अवाक् रह गए!

: ४ :

मनुष्यता का मोल

पूरे पंद्रह दिन पश्चात् पहली बार भगवान् वेदांतदेशिक महाराज के कंठ से स्वर निकला। भागवतश्रेष्ठ के मुँह से एक चीत्कार निकली और वे पुनः बेभान हो गए।

श्रोता सभी स्तब्ध थे।

दादैया सोमैया के कान खड़े हो गए।

"कौन यह युद्ध की बात करता है ?"

"भगवान् ! यह तो मैं हूँ—भालारी बिबोया ! भगवान् कालमुख आचार्य विद्याशंकर का शिष्य।"

"शिष्य यदि है तो यहाँ कैसे आया ? शिष्य का युद्ध से क्या संबंध ? ऐसी गप्प और अफवाह कहाँ से ले आया तू ?"

"भगवन् ! न तो यह गप्प है, न अफ़वाह ! सुनी-सुनाई बात भी नहीं है—यह तो आँखों देखी बात है। उस युद्ध में मैं भी हाज़िर था। और मैं अकेला ही उस युद्ध से लौटकर आया हूँ ! शेष सर्व का संहार हुआ है। आचार्यप्रभु भागवतश्रेष्ठ को मैं राजसंन्यासी का अन्तिम संदेश देने के लिए यहाँ आया हूँ।"

किसी खेत में मानो हज़ार हल चल जाएं और धरती जिस प्रकार गहरी रेखाओं से भंग हो जाए, उस प्रकार सोमैया का चेहरा अकालवृद्धत्व की हज़ार-हज़ार झुर्रियों से भंग हो गया—भर गया !

"कौन-सा युद्ध ? राजसंन्यासी का कौन-सा संदेश ? क्या बात है ?" सोमैया नायक ने पूछा।

"तो क्या मदुरा के युद्ध के विषय में श्रीमान को कोई सूचना नहीं मिली ?"

"नहीं !"

"आचार्यप्रभु भागवतश्रेष्ठ ने भी कुछ न कहा ?"

"नहीं !"

"यह तो विचित्र बात है !" भालारी बोला—"क्योंकि, भागवतश्रेष्ठ के लिए राजसंन्यासी का अंतिम संदेश इस प्रकार है—"

"क्या है, किस प्रकार है ?"

"मुझ से उन्होंने कहा था—" किसी भी प्रकार, इस युद्ध से अपने प्राण बचाकर निकल जा तू ! मेरा घोड़ा ले जा। जब तक इसमें प्राण रहेंगे, यह तेरे प्राणों की रक्षा करेगा। तू भागवतश्रेष्ठ के पास जाना और मेरी ओर से उन्हें कहना—"भगवन् ! आपकी अभिलाषा और आदेश के अनुसार मैंने मदुरा पर आक्रमण किया। प्रथम प्रहार में भाग्य ने साथ दिया, परन्तु बाद में मेरी मनुष्यता के लिए मुझे मँहगा मोल चुकाना पड़ा। रंगनाथ के परम भागवतधाम को मैं तुर्कों के हाथ से मुक्त न करा सका। सम्भवतः मेरे विगत जीवन की त्रुटियों के कारण, श्री रंगनाथ को मेरा यह प्रायश्चित्त स्वीकार नहीं। मैं भगवान की इच्छा पूरी न कर सका। परन्तु अब भगवान से आशीर्वाद चाहता हूँ—कि परलोक में मेरी आत्मा को शांति मिले ! और इह लोक में मेरी कीर्ति पर कहीं कोई कलंक न रहे !"

सोमैया ने कठोर स्वर में राय हरिहर की ओर कहा—"महामंडलेश्वर ! आपने ऐसे किसी आक्रमण की अनुमति दी थी ?"

"आप पिता तुल्य हैं और महाकर्णाधिप हैं, अतः आपका मैं आज्ञाकारी हूँ। मेरे मन में आपका पूर्ण सम्मान है।" हरिहर ने सोमैया के पैरों पर अपना हाथ रखा—"मुझे ऐसे किसी आक्रमण का ज्ञान नहीं, सूचना नहीं।"

सुनकर सोमैया का स्वर उग्र हो गया—"तब राजसंन्यासी को सैनिक कहाँ से मिले ?"

"आप तो जानते हैं भगवान् ! आपके श्रीमुख के आदेश के अतिरिक्त, कावेरी और तुङ्गभद्रा के उस पार आक्रमण करने का मुझे किसी प्रकार

का अधिकार नहीं है। मेरी अधिकार-सीमा तो इतनी ही है कि इस प्रदेश की सीमा पर आक्रमण हो तो मैं उसके संरक्षण का प्रबन्ध करूँ।"

"कावेरी के निकटस्थ पथक के देश्यामात्य और कर्णाधिप गोपभट्टी हैं। कावेरी के सामने—उस पार वीर शैवों के पांड्य प्रदेश में कपाय नायक हैं। उनकी ओर से भी आपको कोई समाचार नहीं मिला ?"

"जी नहीं।"

"नहीं ?"

"जी, ये दोनों वीरवर, महाकर्णाधिप के शासन के अधीन हैं। विजय-धर्म के धर्मवीर हैं। मेरी तरह इन्हें भी इस आक्रमण की सूचना न मिली होगी। सूचना मिली होती, तो अवश्य ये सहायता करते। आक्रमण को रोकते! ये लोग श्रीमुख का आदेश जानते हैं और उसका पालन करते आए हैं।"

"यह बात मुझसे पूछिए न ?" भालारी ने कहा—"मैं कहता हूँ—भागवतश्रेष्ठ भी समय आने पर तुमसे कह देंगे। आप की आज्ञा हो तो मैं कह दूँ और भागवतश्रेष्ठ से जानना चाहते हों तो, उन्हें सुधि आने दीजिए, तब, उन्हीं से पूछ लीजिएगा।"

राय हरिहर ने भागवतश्रेष्ठ की ओर देखा। उनका चेहरा उजली रुई-सा था! काया काष्ठवत् थी। राजवैद्य अपने हाथ में उनकी नाड़ी थामकर बैठा था। उसके आदेश पर कृष्णाजी नायक रोगी की पगतलियों पर सोंठ की मालिश कर रहे थे!

राय हरिहर ने कृष्णाजी की ओर देखा। कृष्णाजी ने सिर हिलाया। और भालारी की ओर देखकर कहा—

"इस समय आचार्यश्री को कष्ट कैसे दें ? आप जानते हैं तो आप ही बताइए।"

"शृंगेरी मठ में राजगुरु विराजमान हैं। बेलगोला में नागकीर्ति महाराज विराजमान हैं। तंजौर के रुद्रभैरव मां जंगमनाथ विराजमान हैं। भागवतों का एकमात्र परमधाम तुरुष्कों के अधिकार में! अधिकार में—इतना ही नहीं; सुल्तान मंदिर में ही रहता है! यह बात भागवतश्रेष्ठ को

बुरी लगती थी, अपमानजनक प्रतीत होती थी ! उन्होंने राजसंन्यासी से कहा कि मेरे जीते जी यदि रंगनाथ मुक्त हो जाए तो, अच्छा है। राज-संन्यासी ने वचन दिया और भागवतों से चर्चा की और तब कावेरी पार के भागवत जो वीरशैवों के बीच रहकर लड़ते थे, साथ में आए। उनके पाँच हजार सैनिक थे।...लेकिन कोई लौटकर नहीं आया—सिर्फ़...अकेला मैं—!"

यह सुनकर सब चुप रहे। जन-समाज में इस समाचार का क्या दुष्प्रभाव पड़ेगा, यही कल्पना-वेदना सबको चिन्तित कर रही थी। जनसमाज पर यह भाव छा जाए कि तुर्क अजेय हैं—उनके विरुद्ध किसी प्रकार के पुरुषार्थ का प्रयोग नहीं हो सकता ! तब क्या होगा ? इस समय लोगों में जो नया जोश और रोष भरा है, क्या वह इस समाचार पर भी स्थिर रहेगा, अथवा मंद पड़ जाएगा ?

कृष्णाजी नायक ने राजगुरु की ओर देखा, क्रियाशक्ति महाराज गम्भीर थे !

कृष्णाजी ने पूछा—लेकिन, आप कुछ कह रहे थे...मनुष्यता के मोल चुकाने की बात ?"

"नायक !" भालारी सावधान होकर कहने लगा—"भले, राजसंन्यासी ने अपना मुकुट उतार दिया था, और राजदण्ड नीचे रख दिया था, परंतु उनका रणरंग अब भी पूर्ववत् था। मदुरा के सुल्तान के, उन्होंने छक्के छुड़ा दिये। तुर्कों का अनन्त संहार हुआ। इस बीच सुल्तान ने कहलाया कि— 'अब जंग बंद कीजिए। हम संधि की चर्चा करें। घायलों को ले जाएं। मृतकों का अन्तिम संस्कार करें।...राजसंन्यासी हिन्दू, फिर भागवत और यह रहा धर्मयुद्ध ! भला, वे अस्वीकार कैसे कर सकते थे ? उन्होंने स्वीकार किया। युद्ध बन्द हुआ। दोनों पक्ष अपनी-अपनी छावनी में चले गए।

फिर राजसंन्यासी और सुल्तान की मुलाकात हुई। उसमें सुल्तान ने स्वीकार किया कि वह सारा मदुरा नगर खाली करके राजसंन्यासी को सौंप देगा। इस प्रकार का राजकीय वचन देकर सुलतान ने अपनी मांग पेश की—हमारी दोनों सेनाएं मदुरा से हट जाएं। हम मदुरा खाली करके आपको

दे देंगे, और अन्यत्र चले जाएंगे। उसके पहले घायलों की शुश्रूषा का प्रबंध किया जाए। मृतकों का संस्कार हो।...मनुष्यता की पवित्र भावना से प्रेरित राजसंन्यासी ने इस प्रस्ताव और प्रार्थना को स्वीकार किया। फिर, जिस समय हमारे थके हुए सैनिक विश्राम ले रहे थे, भोजन बना रहे थे, सुल्तान ने धोखा दिया—वचन भंग किया—भागवतों पर आक्रमण किया...और उसमें सभी सैनिक खेत रहे, वीर मृत्यु को प्राप्त हुए!"*

"अकेले तुम्हीं जीवित बचे ?..." कृष्णाजी का चेहरा दुःख से काला पड़ गया था। उनके मुख से तनिक कठोर और तिरस्कारपूर्ण यह वाक्य निकल गया। जैसे, बंदूक से गोली छूटती है !

भालारी बिबोया स्तब्ध रह गया। रोष से कांप उठा। उसके स्वर में कटुता आई—"आप राजा हैं, विजयधर्म के सेनापति हैं। महाकर्णाधिप और महामण्डलेश्वर की छाया में हैं। मैं तो एक साधारण वेसवागा हूँ। कारक हूँ। अतः आपसे अधिक क्या कहूँ? दूसरा कोई होता तो उसका सिर धड़ पर सलामत न रहता !"

"कई आदमी ऐसे होते हैं, जो दुश्मन के बजाय दोस्त का सिर उतार लेने में कुशल होते हैं।" कृष्णाजी की वाणी में कटाक्ष था।

बिबोया का हाथ तलवार पर गया। उसकी आँखों में अपमान का रोष सुलगा !

महामण्डलेश्वर हरिहर ने कहा—बिबोया ! शांत रहो। कृष्णाजी ! आप व्यग्र न बनें। सभी सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए और एक सैनिक भी बचकर आ गया, यह भी हमारी ही जीत है। बिबोया को अपनी बात पूरी करने दीजिए।"

"अपनी बात....यदि भागवतश्रेष्ठ....ये महाराजश्री बेसुध न होते तो आप सज्जनों को कहते कि किसलिए राजसंन्यासी ने मुझे जीवित बच निकलने का आदेश दिया था और किसलिए मैं यहाँ आया हूँ ? मैं भी मनुष्य

---

* फ़रिश्ता, नूनीज़ और निकितिन—तीनों इतिहासकारों ने, इस प्रकार, इस युद्ध का उल्लेख किया है।

हूँ !....राजसंन्यासी का शीश रंगनाथ के गोपुर पर भाले पर चढ़ाया जाए और मैं देखता रह जाऊँ !....आप मुझे क्या समझते हैं ?"

"आप तनिक भी व्यग्र न होइए। आपकी वीरता के प्रति कोई शंकित नहीं है। आप जो कुछ कहना चाहते हों, स्वस्थतापूर्वक शांति से कहिए।"

"जी, महामण्डलेश्वर का आदेश मैं सिर पर चढ़ाता हूँ। संदेश मैं भगवान वेदान्तदेशिक महाराज के लिए लाया हूँ। मैंने यह संदेश पहुँचाने की राजसंन्यासी के सम्मुख प्रतिज्ञा ली थी।"

"संदेश वह हमें सुनाया जा सके ऐसा नहीं है ? क्या भगवान के निजी कानों तक ही पहुँचाना है ?" महाकर्णाधिप ने पूछा।

"राजसंन्यासी ने ऐसी कोई सूचना नहीं दी थी। यह भी नहीं बतलाया था कि भगवान यदि बेसुध हों तो क्या किया जाए ? और संदेश में निजी या गुप्त कुछ नहीं है। उन्होंने यही कहलाया है—"मैं आपकी अभिलाषा पूर्ण करने में असमर्थ रहा ! इस हेतु अपने प्राणों का बलिदान देने का अहोभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। अब, मैं आपसे यही आशीष माँगता हूँ कि मेरे पूर्वावतार की समग्र अकर्मण्यता धुल जाए और मेरी कीर्ति पर कलंक न लगे !"

सहसा भगवान वेदांतदेशिक अपने बिछौने पर बैठ गए ! ऐसा प्रतीत होता था, उन्हें जो आघात लगा है, उसका प्रभाव विनष्ट नहीं हुआ है। उनका जाग्रत मन अब भी बेसुध प्रतीत होता था। उनका सुषुप्त मन मानो संचरित था !

"इस हत्याकाण्ड का उत्तरदायित्व मुझ पर है ! भगवान रंगनाथ मुझे क्षमा करें।" तदन्तर भावहीन और भारपूर्ण कंठ से उनका स्वर उठा— "रंगनाथ ! भगवान रंगनाथ ! तेरी कीर्ति और तेरी महिमा....म...हि.... मा...भगवान रंगनाथ !"

और भगवान वेदान्तदेशिक अपनी शैया पर पड़ रहे !

राजवैद्य ने उनकी नाड़ी अपने हाथ में ली। उसे थामे रहे। एक दर्पण मँगवाया। भगवान की नाक के सामने रखा। फिर उस सर्वथा स्वच्छ दर्पण को देखा।

फिर राजवैद्य ने दर्पण एक ओर रख दिया और नाड़ी छोड़ दी। बोला—"भगवान वेदान्तदेशिक महाराज की इहलौकिक लीला समाप्त हुई!" तदुपरांत, वे वेदान्तदेशिक महाराज के कान में ओंकार जपने लगे।

सब लोग खड़े हो गए। भगवान के पैरों पड़े। अब इस धाम में भागवत और भाविक आएंगे। भगवान की अंतिम यात्रा के लिए पालकी सजाई जाएगी। अंतिम संस्कार के लिए भगवान की देह को कावेरी के जल से स्नान कराया जाएगा। चंदन से चर्चित, पुष्पों से सज्जित देह की अंतिम यात्रा आरंभ होगी।

उपस्थित जन गम्भीरवदन—वहाँ से बाहर निकल आए।

सप्त-ऋषि-प्रभव क्रियाशक्ति महाराज क्षण भर वहीं खड़े रहे—"आचार्य भागवतश्रेष्ठ! आपकी इस अंतिम यात्रा के आरम्भकाल में हम आपको अभिवचन देते हैं कि भगवान रंगनाथ के धाम को तुरुष्कों के बन्धन से मुक्त कराकर ही रहेंगे।"

: ५ : एक शर्त

अनादि काल से दक्षिण में एक कहावत प्रचलित है—"एक से अधिक चोले जहाँ मिलते हैं वहाँ चोलेत्री तो होगी ही।"

चोलेत्री यानी चावल का नमूना। चोलों को चावल का बहुत शौक था। चावल के भाँति-भाँति के पकवान बनाने में वे बहुत चतुर थे। चोलों को चावल इतने पसन्द थे कि 'चौल' चावल का प्रतीक बन गया।

राजमार्ग पर, रास्ते के एक ओर, किसी झाड़ के नीचे, किसी नदी के किनारे—जहाँ-कहीं भी नज़र जाती है: चोल चावल पकाते हैं और चावल का एक न एक पकवान बनाते ही हैं। राजमार्गों, शहरों या मेलों में स्थित मुसाफिरों के भोजनालय "चोलेत्री" के नाम से प्रसिद्ध हुए।

अहिलोल, श्रवणबेलगोला, होनावर, वातापी द्वारसमुद्र, मंगलौर—ये सभी वीर-वणिक-वर्ग के बड़े-बड़े स्थानक हैं। वीर वणिक लोग देश-विदेशों से—सौराष्ट्र, मालवा, ब्रह्मदेश, मलाया, ईरान इत्यादि व्यापारियों के साथ व्यापार करते हैं। पूर्वी, दक्षिणी और पश्चिमी समुद्रों में इनके जलयानों का बारहों मास, आवागमन रहता है। इनके बनजारे वर्षा ऋतु को छोड़कर आठों महीने, भीतर और बाहर कारवाँ लेकर घूमते हैं। चारों मौसम के लिए मंदिर भी अनेक हैं। जिनके दर्शन करने, यात्रा करने और मनौती मानने वाले भक्तों का भी आवागमन बहुत होता है।

जितनी भीड़ अधिक होती है, उतनी ही चोलेत्रियाँ स्थान-स्थान पर बढ़ती जाती हैं। चोलेत्री यानी सामान्य भोजनालय ही नहीं, धर्मशाला भी

है। पड़ाव भी डाल सकते हैं और आश्रय भी ले सकते हैं। मार्ग के एक ओर, वन में, चाहे किसी नदी के तट पर, चाहे गाँव के निकट अथवा बस्ती के निकट, यदि कोई बगीचा है तो वहीं चोलेत्री में घोड़ा, बैल या गधा बाँधने की सुविधाएँ रहती हैं। उनके लिए घास का प्रबंध रहता है। और यात्रियों के लिए भोजन के पश्चात् सोने-बैठने के लिए, स्नान करने के लिए, पूरा-पूरा प्रबन्ध रहता है। एक जीतल से लेकर एक वराह तक के मूल्य की कोई भी वस्तु ख़रीदी जा सकती है—ऐसी अनेक चोलेत्रियाँ १३वीं और १४वीं शताब्दी में दक्षिण में, स्थान-स्थान पर, विद्यमान थीं।

और अनेक यात्री यहाँ निवास करने के लिए भी आते थे। साधारण और उच्च वर्ग के लोगों को जुआ का शौक था। और एक-एक चोलेत्री का 'सामी' जुआरियों के लिए, सभी प्रबंध करता है। दोनों पक्षों की ओर से वह '*गंड' देता भी है और लेता भी है। साथ ही जुए में उसका हिस्सा भी रहता है।

और ऐसी चोलेत्रियों में, द्वारसमुद्र के निकट, सोम सामी की चोलेत्री भी थी। वैसे तो, सोम सामी सोमेश्वर मंदिर का पुजारी-महाराज और मूलतया उनका अग्रहार भी था। अग्रहार: मंदिर की पूजा करता है और ज़मीन का उपयोग करता है। परंतु, विद्या के नाम पर सोमेश्वर महाराज को, कठिन परिश्रम पर भी, संस्कृत का एक श्लोक भी कंठस्थ न हुआ। और हाथ सहज ही खेती के हल के अभ्यस्त हो गए। मंदिर के देवता की पूजा की अपेक्षा हल-बैल की चाकरी लाभदायक एवं सरल प्रतीत हुई। अपनी भूमि और खेतों में कृपिकार्य के सहयोग के लिए सोमेश्वर द्वारसमुद्र की 'होलेय-पीठ' में एक स्त्री होलेय (खेतिहर मजदूर) की ख़रीदी के लिए गया। लेकिन, ख़रीदी के लिए गया सोमेश्वर तो खुद ही ख़रीद लिया गया!

बात यह थी कि स्त्री होलेय की ख़रीदी के लिए गए हुए इस कुरूप और कुँआरे ब्राह्मण को बाज़ार में बिकते होलेयों में से 'बोमाया' पसंद

---

* यदि कोई व्यक्ति हार जाता है और तत्काल रूपया नहीं दे सकता तो वह जो जमीन या जमानत देता है, वह 'गंड' कहलाता है।

आई। बदन में इकहरी, दिखने मे न गोरी, न काली—ऐसी श्यामा, और दुबली-पतली थी वह। 'होलेय-पीठ' में सवेरे के आधे अँधेरे और आधे प्रकाश में धतूरे के खिले हुए फूल के समान, इस स्त्री-होलेय को ब्राह्मण ने खरीद लिया।

और इस प्रकार सोम सामी का भाग्योदय हुआ!

बोमाया थी तो किरात जाति की, परन्तु बहुत जीवटवाली और हाथ में लिए हुए कार्य को पूर्ण करने वाली! अतः बहुत ही थोड़े समय में, अग्रहार के क्षेत्र में खेती करती-करती वह सोमेश्वर महाराज के जीवन क्षेत्र में भी खेती करने लगी!

सोमेश्वर इतना सीधा-सादा आदमी था कि किसी प्रकार का प्रपंच या ढोंग उसे छू भी न गया था। फिर समाज को छलने की बात तो दूर रही। जब बोमाया खेत से हटकर, सोमेश्वर के घर में आई, तब सोमेश्वर ने किसी प्रकार के पर्दे की आड़ न ली। दूसरे विप्र या शेट्टि, समाज की नज़रों में धूल झोंकने के लिए, बहुत कुछ करते थे। परन्तु सोम सामी ने कुछ न किया। वह मंदिर से इतना दूर और धरती के इतना निकट था कि उसके अपने और बोमाया के निजी संबंध, लोक-लाज की छाया में, छिपने ही चाहिए, यह, उसकी समझ के बाहर था। मिथ्या भाषण पर भी लोग वही-कुछ कहते रहेंगे, जो वे देखेंगे। इसलिए उनकी आँखों में धूल झोंकने का प्रयत्न करने से क्या लाभ? यों सोचकर सोमसामी ने बोमाया से लोक-रीति के अनुसार विवाह किया।

अलबत्ता, विवाह विषयक सोमेश्वर की नादानी पर पर्दा डालने के और भी कई मार्ग थे। वह चाहता तो बोमाया को होलेया ही रख सकता था। अथवा मंदिर की देवदासी के रूप में रखकर उसका उपयोग, अपने स्वार्थ के लिए कर सकता था। लेकिन, ऐसी कोई प्रच्छन्न-पगडण्डी सोम को सूझी नहीं!

अतः वर्णसंकर-विवाह के कारण, उसका अग्रहार चला गया। उसका हिस्सा चला गया। उसका यज्ञोपवीत चला गया और वह 'विप्र-विनोदी' बना। चतुर्वर्ण-समाज से वह भ्रष्ट हो गया!

इसलिए सोमसामी ने बोमाया को अपना साथी बनाया और द्वारसमुद्र से चंद्रगुटी की ओर जानेवाले राजमार्ग पर, द्वारसमुद्र के बाद, पहले ही पड़ाव पर एक चोलेत्री की स्थापना की। यह चोलेत्री इतनी बड़ी थी कि इसमें किसी 'देवांग' की पूरी मंडली रह सकती थी। यात्रियों का समूचा संघ यहाँ आकर ठहर सकता था। यदि [illegible]रसमुद्र के ब्राह्मणों और श्रेष्ठियों के मन में जुआ खेलने की इच्छा होती तो उन्हें भी यहाँ पर्याप्त शरण सुलभ थी।

भालारी बिबोया और सोमसामी की पहचान पुरानी थी—जब कभी सोमसामी और बोमाया खरीदी के लिए दोरासमुद्र में आते हैं तो, एक-बैल-की अपनी गाड़ी बिबोया के यहाँ छोड़ देते हैं। और बिबोया जब द्वार समुद्र के पांचाल का काम करते-करते ऊब जाता है तो, जाकर सोमसामी के यहाँ विश्राम करने लग जाता है—ऐसी, दोनों की मित्रता थी। इसलिए, दोरा समुद्र में आकर भालारी बिबोया ने निवास किया था!

अत: जब सालुवा मांगी भालारी बिबोया को मिलने के लिए आया तब सोमसामी के वहीं आया।

चोलेत्री का अधिकांश मजदूरी का काम बोमाया ही करती थी और सोमसामी अतिथियों का आदर-सत्कार किया करता था।

देहली में प्रवेश करते ही, आम के बड़े पेड़ के नीचे ओटले पर भालारी पलथी मारकर बैठा था। और एक [illegible] पहने सोमसामी उसके सामने बैठा था। और वह इस तरह डोल रहा था जिस तरह सुमंद पवन में किसी बड़े पेड़ का सिरा डोलता है।

और इन दोनों के बीच में पान की तश्तरी रखी थी। साधारण अतिथि का सत्कार जलपान से किया जाता है। और ग्राहक का सत्कार इलायची और लौंग से किया जाता है!

सोमसामी और भालारी बिबोया निकट संबंधी थे।

अभी ओरमझ के जहाज़ आए न थे और न खत्ताना का ही कोई समाचार मिला था। नैपाल, (मद्रास के पास नैपाल नामक द्वीप) और मैलापुर से रवाना होने वाले, कासिद अभी चले न थे। इसलिए सोमसामी

के धंधे का मौसम ठंडा था। और सोमसामी मौसम शुरू होने की प्रतीक्षा में दिन गिन रहा था!

इसलिए फ़ुर्सत के इस समय भालारी का आना सोमसामी को अच्छा लगा।

सुबह के प्रातःकर्म के पश्चात् दोनों परिचित बैठे पान खा रहे थे। इलायची और लौंग का सेवन करते हुए ज़माने भर की चर्चा कर रहे थे।

सोमसामी ने कहा—"इस समय भागवतों में भारी शोक प्रचलित है। वेदांत देशिक महाराज की लीला और वैभव-माला अति विस्तृत है। पिछली बार गोकुल अष्टमी की रथ-यात्रा में मैंने उन्हें देखा तो ऐसा लगा कि अभी पच्चीस वर्ष और जिएँगे।"

इसके उत्तर में, पान का बीड़ा बनाते हुए बिबोया ने कहा—"महाराज अस्सी वर्ष के हैं किंतु शरीर पर एक भी झुर्री नहीं है। फिर भी वर्ष अपना काम तो करते ही हैं।"

"अस्सी वर्ष? विश्वास नहीं होता।"

"पूरे अस्सी--एक भी कम नहीं।"

"बड़े धर्म-परायण हैं।"

"क्यों न हों! वे तो राजगुरु और धर्मगुरु हैं। सभी भागवतों में श्रेष्ठ हैं। यदि वे ही धर्मपरायण न हों तो काम कैसे चल सकता है?"

"लेकिन सुना है, इन दिनों राजगुरु तो क्रियाशक्ति महाराज हैं।"

"हाँ, भगवान विद्याशंकर महाराज ने ऐसी आज्ञा दी है कि भागवत, शैव, वीर शैव और निगंठ—इन चारों के धर्माचार्यों में, जो वयोवृद्ध हो, वही राजगुरु कहलाता है। और आयु की प्रतियोगिता में तो वेदांत-देशिक महाराज को, क्रियाशक्ति महाराज ने, कम से कम दस वर्ष पीछे छोड़ दिया है। वेदांत-देशिक महाराज अस्सी वर्ष के हैं तो, क्रियाशक्ति महाराज नब्बे के होंगे!"

"तो, क्रियाशक्ति महाराज के बाद राजगुरु कौन बनेगा? उनका शिष्य?"

"नहीं। वेदांतदेशिक महाराज बीच में ही चले गए, अब क्रियाशक्ति तीर्थ के बाद राजगुरु की बारी है निगंठनाथ नागकीर्ति महाराज की।"

"ये भी बड़ी विचित्र बात है।" सोमसामी ने कहा—"भागवतों के राज्य में राजगुरु शैव के बाद आएँगे निगंठ। इनके बाद यदि जंगमनाथ की बारी आएगी तब भी कोई बात नहीं। क्योंकि हमें तो जाति से बाहर निकाल दिया गया है!"

"जाति-पाँति में रखा ही क्या है?" बिबोया ने फिर कहा—"जाति-पाँति में क्या रखा है? यह खाना और वह न खाना, इस प्रकार पूजा करना और उस तरह न करना, इसकी लड़की के साथ शादी करना, तो उस लड़की के साथ शादी न करना, इस मंदिर में जाना और उस मंदिर में न जाना—ऐसी ही बातें हैं!" बिबोया ने तिरस्कारपूर्वक हँसकर कहा—कालयवन जब आया था, तब कोई जाति-पाँति की बात काम न आई थी! जाँति-पाँति का भेद तो हम लोगों ने ही सहेज कर रखा है। परन्तु तुर्कों ने तो सभी को समान ही माना!

"तुर्क यदि पुनः यहाँ आएँ तो, सचमुच हमारा उद्धार होगा!"

"क्यों? अरे ब्राह्मण! ऐसी जासूसी बातें क्यों करते हो?" बिबोया ने कहा—"जासूस बने हो तो कह देना, हाँ, तो मैं अपना डेरा लेकर यहाँ से चलता बनूँ।"

"अरे, तू क्या पागल हो गया है!"

"तू क्यों कहता है कि तुर्क, यदि, फिर आएं तो हमारा उद्धार हो जाए?"

"इसमें, मैं क्या-कुछ झूठ कहता हूँ? तू ही कहना, यदि तुर्क आए न होते तो, मेरा क्या होता? अरे, मुझे चाण्डाल माना होता, चांडाल! अरे, मैंने बोमाया के साथ विवाह कर कौन-सा पाप कर डाला? यदि मैंने उसे देवदासी बनाई होती तो, कोई बाधा न पड़ती और मैंने उसे होलेय बनाकर रखा होता, तो भी कोई कठिनाई न पड़ती। अरे, यदि मैं उसें वेश्या के समान रखता तो भी कोई कठिनाई न होती। मैं तो सत्यवादी बना। मैंने सोचा कि जिसके उदर से अपना बालक जन्म लेने वाला है, उसका सम्मान

रखना चाहिए। लेकिन इसी वजह मुझे जाति से बाहर निकाल दिया। गाँव से बाहर कर दिया। मेरा अग्रहार गया, मेरा मंदिर गया, मेरी पूजा गई! इस लिए यदि तू मुझ पर विश्वास करे तो कलिकाल में कोलाहल न होगा!"

"परन्तु भाई," बिन्नोया ने पान खाते हुए कहा—

"जाति गई चूल्हे में! और मंदिर गया तो कुछ नहीं गया, जिसे मिला होगा, भले, उसका लाभ हो, हमें क्या! यहाँ तुझे इस अन्नपूर्णा के मंदिर में नुकसान क्या?"

"कोई नहीं। और यहाँ तो, मेरे बेटे मुझे ही जाति के बाहर कर देने वाले ब्राह्मण भी आते हैं और मेरे पोते के साथ किसी न किसी सुन्दरी को भी लाते हैं।" सोमसामी ने आधे रोष और आधे तिरस्कार से कहा— "ज़माना झूठों का है। सच्चे लोगों की दुनिया ही नहीं रही। यदि स्थिति इस के विपरीत होती, तो तुर्क यहाँ पर नहीं आते।"

"ऐसा न कहो, यह तो 'गाली' कही जाती है। जाति-पाँति एक बात है, और विजय-धर्म दूसरी बात है।"

"परन्तु यह विजयधर्म का नया ढोंग है क्या? क्या यह तुम्हारी समझ में आता है? मुझे तो कुछ पता नहीं चलता! भागवत धर्म (वैष्णव धर्म) का नाम तो मैंने सुना है; और निगंठों का भी परिचय प्राप्त किया। अरे, मुंडी भिक्खुओं का बौद्ध धर्म अब न रहा, परन्तु उसे भी जाना है। उस 'बसव' के 'जंगम' की जानकारी भी प्राप्त की है। और 'शैवमत' तो अपने बाप-दादाओं का धर्म है! परन्तु यह विजयधर्म क्या है?"

"तब तो, सोमसामी बात मेरी सुनो। यदि तुम कहो तो मैं विजयधर्म पर लम्बा भाषण दूँ, अथवा, संक्षिप्त में कह दूँ।"

"भाई, संक्षिप्त में कहो। तुम बेसवागा हो और मैं ब्राह्मण हूँ। धर्म के भाषण, धर्म के वर्णन, धर्म की पूँछ और धर्म के सींग हमारी पहुँच के अन्दर है। इसलिए तू क्या भाषण देगा, कहे, तो मैं भाषण दूँ!"

"तब, मुझसे क्यों पूछते हो?"

"यदि हम विभिन्न विषयों पर भाषण दें, पुराण-पारायण के लिए

अथवा कथा-कहानी कहने के लिए बैठें तो क्या सभी कोरी बातें समझी जाती हैं ? कहो तो मैं आठ प्रहर तक पारायण के लिए बैठ जाऊँ। लेकिन मर्म की बात नहीं समझता हूँ, यह साफ़-साफ़ तुम्हें बतला देता हूँ।"

"तो याद रखो, उस विजयधर्म का अर्थ पूजापाठ, मंदिर दर्शन अथवा पोथी-पतरा पढ़ना नहीं है, किंतु वह तो शीश और शोणित का धर्म है।"

"ठी...क। तो फिर ?"

"तो सार यह है—हाथ में पानी लेकर प्रण करो कि मृत्युपर्यंत इस देश के अन्दर तुरुष्कों को नहीं आने दोगे।"

"अरे भाई, तुरुष्क यहाँ आएँ, इसे, कौन पसन्द करेगा ? परन्तु, वे हमारे या तुम्हारे प्रयत्न से रुकने वाले नहीं—जब उनको आना होगा तब ?"

"अब समझे तुम सोमसामी ! समझ गए। यदि तुम्हारे मरने पर वे आएँ तब तुम न उन्हें देखोगे और न झुलसोगे। परन्तु तुम्हारे जीवित रहते वे आएं तो तुम्हें हथियार लेकर, वीरतापूर्वक उनका सामना करना पड़ेगा। वक्त आने पर अपना बलिदान भी देना होगा।"

"यह तो वही हुआ न, जो चित्तौड़ या जैसलमेर के राजपूत केसरिया बाना पहनकर करते थे ?"

"हाँ....हाँ वैसे ही। परन्तु, अन्तर केवल इतना ही है कि वहाँ केसरिया वस्त्र पहनकर राजपूत जौहर करते थे और यहाँ सभी करते हैं।"

"राजपूतों के जौहर करने पर भी तुरुष्क तो आए ही।"

"हाँ, राजपूतों का बखेड़ा तो बड़ा था—आपस में फूट थी। पड़ौसी से यदि झगड़ा होता तो उसका साथ नहीं देते थे। इसीलिए तो, हम लोगों ने कुछ राजपूतों को अपने साथ नहीं रखा।"

"अब मैं अच्छी तरह से समझ गया, परन्तु इस में मेरा क्या ?"

"क्यों ?"

"मैं तो विप्रविनोदी हूँ, सेट्ठि नहीं हूँ, और न तो इडांगी[1] और न

१—वामपक्ष का सदस्य।

वालागी[1] और न वीरवणिक ही हूँ। न होलेय या पालेर ही हूँ। और मैं तो चांडाल भी नहीं !"

"अरे, तो तू अब भी नहीं समझा ? यह तो किसी इदांगी या वालांगी की बात नहीं है। किसी मत या पंथ के सम्प्रदाय की भी बात नहीं है। यह बात तो है प्राणों का बलिदान करने पर भी, तुरुष्कों को इस भारतीय भूमि पर पैर न रखने देने की। भला, तू चाहे जैसा हो। परन्तु यदि तुरुष्क यहाँ आएं तो तुझे दुःख होगा या सुख ?"

"तुरुष्कों के आने पर तो सुख होगा दोमारों और गौभूरी को। मुझे तो बिल्कुल लूट लिया।"

"जहाँ भगवान कालमुख विद्याशंकर की बात आए, वहाँ शीश झुकाना ही चाहिए।"

"तो बस, इतनी-सी ही बात है।"

"अच्छी बात है। यदि ऐसी बात है तो तुर्क आ ही न सकेंगे और यदि आ जाएँगे तो, उनका भागना मुश्किल हो जाएगा।"

"तुर्क यहाँ आते हैं, विजयी होते हैं, लूट-मार करते हैं—यह उनकी शक्ति नहीं, हमारी निर्बलता है।"

"हाँ, ठीक है,"—सोमसामी ने कहा। फिर उसने ऊँचे स्वर में पुकारा—"अम्मा ओ अम्मा।"

आवाज़ सुनकर भीतर से एक स्त्री वहाँ आई। शरीर उसका सशक्त था। रग-रग में लाल लहू बह रह था। तनिक कठोर होते हुए भी वह कमनीया प्रतीत होती थी। उसकी कमनीयता नज़ाकत नही थी। परन्तु किसी गाँव को लूटने के लिए जाने वाले डकैतों की टोली का नेतृत्व करन के योग्य थी उसकी कठोरता। और उसकी यह देह काले संगमरमर से बना रूप का रति-मंदिर था।

त्रिबोया इस स्त्री की ओर निहारता ही रह गया। फिर सिर हिलाकर कहने लगा—"विप्रविनोदी होने पर भी तेरी इस में कोई ग़लती नहीं हुई।

१—दक्षिणपक्ष का सदस्य।

ऐसी नारी तुझे अपनी जाति में प्रदीप के प्रकाश में भी न मिलेगी। यदि मुझे भी दूसरी बोमाया मिल जाए और तेरे जैसी चोलेत्री भी मिल जाए तो मैं भी विप्र-विनोदी बन जाऊँ। ठीक है, न, अम्मा!" बोमाया के सामने देखकर, बिबोया ने हँसकर पूछा—"तुम्हारी कोई छोटी बहन-वहन नहीं है?"

उत्तर में बोमाया हँस दी: "क्या भोजन-वोजन करना है या नहीं?"

"भोजन तो होगा ही। उसकी जल्दी क्या है? अभी ऐसा मौसम कहाँ है कि सुबह से ही दौड़-धूप की जाय?" सोमसामी ने कहा—"क्या डकैत आ रहे हैं? जब भूख लगेगी तब करेंगे भोजन। तू अपने रसोई-घर का काम समाप्त कर ले। हाँ, एक काम कर। सुबह से बातें करते-करते हम थक गए हैं। और समय अभी बहुत बाकी है। इसलिए जा, मेरे पाँसे तो ले आ। क्यों भावजी[१]! खेलेंगे एक दो दाँव?"

बोमाया ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं!"

"इस वक्त तू मना कर रही है तो मैं मान लेता हूँ। परन्तु ये तो मेरा बड़ा पुराना दोस्त है इसलिए दो-चार दाँव हम लोग खेल लेते हैं।"

"नहीं...नहीं...नहीं।" बोमाया बोली—"जुआ तो कभी नहीं... नहीं...और नहीं! शत्रु के साथ नहीं, अनजान मनुष्य के साथ भी नहीं, और न ही ग्राहक के साथ—और मित्र के साथ तो बिल्कुल ही नहीं। इस से तो घर का दिवाला निकल जाता है और आपसी प्रेम में वैर उत्पन्न होता है।"

"परन्तु तू इस तरह..." सोमसामी ने कहा।

परन्तु बोमाया का सिर हिलता ही रहा।

बिबोया ने हँसते-हँसते कहा—"अरे अम्मा, इस घोड़े पर तुम्हारी लगाम इतनी मज़बूत किस तरह है?"

"मैंने इसके संग घर बसाया, इस में कई शर्तें हैं। शराब नहीं पीना, जूआ भी नहीं खेलना—यह सब यदि छोड़ दो तो मैं अपनी जाति छोड़कर

१ भावजी—भावें और भावजी, ये साधारणतया एक दूसरे के सम्बोधन में काम में लाए जाते हैं।

तुम्हारे साथ गृहस्थी बनाऊँ, नही तो, नहीं ! चोलेत्री का धंधा है, इसलिए 'गंड' देने या रखने पड़ते हैं। सो, यह बात अलग है, परन्तु इससे अधिक आगे बढ़ना नहीं।"

"तुम्हारा प्रभाव बहुत शक्तिशाली लगता है। तुम तो सोमसामी की मालकिन लगती हो !"

"नहीं, यह मेरा सच्चा मालिक है," बोमाया ने कहा—"परन्तु जुआ खेलने की बात के अतिरिक्त, दूसरी बात कर सकते हो, कह सकते हो। जो कुछ कहोगे—मैं करने को तैयार हूँ।"

दोनों मे से किसी की कोई दूसरी माँग हो सकती थी। लेकिन वह बोमाया को ज्ञात न हो सकी। क्योंकि, उसी समय, एक घुड़सवार चोलेत्री के मकान में दाखिल हुआ।

उस अश्वारोही के सफ़ेद घोड़े, उसकी नाजुक काया और पगडी की रत्नमुद्रा देखकर दोनों को मालूम हुआ कि वह राज्य के उच्च अधिकारी के अतिरिक्त और कोई नहीं है। उसकी मुख-मुद्रा मध्यम वर्ग की थी और सूर्य की रोशनी में चमक रही थी। आगन्तुक राज्य का बहुत ऊँचा नहीं तो बहुत नीचा अधिकारी भी नहीं था।

अतएव सोमसामी चोलेत्री के योग्य सामी की तत्परतापूर्वक उठ खड़ा हुआ। एक तो संभाव्य ग्राहक, और दूसरे, राज्य का अमलदार ! सोमसामी दोनों हाथ जोड़कर, पाँच कदम आगे बढ़ा। बिबोया पलंग पर ही बैठा रहा। उसके-जैसे व्यक्ति को मानो अपना आसन छोड़कर, राज्य के अमलदार का सम्मान करने की ज़रूरत न थी।

पाँच क़दम आगे बढ़कर सोमसामी ने दोनों हाथ जोड़ लिये। वाणी में विशेष विनम्रता लाकर कहा—"नमस्कार सामी ! आज तो सालुवा मांगी जैसे राजकीय अधिकारी हमारे यहाँ का रास्ता भूल गए हैं !!"

सोमसामी सालुवा माँगी को न पहचान सके, यह असम्भव था। सालुवा ने इस चोलेत्री में पाँसे के कई दाँव खेले थे। उसने सोमसामी के यहाँ काफ़ी रक़म खर्च की थी और जुआ में कमाया भी था। सालुवा मांगी किसी ज़माने में बहुत बड़ा जागीरदार था। उन्हीं दिनों जुआ के फेर में पड़ गया

था। तब इसका सर्वस्व जुआ की भेंट चढ़ गया था। परिणाम में, यह राजा से रंक हो गया और अब एक-दो नौकरों के सिवाय, बाप-दादा के एक मकान के सिवाय, कुछ न रहा।

इस प्रकार सालुवा माँगी को सोमसामी जानता था। इसके अतिरिक्त वह राज्याधिकारी था। महाकर्णाधिप लंका से दो-तीन हाथी लाए थे। सालुवा मांगी उनका भंडारी था।

"आइए, आइए, नमस्कारम्, नमस्कारम्"—सोमसामी ने सम्मान दिया। और मुसकराकर पूछा—"कोई है आनेवाला? कुटीर तैयार किया जाए?"

किंतु आज सालुवा मांगी का मिजाज ठिकाने पर न था। उसके चेहरे पर यह भाव स्पष्ट था। ऐसा लगता था, उसके मुख से कड़वाहट छू गई है। और उस कड़वाहट की कटुता उसके चेहरे पर अब भी झलक रही है। और यों भी सालुवा मांगी का चेहरा चाहिए जैसा न था—पतला और लम्बा, सूखा चेहरा, छोटा-सा भाल, छोटी-छोटी आँखें, घुंघराले काले बाल और लम्बी नाक—ये सब मिलकर, उसके चेहरे को, पहली दृष्टि में आकर्षक नहीं बनाते थे। इसलिए, उसका सामान्य रूखा चेहरा इस वक्त अधिक रूखा और अधिक कड़ुवा लग रहा था।

उसने अपनी मूँछों को चबाते हुए, सोमसामी के नमस्कार का उत्तर दिया: "नमस्कारम्, भाव, नमस्कारम्। इस वक्त मैं संदेशवाहक हूँ। अरे, वह, भगवान् विद्याशंकर का चेला यहाँ पर है क्या?"

"भगवान कालमुख का शिष्य? मेरे यहाँ? सामी, यदि भगवान का शिष्य आता है तो या तो वह महाकर्णाधिप का कोई अमात्य अथवा अधिकारी होता है या मेरी इस चौलेत्री में रहने वाला यात्री।"

"अरे, तुम कहते हो वैसा चेला यह नहीं है, यह तो तान्त्रिक जैसा, बेसवागा है। जाति का पांचाल है। क्या सचमुच वह यहाँ है?"

"हाँ! परन्तु अब कहाँ वह भगवान का शिष्य है! वह तो कब का ही भाग निकला है—अब उसे शिष्य की जरूरत ही क्या है!"

"इसके बीच में हमें नहीं पड़ना चाहिए। महाकर्णाधिप दादैया सोमैया

ने कहा कि यह भगवान् विद्याशंकर का शिष्य है, इसलिए मैंने कहा। शेष आंतरिक भेद तो दादैया इसलिए नहीं जानते हैं कि वे आँखों से लाचार हैं।

सोमसामी हँस दिया : "इतने दिनों के बाद ऐसा कहने वाले केवल आप ही मिले।"

"कैसा कहने वाले ?"

"दादैया आँख से अंधे हैं, अतः वे सुन भी नहीं सकते—इस प्रकार कहने वाले। बाकी दूसरे तो कहते हैं कि दादैया अंधे होने पर भी दूर की वस्तु को देख सकते हैं।"

"सोमसामी ! दूसरों को तो ऐसा कहा नहीं जा सकता; क्योंकि बहु-जनसमाज तो 'टिटोड़ी' के समूह जैसा है; परन्तु तुम्हें तो कह सकते हैं। हम तो खुशामदी टट्टू हैं नहीं।" सालुवा ने कर्कश आवाज़ से आगे कहा—"अरे, यदि मैं किसी की खुशामद करता तो आज मैं किसी दूसरी ही जगह होता। परन्तु, हमें तो भाई—क्यों दादा बैठें ? क्यों दादा, चलें ? क्यों दादा, तबियत कैसी है ?—ऐसा कहते न आया तो न ही आया। और अब पक्के घड़े पर मिट्टी तो चढ़ नहीं सकती !"

"यह तो मैं भी जानता हूँ।"

"सामी, अब बहुत समय हो गया। और समय बहुत कम है, सोमैया तो कहता था कि भालारी यहीं उतरा है। वह यहाँ है या नहीं ?"

"हाँ, ये रहे।" सोमसामी ने बिबोया की ओर इशारा कर कहा।

"तो इतनी देर से चुप क्यों है ?" सालुवा माँगी ने अपने अधिकारी-स्वभाव का परिचय दिया—"अरे बिबोया !"

सालुवा माँगी चारपाई की तरफ बढ़ा।

बिबोया ने चारपाई से उठकर नमस्कार किया।

उसके नमस्कार का उत्तर देकर चारपाई पर बैठते हुए सालुवा माँगी बोला—

"बैठिए बिबोयाजी, मैं खास तौर पर आपके पास ही आया हूँ।"

"आपकी कृपा है, आने का कारण जानना चाहता हूँ।"

"नहीं, वैसे मुझे आपके पास भेजा गया है, इसलिए आया हूँ।"

उसकी आवाज़ में यह भाव स्पष्ट था कि यदि किसी ने उसे भालारी के पास भेजा न होता तो वह उसके पास आने का हीनाचरण न करता !

"जी !..."

"मुझे आपके पास भेजा है महाकर्णाधिप ने । जो कर्नाटक के राज-सिंहासन के प्रतिष्ठापन आचार्य कहे जाते हैं, उन्हीं दादैया सोमैया ने ! विजयधर्म के महामंत्री सोमैया नायक ने !"—सोमैया के सभी अधिकरण और उपाधियों का एक साथ प्रयोग कर, मानो, यह व्यक्ति उसकी हँसी उड़ा रहा है, मान नहीं कर रहा है—ऐसा भाव इसकी आवाज़ में साफ़-साफ़ प्रति-ध्वनित था !

और यह भी स्पष्ट था कि सालुवा माँगी को यहाँ आना अच्छा न लगा था ! फिर भी आना पड़ा था !

भालारी बिब्रोया कुछ समझ न सका !

सोमैया को किसलिए उसके पास भेजा गया ? शायद मदुरा के युद्ध के विषय की कोई बात है ।

सालुवा ने अतलस के एक टुकड़े को बाँस की फूँकनी में डालकर कहा—"महाकर्णाधिप के श्रीमुख का यह आदेश है । इसे तुम्हारे पास पहुँ-चाना था तो मैंने तुम्हारे पास उसे पहुँचा दिया ।"

बिब्रोया ने बाँस की फूँकनी मे से अतलस का टुकड़ा निकाल लिया । इस वस्त्रखंड पर कुछ लिखा हुआ था । नीचे राज्य की मोहर थी ।

"जी । यह किसका श्रीमुख है ?"

"हे भावजी !" सालुवा माँगी तिरस्कारपूर्ण शब्दों से बोले—"तुम तो भगवान कालमुख आचार्य विद्याशकर के शिष्य—यही आपका परिचय मुझे बतलाया गया है—क्या यह झूठ है ? तुम तो जैसे कुछ पढ़ नहीं सकते इस प्रकार मुझसे पूछते हो !"

"जी ! इसीलिए तो आपसे पूछता हूँ ।"

"भालारी ! मैं योद्धा हूँ, नायक हूँ, समझे ? मैं कोई साधारण ब्राह्मण नहीं ! किसी का लिखा हुआ पढ़ने का काम मेरा नहीं । अरे, मेरा खुद का लिखा हुआ मुझे पढ़ना पसंद नही !"

"जी ! परन्तु आप के भाल की रत्नमुद्रा देखकर मैंने सोचा कि आप राज्य के अमलदार हैं। अमलदार को लिखना तो आना ही चाहिए साथ ही साथ पढ़ना भी आना आवश्यक है। क्या मेरा यह विचार भ्रम मात्र ही है ?"

"भ्रम नहीं भावजी। परन्तु, तुम मुझे क्या समझे ?...तुम्हारा श्रीमुख तो तुम्हें ही पढ़ना चाहिए। इसके बदले, तुम मुझे पढ़ने की कह रहे हो। क्या तुम मुझे अपना निर्वाहक समझते हो ? मैं अमलदार हूँ, समझे भावजी ? तुम्हारा निर्वाहक नहीं"—सालुवा ने जरा उग्र बनकर कहा।

सालुवा मांगी के स्वाभिमान और स्वाधिकार से संबंधित यह संघर्ष सोमसामी ने टाल दिया। जिस समय सालुवा द्यूत रस में तरबतर होता, उस समय, कई बार वह अपने ही वश में नहीं रहता।

भालारी बिबोया कुछ कहे, इसके पहले ही सोमसामी ने उसके हाथ से श्रीमुख लेकर पढ़ डाला और हंसकर कहा—

"तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ भावजी, अभिनंदन !" फिर श्रीमुख के आदेश पत्रक को समेटकर बांस की नली में रखते हुए कहा—"महाकर्णाधिप दादैया सोमैया ने आपको कर्नाटक राज्य और विजयधर्म के हस्तिदल का दण्डनायक नियुक्त किया है।"

"मुझे ? मुझे ?...एक पांचाल भालारी को हस्तिदल का दण्डनायक बनाया ?...वर्णाश्रमधर्ममंडित इस शासन में एक बेसवागा को एक सेना का दण्डनायक बनाया जाए ?...सोमसामी ! तुमने शायद पढ़ने में भूल की है ?"

"नहीं। भूल नहीं की और आप इसके लिए नियुक्त किए गए हो, कौन-सी बड़ी बात है ! लंका जाकर आपने हाथियों के बिषय में सब कुछ जान-कारी प्राप्त कर ली हैं। लंका में तुम्हारे खुद के ही तो हाथी हैं ! यदि राज्य को हस्तिसेना की तैयारी करनी ही है तो तुम्हारे-जैसा दूसरा दण्डनायक कहाँ मिलेगा ?"

"हाँ, महाकर्णाधिप का ऐसा विचार है।" सालुवा ने कहा। ऐसा नहीं कि वह श्रीमुख शासन को न जानता हो। उसने कहा—"ऐसे महामानव

की नज़र में यदि दूसरा कोई न हो तो आप तो हैं न ! तुम वेसवागा हो, भालारी हो ! और राज्य का अमलदार।

"सामी !" सोमसामी ने सालुवा मांगी से कहा—"इन सब बड़ी-बड़ी बातों को तो बड़े लोग ही जानते हैं। मेरी तो एक बात है : आजकल कोई श्रीमुख आदेश राजगुरु को बताए बिना निकलता नहीं।"

"वेदांतदेशिक महाराज जीवित थे, तब तक तो, सब कुछ ठीक था। वे भागवतों की परम्परा के पंडित थे और इस परम्परा के विरुद्ध किसी बात को कभी स्वीकार नहीं करते थे। परन्तु अब तो राजगुरु शैव हैं न... "सालुवा ने बात को आगे बढ़ाने की कोशिश न की—"परन्तु जाने दीजिए इस बात को; तुम अब जब कभी हाथी-खाना आओगे, तब तुम्हारा अधिकारी तुम्हें विवरण बता देगा और दफ्तर सौंप देगा।"

बिब्रोया ने श्रीमुख हाथ में लेकर मस्तक पर स्पर्शकर अंगीकार किया। फिर आँखें टिमटिमाकर बांस की नली में देखने लगा। और बांस की नली को नीचे खाट से खटखटाया।

"इसमें कुछ नहीं है। क्या देखते हो ?" सालुवा मांगी ने कड़वाहट भरी आवाज़ में पूछा।

"नहीं। कुछ नहीं। यदि महाकर्णाधिप ने मुझे दलनायक का श्रीमुख भेजा है तो उसके साथ मुद्रा तो होनी चाहिए न ? यही मैं देख रहा था। बिना मुद्रा के अमलदारी किस काम की ? शायद किसी ने मेरी मज़ाक उड़ाई है।"

"हां...हां...मुद्रा ?..." सालुवा मांगी ने अत्यंत कठोर आवाज़ से उत्तर दिया—"मैंने सोचा—जब तक तुम्हारी मुद्रा तैयार हो, तब तक तुम धीरज रखोगे; परन्तु तुम तो अधैर्यवान हो। लो, यह मेरी मुद्रा तुम रखो !"

"तुम्हारी मुद्रा ? मुझे तुम्हारी मुद्रा से क्या काम ?" बिब्रोया ने कहा—"यह अपने पास ही रखो। मैं तो अपने अधिकार की रत्नमुद्रा के विषय में कहता था।"

"तुम्हारे अधिकार की मुद्रा यही है।" मांगी ने कहा, "मुझे सोमैया नायक ने कहा था—यह मैं भूल गया था।"

बात यह थी : भालारी बिबोया सालुवा मांगी को स्थानभ्रष्ट कर, खुद उसका अधिकार प्राप्त करना चाहता था ! अपने अधिकार का यह आरंभ बिबोया को न जँचा—और सालुबा मांगी को भी पसन्द न था—यह उसके चेहरे से स्पष्ट पता चलता था !

"तुम्हें मालूम तो होगा कि मैंने किसी राजकीय पद के लिए निवेदन नहीं किया था और न इसकी कल्पना ही की थी। मेरे लिए तो यह सारा मामला विस्मयजनक है !"

"अरे भावजी !" मांगी ने आधे तिरस्कार और आधे रोषपूर्ण आवाज़ से कहा—"आजकल विस्मय का पार ही कहाँ है कि तुम्हें इसमें आश्चर्य है ? आजकल तो अन्धे मनुष्य महामात्य हो जाते हैं ! साधु राज्य करते हैं; रेबारी महामंडलेश्वर बन जाते हैं और...और

"क्यों रुक गये ?" बिबोया ने पूछा। उसकी आवाज़ में स्वस्थता थी, परन्तु उसके हृदय में चिनगारियाँ सुलग रही थीं। विजयधर्म राज्य के सूत्रधारों के लिए प्रयुक्त ऐसे तिरस्कारमय शब्द उसके मन में चुभ गए थे—"रुक क्यों गए ? क्या विस्मयों की परम्परा थकित हो गई है ?"

"नहीं रे, विस्मय की परम्परा किस प्रकार बंद रह सकती है ? कौन जानता है हम किस काल में रह रहे हैं ? रोज़ एक-न-एक नये विस्मय की जानकारी मिलती है। आप व्यर्थ ही बुरा मान रहे हैं। और मुझे, इसमें एक जीतल का भी लाभ नहीं है।"

"मुझे तो बुरा नहीं लगता।"

"तो, तो मैं कह ही देता हूँ। एक बेसवागा ! जिसकी न तो तालीम न रिवाज़ और न प्रशिक्षण और सीधा वह दण्डनायक बन जाए, यह क्या कम विस्मयजनक है ?"

"भावजी !" बिबोया ने कहा—"मैंने तुमसे सच ही कहा है, मुझे इस बात का बिल्कुल पता न था कि मैं आपका राजकीय पद छीन सकता हूँ। इस बात की तो कल्पना भी नही कर सकता। कृपया, मेरी इस बात को

अवश्य स्वीकार करें। और यदि आपके मन में तनिक भी रोष हो तो मेरे लिए आपकी इस या दूसरी किसी मुद्रा का, कोई उपयोग नहीं है।"

"नहीं रे! दया की भिक्षा तो, मैं ईश्वर से भी न लूं! फिर बेसवागा से क्यों लूं? तुम ही थोड़े दिन मौज़-मज़ा कर लो! मज़ा ही तो है, क्योंकि हस्तिशाला में हाथी ही कहाँ हैं? होंगे एक-दो, और वे भी कर्णाटक राजा के समय के। जो सर्वथा अनुपयोगी हैं। तुम्हें तो प्रतिमास वेतन लेना है और मुद्रा पहन कर चक्कर लगाना है।"

"तो एक काम करो। सचमुच मेरे मन में मोह न था। आज हम दोनों साथ ही भोजन करेंगे—यहीं—मेरी इतनी-सी बात कबूल करो!"

"ज़रूर! इसमें क्या है? मुझ पर से, महाकर्णाधिप की कृपा उतरकर, तुम पर चढ़ गई है। राज्य का अमलदार, चाहे जैसा हो, उसके साथ अच्छा संबंध रखना हितकर है।"

"तुम तो राज्य के धुरंधर हो। तुम्हारे जैसे योग्य व्यक्तियों के कंधों पर ही महाकर्णाधिप ने सारा भार रखा है।" रोज़ हाथीखाना में सुबह शाम हाथी ने कितने लड्डू खाए, कितने चावल खाए और कितना घी पिया और कितना गुड़ खाया—इनका हिसाब रखने के बदले, तुम्हारी शक्ति के अनुरूप, दूसरा इससे अधिक अच्छा कार्य, सोमैया नायक ने निर्माण किया ही होगा—आजकल में इसकी सूचना मिल ही जाएगी। हस्तिसेना का दण्डनायक—कितना बड़ा नाम! परन्तु कहोगे, क्या काम है, दो या तीन ही हाथी हैं—इनमें एक तो रोगी है, एक काना और एक जर्जरित है। उसके आहार का हिसाब रखना है या दूसरा कुछ? तुम्हारे जैसे योग्य अमलदार के लिए दूसरा उपयुक्त कार्य सामने न हो तो तुम्हें पहले काम से मुक्त नहीं करेंगे।"

"ऐसा हो तो बहुत ही अच्छा। बीस वर्ष से राज्य की सेवा कर रहा हूं। आजकल पुरानी सेवाओं के पेड़ पर फल आने की कोई आशा नहीं है! तो भी...तो भी....शेष सब तो सोमैया नायक जानते हैं। सभी तंत्रधारी नए ही तो आए हैं। ये राज्य-सेवा की परम्परा कैसे समझेंगे?" सालुवा मांगी ने पलंग पर बैठते हुए कहा।

"छोड़ो न भाई, इन सब बातों को," सोमसामी ने कहा, "आनन्द की बात करो न। अपना तो एक ही नियम है—हनारी इस चोलेत्री में जो कोई आए, वह राजकीय हुकूमत, बंजारे की दुग्धा और व्यवहार की पालकी बाहर ही रखकर आए। लो, जलपान करो। ताम्बूल खाओ। अभी भोजन तैयार हो रहा है।" सोमसामी इतना कह कर खड़ा हो गया और अन्दर चला गया।

थोड़ी ही देर के बाद, वह फिर से लौट आया। उसके एक हाथ में चन्दन की छोटी सी सुन्दर पेटी थी। जिसमें चार पाँसे थे।

"आपको इसका अभ्यास है ?" सोमसामी ने सालुवा मांगी से कहा—और बिबोया जी सरकारी हाकिम बन गए हैं, इसलिए अब जल्द ही, इन्हें भी चौसर का अभ्यास हो जाएगा। जब तक रसोइया हमें पुकारता है, तब तक आओ हम दो-चार दाँव इधर-उधर फेंके।"

सालुवा हाथ में पाँसे लेकर उछालने लगा।

बिबोया ने सिर हिलाया : मैंने द्यूत कभी खेला नहीं और कभी खेलने-वाला भी नहीं।"

"यह तो मनमौज़ है; थोड़ी देर मन की शांति मिल जाती है। एक-दो घड़ी खेलने पर पचास-सौ वराह खर्च होंगे। इसमें राज्य तो पलट नहीं जाएगा ! आ जाओ सीखो—न सीखे हो तो।"

"भावजी, मैं कोई धनी नहीं, कहीं का नायक भी नहीं। इस खेल का मुझे शौक भी नहीं है—"बिबोया ने सोमसामी की ओर देखकर कहा—"तुम फिर ये कहाँ से लाए ?"

सालुवा माँगी तिरस्कार पूर्वक हँसा। अनुभवी की अदा से पांसों को ज़मीन पर डालता हुआ और उनके एक गट्ठे को देखकर, हाथ में लेते-लेते बोला—"कैसा काल है यह, सोमसामी ? कर्नाटक राज्य का दण्डनायक सौ-पचास वराह का मोल-महत्व एक वणिक के समान करना सीख गया है। बिबोवा जी ! अपना यह बेसवागा का हिसाब बैसवागा के ही साथ करो; राज्य के अमलदार के साथ नहीं। जिस आदमी में द्यूतरस नहीं, उस मनुष्य में वीरता भी नहीं। और वीरता नहीं तो उमंग भी नहीं रहती

नहीं, दो बार नहीं, पचास बार। और एक तो मैं आपको जानता हूँ। दूसरे, आज तक तुम्हारा कोई गंड कभी लौट कर नहीं आया! यह भी जानता हूँ। तीसरे, तुम धनवान थे और इन दिनों अधिक धनवान बन गए हो, यह भी जानता हूँ। सम्भवतया सारे देश में तुम्हीं सबसे ज्यादा धनवान हो!"

"ये धनवान कौन-सी बला है?" मांगी ने पूछा—"अरे पागल, मुझे भी बनाता है? मेरी मज़ाक? याद रखना मैं सालुवा हूँ! हाँ!"

"जल्दी न कीजिए! किसी की मज़ाक करने की मेरी हैसियत नहीं है। मैं तो मात्र चोलेत्री का स्वामी हूँ। अच्छे और मधुर ग्राहक की मज़ाक उड़ाकर क्या मैं देवी को प्रसन्न रख सकता हूँ? यह तो मैंने अफ़वाह का जिक्र किया था।"

"अफ़वाह! अफ़वाह! और चर्चा क्या? गए कल की ही बात है, लोग कहते थे सालुवा माँगी ने बाप-दादाओं का धन जुए में उड़ा दिया है। और वही अफवाह आज उन्हीं लोगों के मुँह से उड़ रही है कि सालुवा मांगी ने बहुत धन कमाया है और वह धनवानों में भी धनवान है। लगता है लोगों को और कोई धंधा नहीं है और तुम भी बेकार रहते हो!"

"नहीं जी! लेकिन सच कहता हूँ! लोग बात करते हैं।"

"क्या करते हैं? क्या कहते हैं लोग? वे तो कल कहते थे—मैं बरबाद हो गया हूँ, आज धनवान हूँ। तो क्या बीच की एक ही रात में मेरे यहाँ धन की वर्षा हो गई?"

"वर्षा तो नहीं...लेकिन ऐसा ही कुछ हुआ ज़रूर है!" सोमसामी ने कहा—आप भले छिपा कर रखिए। किन्तु लोगों से कभी किसी की कोई बात छिप सकी है?"

"अरे पागल! यदि मैं धनवान बन जाऊं तो गाँव-गाँव ढिंढोरा न पिटवाऊँ? चुप रह जाना, मेरी आदत नहीं।"

"तब तो सच झूठ आप जानें भावजी! शेष सारा दोरासमुद्र एक मुँह से कह रहा है कि बेलगोला के वीरवणिक् बेहारुल की पुत्री गोमती से आपने विवाह किया है, अथवा करने वाले हैं!"

सालुवा माँगी चारपाई से धीरे-धीरे खड़ा हो गया ! उसकी आँखों से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं। इससे उसका काला चेहरा और भी भयानक बन गया। पाँसे हाथ में उठाकर उसने एक साथ सोमसामी पर फेंके। इनमें से एक पाँसा बिबोया के भाल पर लगा !

और बिबोया एक दम खड़ा हो गया—"जानते हैं माँगी ! आभीर व्यवहार की मांग के लिए आप मुझे मजबूर कर रहे हैं ?"

"आप पर पाँसे फेंकने का मेरा इरादा न था। इस बात से अगर आप का समाधान नहीं होता तो अवश्य, खुशी से आभीर व्यवहार की माँग कीजिए ! आज तक सालुवा माँगी ने आभीर माँगनेवाले किसी व्यक्ति को निराश नहीं किया है !"

"लेकिन, यों अचानक, अकारण मुझ पर बरस पड़ने का क्या कारण है ?" सोमसामी बीच में बोला—"तुमने पूछा—लोग क्या बात करते हैं ? मैंने आपको बतलाया। इतनी सी बात पर आपने मुझ पर पाँसे चला दिए ?"

"तुमने मेरा अपमान किया है।"

"मैं कहता हूँ कि तुमने मेरा अपमान किया है।"

"मैं कहता हूँ कि नहीं किया !"

बिबोया ने देखा कि मूल बात तो कहीं और रह गई और ये दोनों आदमी झगड़ने लग गए हैं ! उसने कहा—

"भावजी ! भावजी ! शांत हो जाओ ! एक पराई लड़की की चर्चा पर दो भाई-भाई लड़ें, यह अच्छी बात नहीं।"

सालुवा मांगी धीमे-धीमे नीचे बैठा।

लेकिन उसकी आँखों का जहर अब भी सोमसामी पर बरस रहा था— "मेरी मज़ाक ! वह भी तू करे ! एक चोलेत्री का भटियारा मांगी सालुवा की मज़ाक उड़ाए !"

"लेकिन सामी, सच कहता हूँ : यह मज़ाक नहीं है। यदि मेरी बात पर विश्वास न हो तो मणिग्राम में जाकर खड़े हो जाइए ! यदि वहाँ कोई

सेठ आपको एक लाख वराह उधार देने को तैयार न हो जाए तो मुझे कहना !"

धीरे-धीरे सालुवा मांगी के चेहरे पर छाये क्रोध का रंग उतरा। क्षण भर के लिए उसका चेहरा भूरी राख जैसा बन गया ! उसकी आँख में गिरते हुए तारे-जैसी रोष की रेखा खिंच गई। धीमे-धीमे एक-एक शब्द स्पष्ट, उसने उच्चारण किया—

"समझा ! मेरा अपमान किसने किया, यह मैं अब समझा !" सालुवा मांगी के होठों से ऐसी आवाज़ निकली मानो आरे पर पत्थर का टुकड़ा घिसा जा रहा है। उसने कहा—'दादैया सोमैया को इस अपमान का उत्तर मुझे देना ही पड़ेगा, फिर चाहे वे आँख से अंधे हों या महाकर्णाधिप हों !"

और माँगी मानों ज़हर पी रहा है, इस प्रकार उसका चेहरा क्षणभर के लिए रोष से लाल बन गया और सदन्तर लालिमा छिन्न हो गई !

कुछ देर सोमसामी और बिबोया की ओर देखकर वह बोला—"आगामी काल जिस बात को समस्त द्वारसमुद्र जान जाएगा और जानकर खुशी मनाएगा--वेलगोला के वीर बेहारुलु की छोकरी[1] गोमती ने सालुवा मांगी से विवाह करने से साफ इन्कार कर दिया। एक मामूली बनिए की वह आवारा छोकरी....उसने सालुवा मांगी के हाथ को ठुकराया है--वह सालुवा जो कि सत्यवादी के नायकों का वारिस है। और उसकी भावी सात पीढ़ियां .. लेकिन, जाने दो यह बात, जंग में जवां मर्द, बहादुरों का बहादुर, वीरों में वीर और कर्नाटक देश में सर्वसमर्थ—ऐसे सालुवा मांगी का हस्तकमल एक खाखा की लड़की ने अस्वीकार किया ! ! ... मनाओ खुशियां ! मनाओ खुशियाँ तुम लोग ! सोमसामी आनंद मनाओ ! बिबोया तुम भी खुशी मनाओ ! ....

१—गोमती का हाल कई विदेशी प्रवासियों ने लिखा है। इसके नाम के दानपत्र और शिलालेख भी मिलते हैं। डॉ. सालातोर ने एक स्वच्छंद लड़की के रूप में इसका वर्णन किया है।

"लेकिन, यह कैसे हो सकता है?" सोमस्वामी ने पूछा—ऐसा कैसे सम्भव है ?...लोग तो कहते हैं–गोमती का पिता वृद्ध है और...और...वह धर्म के ध्यान में, अरहंत की उपासना में निमग्न रहता है। और उसका सारा कारोबार गोमती ही देखती है। लोग यह भी कहते हैं कि जब वीर वणिकों 'महाजन सभ्य' सभा में बैठते हैं तब अपने पिता के बदले यह लड़की, वहाँ सम्मिलित होती है। और पिता के नाम पर सारा व्यवहार चलाती है।...कहते हैं उसके पचास 'देवांग' हैं। दस 'मान्ते' हैं। पाँच सौ सिपाहियों की सेना है। और सारा काम गोमती देखती है, फिर भला वह आपको 'ना' कैसे कह सकती है ?"

"गोमती का अपने पिता का कामकाज देखना और सालुवा माँगी का हस्तकमल—अस्वीकार करना, इन दोनों बातों में कौन-सा सम्बन्ध है ?" —बिवोया ने पूछा।

'संबंध यह कि लड़की अपने पिता का कहना नहीं मानती, वरन् पिता उसका कहना मानता है। फिर अपना 'वर' पसंद करने में लड़की मुक्त रही न ? बाप वेचारा बीच में कैसे आ सकता है ?"

"हाँ, किन्तु इससे क्या ?"

"वीरवणिक् अपने 'अलाया' (जामाता) के विषय में जातिपाँति का उतना खयाल नहीं रखते, जितना हम लोग रखते हैं। जो कोई उनमें विलीन हो जाने को तैयार रहता है, उसी से वे विवाह-सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं।"

"लेकिन ?...."

"धैर्य रखिए, जल्दी न कीजिए।...मेरी बात समझने की कोशिश करो। यदि ऐसी ही बात है तो गोमती को सालुवा माँगी जैसा दूसरा पति कहाँ मिलेगा ? एक तो नायक, फिर सात पीढ़ी का पुराना खानदान, फिर वीर-वर, बुद्धिमान। बेहारुलु का वनजारों का व्यापार। जहाज़ों का व्यापार। राज्य से उनके अनेक व्यवहार एवं व्यापार-सम्बन्ध ! विविध छप्पन देशों से माल असबाब की बिक्री का, लेन-देन का सम्बध है। ईरान और मलाया

से भी उनके व्यापारिक सम्बंध हैं। फिर कंदर्प--कामदेव जैसा, ऐसा पति और कहाँ मिलने वाला है ?" सोमसामी ने तनिक छैलेपन से कहा—"कितनी उम्र है इस गोमती की ?"

"हमने अपनी आँखों से नहीं देखी, लेकिन लोग कहते हैं, अनुमान से पच्चीस-छब्बीस साल की होगी। सुन्दर है, गोरी है। और स्थायीरूप से पुरुप के वस्त्र पहनती है। कमर में तलवार बाँधती है। जब कभी वह देवांगों के साथ जाती है तो उसकी एक आवाज़ पर सारे क़ाफ़िले रुक जाते हैं। फ़िर, जब कभी वह अपने पिता के जहाज़ों में बैठकर, मलाया या ईरान जाती है तो उसकी एक आवाज़ पर, कहते हैं, हवा भी रुक जाती है। और...सुनते हैं, वह बहुत अच्छा गाती है। निगंठ लोग उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं और यह भी कहते हैं कि लगभग राजगुरु निंगंठनाथ नागकीर्ति महाराज उसके निमन्त्रण पर उसके भवन तक जाते हैं।

सालुवा माँगी के चेहरे पर, मानो, बारी-बारी से धूप और छाया आई और गई! उसके हाथों की मुट्ठियाँ मिंच गई थीं। और मुड़े और बढ़े हुए नखों से हथेली पर खून छलछला आया था। क्षण भर के लिए उसकी नज़रें सालुवा माँगी के चेहरे पर टिकीं और इसके बाद वह खिलखिला कर हँस पड़ा!

लेकिन यह खिलखिलाहट और यह हँसी सालुवा माँगी को तमाचे-जैसी लगी। भीगे घाव पर जैसे किसी ने हाथ रख दिया हो, वैसे उसका अंग-अंग काँप उठा!

"तुम्हें हँसी आती है, क्यों ? दुनिया में आभीर व्यवहार-जैसी कोई चीज़ भी है, यह तो तुम क्या जानो ? और तुम ठहरे बेसवागा, इसलिए उसका महत्त्व नहीं समझ सकते ! महाकर्णाधिप के पैर दबाए तो क्या जाति भी बदल गई ?"

"अरे भावजी, अरे भावजी ! आभीर व्यवहार का तो सवाल खड़ा नहीं होता ! हमारी बातचीत तो दूसरे ही विषय की है।"

"मैं सालुवा माँगी ! अपने अपमान पर मैं आभीर के सिवाय दूसरा काई व्यवहार नहीं चाहता ! इतना तुम समझ लो तो बस है !"

"यह तो मान लीजिए समझ लिया।"—बिबोया ने कहा—"लेकिन मेरी बात आप नहीं समझे ?"

"पहले तुम मेरी बात समझने की कोशिश करो।" सालुवा माँगी ने रोष से उफनती हुई आवाज़ में कहा—"तुम बेसवागा हो, इसलिए मेरी बात समझ लेना तुम्हारे लिए मुश्किल है। लेकिन, अब 'अमरदार' बनकर 'रायसी' वर्ग में सम्मिलित हुए हो। इसलिए, मेरी बात समझने की शुरुवात तुम्हें करनी चाहिए। समझे ? अगर तुम सच्चे बेसवागा होते तो उसी भाषा में तुमसे मैं बात करता, जिसे तुम समझने में समर्थ होते !"

"अच्छा जी ! और वह कौन-सी भाषा है !"

"वह भाषा—यह है"—कहकर, सालुवा ने पास में खड़े सोमसामी को एक थप्पड़ लगाया—"यही है वह भाषा, जिसमें सालुवा माँगी तमाम जासूसों, 'विनोदियों' बेसवागों, 'होलेयों' और 'पालेरों' से बात करता है ! मुझे अफ़सोस सिर्फ़ इस बात का है कि आज तुम 'सरकारी अमरदार' हो ! वरना तुमसे भी इसी भाषा में बात करता !"

अपना कपोल सहलाता सोमसामी वहीं खड़ा रहा। उसने बिबोया की ओर देखा। बिबोया दमभर में खड़ा हो गया। उसने कहा—"मुझे दुख है कि आप सरकारी अमरदार हैं। वरना तुम-से आदमी जिस भाषा को समझते हैं. उसी में तुमसे मैं बात करता !"

सुनकर, तिरस्कारपूर्वक सालुवा अपनी तलवार की मूठ पर हाथ धरे खड़ा रहा—"और वह भाषा ?"

बिबोया ने इधर-उधर देखा। पास में खड़े पेड़ पर उसकी दृष्टि गई। पेड़ वह लम्बा, लाठी-जैसा था। बद्रीफल के वृक्ष को हरेक आदमी पहचानता है। अपने बिगड़ेल नौकरों—होलेयों और पालेरों को पीटने के लिए इसी पेड़ की छडी काटकर उपयोग में लाई जाती है। यह पेड़ मज़बूत इतना कि आरे को भी सहज ही उत्तर नहीं देता है ! करवत से भी कठिनाई से कटता है।

भालारी बिबोया ने तलवार उठाई। पैंतरा बदला और उस पेड़ का

वह कमज़ोर डाली की तरह कट कर अलग जा गिरा ! बड़े शोर के साथ उसका पतन हुआ ।

और तब, भूमिका का एक अक्षर भी कहे-बग़ैर, बिबोया ने अपनी तलवार की धार पर अपनी उँगली फिराई । देखा कि तलवार की धार अखंडित है और उसकी आब अब भी वैसी ही है । इतना देखकर उसने तलवार म्यान में रख दी और खाट पर पटक दी ।

"अब हम दूसरे व्यवहार की चर्चा करें—" बिबोया ने इस तरह कहा, मानो कुछ न हुआ है—'आओ बैठें !' 'हमें आपस में लड़ना नहीं चाहिए ।' भगवान विद्याशंकर का यही आदेश है । उन्होंने धार्मिक भेद दूर करने के लिए चतुः समय का समन्वय किया है । इसी प्रकार महाकर्णाधिप सोमैया नायक का भी यही आदेश है और उन्होंने भी राजतंत्र की अनेक परम्पराओं का समन्वय किया है और महामंडलेश्वर का भी यही आदेश है और इसी उद्देश्य से उन्होंने जाति-पांति के अनेक मतभेदों और अधिकारों का समन्वय करने के लिए, 'राय-रेखा' की रचना की है । और इसी हेतु वे गाँव-गाँव में घूम रहे हैं । अतः मेरे हाथ बँधे हैं सालुवाजी, अन्यथा..."

"अन्यथा...मेरे साथ आभीर व्यवहार का आचरण करते, यही न ? लेकिन मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि राय-रेखा के अन्तर्गत आभीर व्यवहार मान्य है ।"

"आभीर तो समान व्यक्तियों के बीच होता है । भला मैं तुम्हारे साथ आभीर खेलूं ? मैं—एक सज्जन व्यक्ति की तरह तुमसे व्यवहार कर रहा हूँ और तुम अपनी ही अकड़ की आग में भस्म हुए जा रहे हो ? विजयधर्म ने जाति-पांति को स्वीकृति दी है, लेकिन, एक दूसरे की तुलना नहीं की है ।...

"राय-रेखा का सम्मान—समस्त बहुजन समाज का प्रत्येक वर्ण और वर्ग, प्रत्येक मत और पंथ—पूर्वदा परम्परा के समान करता है ! लेकिन तुम मनुष्य नहीं हो ! तुम तो असूया से पीड़ित हो ! आज तो तुम्हें वह सब कुछ जैसे पसन्द नहीं आ रहा है । जैसे दक्षिणापथ तुर्कों के विरुद्ध सज्जित कर रहा है । मैं भगवान विद्याशंकर का शिष्य—महाकर्णाधिप

सोमैया नायक और महामण्डलेश्वर राय हरिहर का अनुयायी...तुमसे आभीर खेलूँ ? तुम्हें अपने समान समझूँ ? तुम अपनी जाति को आखिर क्या समझते हो ? और मुझे क्या समझते हो ?"

सालुवा के चेहरे का रंग उड़ गया। चेहरा फक पड़ गया ! जले हुए कोयले की तरह उसका चेहरा भद्दा हो गया ? तिरस्कारपूर्वक वह बोला—

"आभीर को अस्वीकार करनेवाले मुँह से बहुत वाचाल होते हैं ! यह मेरा बीस वर्ष का अनुभव है। शेष, 'विप्र और विनोदी'—इस सोमसामी का संगदोष तो तुम्हें भी लगा ही है।"

"देखो भावजी !" सोमसामी ने कहा। उसकी आवाज़ कांप रही थी, किंतु यह कम्पन भयजनित नहीं था। वह कहने लगा—"मैं चोलेत्री का स्वामी। इसलिए मुझे अपनी बात से अलग रखो। शेष तो मैं 'सभीक' हूँ। और सभीक कौन बन सकता है, इसका सालुवा को कुछ भी ज्ञान नहीं है।"

"तुम उतावले न बनो।" बिबोया ने कहा—"सोमसामी, तुम उतावले न बनो। हम तो भावजा ऐसा भाषा में जवाब देंगे कि जो आभीर व्यवहार से भी अधिक सचोट होगी। तुम उतावले न बनो।"

फिर बिबोया ने सालुवा माँगी के क्रुद्ध चेहरे की ओर देखते हुए कहा—"भावजी, तुमने बीस वर्ष तक आभीर व्यवहार का आचरण किया है। इससे अधिक तो तुम द्यूत व्यवहार का पालन करते हो। तुम जुआरी हो। और मैं भी तुमसे इसी व्यवहार की माँग करता हूँ। मैं तुमसे एक शर्त—यानी एक बाजी खेलना चाहता हूँ।

सालुवा माँगी ने रोष-भरे लोचनों से बिबोया को देखा। और टीका करते हुए कहा—"जुआ भी उतना सरल नहीं है, जितना तुम उसे मानते हो। यह भी एक प्रकार का आभीर व्यवहार है।"

द्यूत में भी एक प्रकार का अनुशासन रहता है। और प्रत्येक जुआरी उसका पालन करता है, इस मर्म को मैं जानता हूँ।"

"नहीं। मुझे तो इतना ही कहना है कि तुम यों तो बेसवागा हो न! और इसलिए बेचारे एक बेसवागा को भद्रसमाज के आचार-व्यवहार कहाँ से ज्ञात हो सकते हैं?"

"नायक और ज़मींदार जहाँ जुआ का शौक रखते हैं और उसमें उन्हें आनन्द मिलता है। और बेसवागा तो अपनी मेहनत में ही रुचि रखते हैं—इस बात को भला मैं न जानूंगा तो कौन जानेगा?"

सोमसामी बीच में ही बोला—"भावजी, तुम दोनों मेरे स्नेही-जन हो। तुम दोनों के कारण मेरी चोलेत्री पवित्र होती है। सो, क्या तुम दोनों ने अपने निजी वैमनस्य का निर्णय करने के लिए भा दूसरा स्थान न देखकर, क्या मेरी ही चालेत्री चुनी है!"

"अब बात छोटी ही रह गई। सालुवा माँगी को अपने नायक पद का निरा घमंड है। और मेरी मान्यता है कि आज इसकी बहुत कुछ भूमि इसके हाथ में नहीं रही है और न रहा है होलेय या पालेर का विशेष नायकपन। जिस तरह साँप निकल जाता है और धूल पर हल्की-सी एक लकीर रह

जाती है उसी प्रकार इसका नायकपन रह गया है।"

"हम इन उपकथाओं को छोड़कर यदि मूल मतलब की बात पर आ जाएँ तब ?" सालुवा मांगी का चेहरा सफेद पड़ गया—

"तुमने यदि आभीर व्यवहार स्वीकार किया होता तो बात ही अलग थी। परन्तु तुम्हारा बेसवागा रक्त भला शूर-वीरों के उस मार्ग को क्योंकर चुनता ! इसलिए अब मेरे पास एक ही मार्ग रह गया है।"

"और वह ?"—बिबोया ने पूछा।

"वह यह"—सालुवा मांगी ने एक क़दम आगे बढ़ाकर हाथ उठाया—"होलेय, पालेर और बेसवायी जिस भाषा को समझते हैं उसी का मार्ग।"

बिबोया उसके समक्ष खिलखिलाकर हँसा—"तुमने हाथ उठाया और उससे आगे नहीं बढ़े, यह बहुत अच्छा किया। मिजाज मेरा बहुत तेज है। तुम राज्य की अमलदारी का श्रीमुख लाए इसलिए महाकर्णाधिप के सर्व-मान्य आदेश को सिर पर चढ़ाकर अपने मिजाज को काबू में रख रहा हूँ। परन्तु यदि तुमने हाथ उठाया होता तो दो अमलदारों का नुकसान होता—तुम्हारी एक हड्डी भी नहीं बचती और मुझे महाकर्णाधिप के धर्मशासन को भंग करना पड़ता। खैर, जाने दीजिए।"

"भावजी !" सोमसामी ने बिबोया से कहा—"तुम्हारी बात बहुत बड़ी है। और बहुत बड़ी है या बहुत छोटी यह तो राम जाने। लेकिन बात का बतंगड़ तो बहुत बड़ा है। इसलिए एक-दूसरे को अपशब्द कहने के बजाए, मतभेद और रागद्वेष बढ़ाने के बदले शर्त की सीधी बात कीजिए। शर्त भी एक प्रकार का जुआ है। और जब जुआरी दाँव खेलते हैं, एक हारता है दूसरा जीतता है—तब कोई मन में मैल नहीं रखता है और न राग-द्वेष ही बढ़ता है।"

"तुम्हारी बात सच है।"—बिबोया ने कहा—"सोमसामी तुम्हारी बात सच्ची है। कुछ देर के लिए मैं इसके महत्त्व को भूल गया था इसलिए तुमसे क्षमा चाहता हूँ। अब मैं अपनी शर्त्त संक्षेप में कहता हूँ। मैंने अपने मन में सालुवा मांगी के विरुद्ध राग, द्वेष, वैर या मनोदुख नहीं रखा है। विजय धर्म राज्य अथवा कर्णाटक राज्य की हस्तिसेना के दण्डनायक के रूप

में नियुक्ति की। मैंने कभी आशा न रखी थी। इसलिए मेरा चुनाव होना और मुझे यह पद और इसकी मुद्रा मिलना आश्चर्य की बात है। मेरी कल्पना से बाहर की चीज है और ऐसी चीजें मुझे बिल्कुल पसंद नहीं, सो बात भी नहीं। और मैं यह भी नहीं कहता कि अमलदारी की यह मुद्रा मुझे नापसंद है, यह मुझे अवश्य पसंद आई है। किन्तु मैंने स्वप्न में भी इसकी इच्छा न की थी, प्रार्थना न की थी। और न किसी के सामने इस आशय की कामना ही प्रकट की थी। मुझे यह अनायास ही प्राप्त हुई। तुम मेरा यह स्पष्टीकरण मानना चाहते हो तो मानो और न मानना चाहते हो तो न मानो। लेकिन बात यह सच है। मुझे स्वप्न में भी यह ध्यान न आया कि सालुवा मांगी की अमरदारी उससे छीन ली जाय। यह बात भी एकदम सच है। इसे भी आप चाहे मानें, चाहे न माने।"

"इसमें न मानने जैसा क्या है"—सोमसामी ने कहा—"यह बात सर्वविदित है कि महाकर्णाधिप सोमैया सहज ही किसी की वांच्छना, इच्छा या कामना की पूर्ति नहीं कर देते—अपने इष्ट-मित्रों के लिए भी नहीं। फिर प्रत्यक्ष तुम्हारी उनकी तो कोई पहचान भी नहीं है, इसलिए तुम्हारी बात स्वीकार करने का कोई कारण नहीं है।"

"पर आपकी बात मानने का भी क्या कारण है?" सालुवा ने कहा—"तुम यहाँ आकर सालुवा मांगी के अतिथि बने या नहीं यह मैं नहीं जानता किंतु तुम्हारी उनकी पहचान तो हुई। आजकल समाज में मायरा पण्डित का बहुत सम्मान है। मैंने सुना है कि राज-व्यवहार, समाज-व्यवहार, कुल-व्यवहार और धर्म-व्यवहार सबकी एक व्यवस्था आवश्यक है। कुल परंपरा के अनुकूल और राजगुरु क्रियाशक्ति महाराज की आज्ञा से सोमैया नायक ने 'धर्म सिंधु' नामक पूर्वदा की परंपरा विषयक ग्रंथ के सम्पादन का भार भी इन्हीं पंडित को सौंपा है। इसलिए लोग कहते हैं कि आजकल अंध कर्णाधिप तक इन पंडित का बोलबाला है। फिर भला मैं ये कैसे मान लूँ कि अमलदारी प्राप्त करने के लिए आपने किसी पहुँच या सिफारिश का उपयोग नहीं किया है?...मैं कैसे मान लूँ।"

"तुम मानो या न मानो, मेरे लिए यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है।"

बिबोया ने निश्चित स्वर में कहा—"किंतु सोमैया ने मुद्रा ग़लत और कुपात्र स्थान को दी है, एक या अनेक प्रकार से तुमने मेरी अपनी बराबरी बतलाने की कोशिश की है। तुम्हें मुझ पर चिढ़, रोष और क्रोध हो सकता है, लेकिन, यह अच्छी तरह समझ लें कि किसी विषय में हम तुम समान हैं—इस बात को मैं कदापि स्वीकार नहीं कर सकता।"

"इस मतभेद का निर्णय आभीर व्यवहार द्वारा पल भर में हो सकता था। तुम अपनी तलवार के एक ही वार से बदरिक वृक्ष काट सकते हो, उतनी ही आसानी से सालुवा माँगी को भी काट सकते हो, इस बात में कोई दम नहीं है। और इस बात को शायद आप भी समझते हैं, इसीलिए आपने पेड़ पर तलवार चलाई और मुझसे मुठभेड़ से इन्कार किया।"

"मैंने तुम्हारे साथ तलवार के दाँव दिखाने से इसलिए इंकार किया कि महाकर्णाधिप सोमैया ने स्पष्टतया आदेश दिया है कि आभीर न खेले जाएँ।"

"आभीर का खतरा समझ लेने के बाद, इस प्रकार के बहाने पेश करने का तरीका तो बहुत अच्छा है।"

"यह बहाना नहीं है भावजी, बहाना नहीं है। भले, मैं तुम्हारे साथ आभीर नहीं खेल सकता परन्तु मैंने अन्य बराबरी के लिए तो इंकार नहीं किया है न? यह तो तुम भी जानते हो! और ऐसी प्रतियोगिता के लिए सोमैयाजी भी 'ना' नहीं कहते। तुमने कई आभीरों में भाग लिया है और अभी कोई सेर का सवा सेर नही मिला है, इसलिए "दक्षिण की तेज़ तलवार" के रूप में तुम्हारी असिधारा की बहुत प्रसिद्धि है।....दुर्भाग्यवश इस तेज़ तलवार की परीक्षा लेने का रास्ता मेरे लिए बन्द है। इसलिए मैंने कहा कि आओ हम दूसरे मोर्चे पर प्रतियोगिता करें। जुआ का तुम्हारा शौक भी इतना ही प्रसिद्ध है। और इस मैदान में मैं आपका मुकाबिला करना चाहता हूँ। और इसी वजह से आपको एक शर्त्त सुनाना चाहता हूँ, स्वीकार हो तो सूचना दीजिए!"

"अच्छा, पहले शर्त तो बताइए!"

"शर्त यों है: लोगों का कहना है कि बेलगोला की वीरवणिक बाल गोमती का पाणिग्रहण करने का तुम्हारा विचार था और तुम्हारी

थी। वणिकों और विशेषतया वीरवणिकों में कन्या के विवाह के विषय में 'अनुलोम-सम्बन्ध' की बाधा नहीं है। इसलिए, विवाह का तुम्हारा विचार था, सच है न यह बात !"

शिकार के लिए निकला महासर्प फन मारने से पहले, जिस प्रकार अपने शिकार को देखता है, उस प्रकार सालुवा सहज बारीक नज़रों से बिबोया को देखने लगा !

बिबोया ने कहा—"लोगों का कहना है कि वीर वणिक सोमैया नायक के महाकर्णाधिपत्व को अस्वीकार करते हैं। वे राय हरिहर की राय-रेखा का समादर नहीं करते। ये लोग अपने शस्त्र और अपने सैनिक रखते हैं। यदि उन पर रायरेखा लागू हो तो वे राय हरिहर और सोमैया नायक का सशस्त्र प्रतिरोध—मुकाबला करने को तैयार हैं ! इस कारण, विवाह के तुम्हारे निवेदन पर सोमैया नायक की मधुर दृष्टि थी ! वे इस प्रकार पूर्व-ग्रह का हठदुर्ग भेदना चाहते थे। और इसलिए गोमती से विवाह करने की तुम्हें अनुमति उन्होंने दी है—इस प्रकार की अफ़वाहें प्रचलित हैं। सच है न ?"

"इस समय इस बात का क्या महत्त्व है ?"

"सम्बन्ध यों कि गोमती निगंठानुयायी पिता की पुत्री है। अब तो उसका पिता सिर्फ़ अरहंत की उपासना करता है। और सारा कारबार गोमती देखती है। इसी गोमती ने तुम्हें स्वीकार नहीं किया और तुम्हें लौटा दिया—क्या ये बातें सच हैं ?"

सालुवा के भस्म चेहरे पर सिर्फ़ दो आँखें सुलगती रहीं।

"गोमती से विवाह कर लेने पर तुम्हारी वैभव-दशा सुधर जाती, तुम्हारी जागीर के दस्तावेज़, जो दूसरी जगहों पर रहन पड़े हैं, तुम पुनः उन्हें पा सकते थे—सच है ?"

सालुवा ने जवाब न दिया।

सोमसामी ने बिबोया के कथन पर 'हुँकारा' दिया।

"और जिस काम को तुम पूरा न कर सके—अपने कुल, अपनी योग्यता और अपनी वीरता के अनेक मान-गुमान तुम अपने साथ लेकर वहाँ गए

थे, लेकिन फिर भी जिस काम को पूरा न कर सके, उस काम को पूरा कर तुमसे समानता स्थापित करने के लिए मैं तुमसे शर्त बदता हूँ। यदि मैं उस शर्त को पूरी कर सकूँ तो तुम्हें मेरी समस्त जाति, मित्रमंडली और सोमैया नायक, पंडित मायरण आदि की उपस्थिति में—मुझसे क्षमा याचना करनी पड़ेगी। मेरी बराबरी स्वीकार करनी पड़ेगी और तुमने मेरा जो अपमान किया है—उसके लिए खेद प्रकट करना पड़ेगा। और यदि इस कार्य में तुम्हारी तरह मैं भी निष्फल, असफल रहूँ तो, लंका की अपनी सारी जायदाद, वृत्ति और पूँजी तुम्हें दे दूँगा। इसके अलावा, तुम्हारे होलेय के रूप में मैं तुम्हारे यहाँ बिक जाऊँगा! बोलिए, स्वीकार है यह शर्त!"

बिजली पड़ने पर, आदमी का काला पुतला जिस प्रकार खड़ा रह जाता है, उस प्रकार सालुवा मांगी क्षणभर खड़ा रह गया। अग्नि से भस्मीभूत उसके अंग-प्रत्यंग से मानो धीमे-धीमे रक्त का संचरण होने लगा! उसके चेहरे पर अचरज, रोष, अपमान आदि मनोभावों के मेघ—एक-एक कर आने-जाने लगे! और शनैः शनैः उसके प्रयास पर, स्वस्थ होनेवाले, उसके चेहरे पर हास्य—मर्मभरा हास्य छा गया!

"स्वीकार है, नमस्कारम्" इतना कहकर सालुवा मांगी पीठ फेर कर, एक क्षण भी रुके-बिना वहाँ से चला गया!

उसके जाने पर, कुछ देर तक सोमसामी और बिबोया दोनों चुप रहे। दोनों में से एक ने भी एक शब्द तक न कहा। अंत में मानो संशयशीलता की गहन तंद्रा से जागृत सोमसामी ने दबे हुए स्वर में कहा— "भावजी! तुमने यह उचित नहीं किया!"

किसी घने, बीहड़ वन में भूला-भटका आदमी मानो लौटकर स-जन पथ पर आ रहा हो, उस प्रकार की विश्वस्त वाणी में बिबोया ने कहा—

"मुझे भी प्रतीत होता है, यह अच्छा नहीं हुआ। परन्तु कौन-जाने किस तरह मेरा मन आकुल हो गया और देखते-देखते बात बढ़ गई!"

"तुमने एक सोए हुए साँप को छेड़ा है, हाँ...!"

"अजी, जाने भी दो....मुझे अवश्य पछतावा है। परंतु स्वयं अपने लिए कि राज्य के अमरदार को यों उतावला न होना चाहिए। मगर मुझे उसका

भय थोड़े ही लगता है ! सोमसामी, तू मुझे क्या समझता है ? "अतिपरि-चयादवज्ञा" जैसा भाव तो तेरे मन में नहीं है न ? शेष तो, यदि वह सोया नाग है तो मैं मदमस्त मातंग हूँ ।"

"भावजी, हाथी तो दूर से ही दृष्टिगोचर हो जाता है !...और अगर वह मस्त होता है तो दस योजन से भी नज़र आ जाता है । लेकिन नाग जब जहरीला बन जाता है, तब, वह चुपचाप डंक मारता है ।"

"मगर मुझे एक बात समझ में नहीं आती ! उसके इतना व्यग्र होने का कारण क्या है ? यदि मुझे उसकी अमलदारी मिली तो उसे कोई दूसरा ओहदा मिल जाएगा । कर्नाटक राज्य के, कम्पिल राज्य के अथवा दूसरे किसी नायक के पुराने अमलदार को सोमैया नायक ने कहीं बरखास्त नहीं किया है ! मात्र समय, संयोग और दूसरे कारणों से परिवर्तन करते रहते हैं, इतनी-सी ही बात है । और उनकी अमलदारी मैं कहाँ माँगने गया था या ढूँढ़ने गया था ? क्या उन्हें मेरी बात का इतना-सा भरोसा भी नहीं ? क्या मैं झूठ बोल रहा था ? सोमसामी तुम सच-सच बतलाना— क्या स्वप्न में भी मुझे अमलदारी मिलने की आशा थी !"

"परन्तु भावजी, यह आदमी विश्वसनीय नहीं है ? साधन-हीन है; आभीरों में प्रख्यात है, जुआरी अव्वल दर्जे का है, उसमें पायमाल हो चुका है । और लोग कहते हैं मदिराभक्त भी है । और कहते हैं एक ज्योतिषी ने इसे अधिकाधिक नष्ट कर दिया है ।"

"ज्योतिषी ने ?"

"हाँ, लोग कहते हैं : काशीजी से एक ज्योतिषी आया था । नाम था शायद जनार्दन शर्मा, उसने सालुवा माँगी का हाथ देखकर, उसकी कुंडली देखकर कहा था कि 'तुम्हारे कुटुम्ब में राजयोग* है ।' तब से सालुवा माँगी

---

* ऐतिहासिक उल्लेख प्राप्त है कि सालुवा माँगी की सातवीं पीढ़ी में सालुवा नरसा नामक नायक पैदा हुआ । उसने विजयनगर के द्वितीय राजवंश 'आराविदु राजवंश' की स्थापना की । नरसा नायक की तीसरी पीढ़ी में, विजयनगर-इतिहास के सर्वप्रसिद्ध राजा कृष्णदेवराय हुए । ये राय हरिहर और राय बुक्काराय के बाद में हुए !

को दो रोग लग गए हैं। एक तो यह कि वह—सिर्फ़ वह राजा बनने के योग्य है, शेष सभी अपात्र है और उसे राजा का पद मिलना ही चाहिए। दूसरा रोग—यह कि बिना विपुल भण्डार के राजयोग की सिद्धि नहीं हो सकती ! अतः जैसे बने वैसे धन की प्राप्ति करना ! इस लगन में ये महाशय जुआ के फेर में पड़ गए और सर्वस्व खो बैठे ! और गोमती का पाणिग्रहण करने का इनका प्रयास अपार धन की शोध के निमित्त ही था ! क्योंकि आज समस्त कर्नाटक राज्य में तो क्या, समस्त दक्षिणापथ में गोमती सर्वाधिक धनवन्ती है !.......

"गोमती का पिता वीर बेहारुलु है। वणिकों में बीर और बेहारुलु दो उपजातियाँ हैं। बीर यानी नाना छप्पन देशों में 'बनजारों' और 'देवांगों' को भेजने वाले। और बेहारुलु यानी नाना छप्पन देशों के बीच वाहन व्यवहार चलाने वाले ! पूर्व समुद्र के चौबीस और पश्चिम समुद्र के अड़तालीस बंदरों में, और दक्षिण समुद्र में लंका संयुक्त रत्नाकर के चौरासी बंदरों में जिसके जलयानों पर अपनी पताका फहराती है, वह बेहारुलु कहा जाता है। ऐसे बीर और बेहारुलु वणिक की गोमती एकमात्र कुमारी है ! तुम्हें मालूम है भावजी, एक सौ होलेय तो गोमती के बगीचे की पहरेदारी करते हैं। एक सौ पालेर उसके वस्त्रों की देखभाल करते हैं। एक सौ आठ पालेर एक सौ आठ जल-पात्र लेकर खड़े रहते हैं। सो, किसी पात्र में रूमी मस्तकी, किसी में चंदन, किसी में केसर, किसी में अगरु, किसी में फूल तो किसी में तेल—यों सुगंधी द्रव्यों समेत एक सौ आठ जलपात्रों के जल से वह स्नान करती है ! भावजी !"

बिबोया ने पूछा—"भावजी ! द्वारसमुद्र की इस एक चोलेत्री की देखभाल करते-करते तुम्हें ठेठ बेलगोला के निगठनाथ की भव्य सुन्दरी का इतना परिचय कहाँ से मिल गया ? अथवा, क्या इसके बारे में भी आपने कोई किंवदंती लोककण्ठ से सुनी है ?"

"भावजी ! दक्षिणापथ में, मज़ाक करने के लिए बहुत-सारा मसाला है। लेकिन, बेलगोला के वीर वणिक तो ऐसे नही कि उनकी हँसी की जाए या मज़ाक उड़ाई जाए ! देवों के स्वर्ग में तो मात्र एक ही कुबेर भंडारी

है। लेकिन. बेलगोला का तो एक-एक वीर और एक-एक बेहारुलु कुबेरवत् है! फिर ये श्रीमत तो जिस प्रकार धन कमाना जानते हैं, उस प्रकार धन को रक्षित रखना भी जानते हैं! इनके इन वीर और बेहारुलुओं में इदांगी और वालांगी—दोनों में वायी जन वणिक्—एक बहुत बड़ा नाम है। ये लोग स्वर्णपात्रों में ही भोजन ग्रहण करते हैं और इनका जलपान भी मूल्यवान् पात्रों में होता है। और एक बार उपयोग में लिया गया पात्र दूसरी बार काम में नहीं लेते और उसे बाहर फेंक देते हैं! भावजी, उनकी जूठन एकत्र करने के लिए जो लम्बी पंक्ति लगती है, उसमें न सिर्फ़ बड़े-बड़े नायक और सेठिया ही होते हैं, विप्र भी होते हैं!"

"तुम्हारा इन वायीजनों से बड़ा परिचय है अथवा किंवदंतियाँ ही सुनी है?"

"किंवदंतियाँ नहीं भावजी, मैंने अपनी आँखों से देखा है!"

"तुमने? तुम भले 'विनोदी' हो, फिर भी विप्र! और तंग गली में पागल हाथी से सामना हो जाए फिर भी किसी जैन के घर में शरण न लेना—यह मानने वाले और लिखनेवाले विप्रों में से एक—ऐसे तुम बेलगोला के भाव्यों के नास्तिक गाँव में कहाँ से जा-चढ़े?"

"सच बतलाऊँ तो, मज़ाक तो नहीं करोगे भावजी?"

"नहीं! मनुष्यमात्र अपनी मति के प्रमाणानुसार गति करता है। उसमें मैं भला मज़ाक क्यों करने लगा? सोमसामी मैं भी बेसवागा हूँ! हाँ! मेरा बचपन, मेरी जवानी, मैं भूला नहीं। आदमी के सिर पर कैसे-कैसे विचित्र संयोग मँड़राते हैं, कैसी-कैसी विपदाएँ आती हैं और जाले में फँसी मक्खी की तरह आदमी उनसे छुटकारा पाने का कैसा-कैसा प्रयत्न करता है—यह सब मैंने देखा है। तुममें काम करने की लालसा हो, हाथ में हुनर हो—लेकिन सिर्फ़ जातिभेद के कारण—तुम्हें काम नहीं मिलेगा! और काम यदि मिल भी गया तो दाम नहीं मिलेगा! सब लोग तुम्हें ठगने की कोशिश करेंगे—एक ओर राज्य की सेना और लश्कर चलती है, दूसरी ओर ब्राह्मणों के भोजन चलते हों, तीसरी ओर वीर वणिकों और सेठियों और नायकों की महफ़िलें गूँजती हों। चौथी ओर याचकों के लिए सदाव्रत खुले

हों—उन सबके बीच चार-पाँच बच्चों वाले दीनहीन, चार-चार दिन के भूखे बेसवागों को तुमने भले न देखा हो, लेकिन मैं तो उनमें ही पलकर बड़ा हुआ हूँ ! याचना वे करते हैं—इस तरह कि कोई याचक भी चकित रह जाये ! अपार परिश्रम उनका भाग्य है और उस परिश्रम पर, ब्राह्मण पलते हैं 'अग्रहार' के नाम पर, कुसम्बा खेती के नाम पर लूट मचाते हैं और राज्य 'अमजी' के नाम से अपना हिस्सा पाता है—बेसवागों का बचा भाग नायक लोग ले जाते हैं—एकदम मुफ़्त में ! जाने दो सोमसामी, जाने दो ! लेकिन विप्र होते हुए भी तुम बेलगोला के भाव्य ग्राम में क्यों गए ? विश्वास रखना, मैं तुम्हारी मज़ाक नहीं करता।"

"बात यों है कि एक बार यहाँ वायीजन की चर्चा चली। उनके धन-भंडार की बात चली। और सुना कि उनकी जूठन एकत्र करने के लिए ठेठ लंका से आदमी आते हैं। और सुना कि सोने के पात्रों के बिना ये बेहारुलु लोग न खाते हैं, न पीते हैं ! और एक बार उपयोग में लाया गया पात्र दूसरी बार उपयोग में नहीं लाते !......तो मुझे लगा कि नास्तिकों का मन भले, पाखंडी हो, उनका धन तो पाखंडी नहीं ? और कौन जानता है कि मैं कर्नाटक का अग्रहारी विप्र हूँ ? यही सोचकर मैं वहाँ गया था, वहीं बस गया था !"

"बातें तो वणिकों के विषय में मैंने भी कई सुनी हैं ! लेकिन सोचा कि ये मात्र गप्पें हैं। भला, इतने श्रीमंत हैं ये तो, कलियुग के कालयवन और तुरुष्कों के आक्रमण में उनके धनभंडार लूट से कैसे बच गए ?"

"बेलगोला जाने और वहाँ से निकलने के सभी पथ पर्वतमालाओं के बीच से जाते हैं, उन राहों पर शिक्षित सैनिक तुर्कों को रोक कर रख सकते हैं और तब तक गाँव और नगर के नगर बड़े-बड़े जहाज़ों में बैठकर सागर में चले जाते हैं। आज भी उनका अधिकांश जीवन जलयानों पर ही व्यतीत होता है। तुर्कों ने बेलगोला पर तीन बार आक्रमण किया परन्तु प्रत्येक बार उन्हें खाली हाथ लौटना पड़ा। अंततया तुर्क थक गए ! देखते-देखते यदि सूअर की चर्बी मिल जाए तो शेर की चर्बी लेने कौन जाएगा ? और बेलगोला के वैभव की बात तो सत्य है, मैंने स्वयं अपनी आँखों देखा है।

मैं भी वहाँ रहा था। सच बात तो यह कि मैं वहीं विनोदी बना और इस चोलेत्री के लिए आवश्यक धन भी वायीजन की जूठन में से प्राप्त कर, यहाँ लाया !"

"मैं तुम्हारा कथन समझा नहीं !"

"मेरी पत्नी बोमाया गोमती की पालेर थी। वहीं मेरा उसका प्रेम उत्पन्न हुआ।"

"और वहीं से तुम उसे अपने अग्रहार में लाए, क्यों ?"

"हाँ, लाया ! तारीफ़ की बात है यह ! यों तो वायीजन बेलारुलु अपनी किसी चीज़ को बेचते नहीं, यदि बेचते हैं तो—इज्जत जाती है और यह डर मन में समाया रहता है। और वहाँ पालेर बढ़ते ही जाते हैं, एक भी कम नहीं होता ! किन्तु बाद में वायीजन तो धर्मानुरागी बने। आठों पहर अरहंत की उपासना में रहने लगे और गोमती सारा कारबार देखने लगी।

"तब, गोमती ने बोमाया को तुम्हारे हाथ बेच दिया, तुम यही कहना चाहते हो क्या ?"

"नहीं, उसे मुक्त कर दिया। बोमाया ने उससे निवेदन किया, यदि आप मुझे मुक्त कर दें तो मैं एक सुपात्र विप्र के साथ गृहसंसार बसाऊँगी। तब गोमती ने उसे कुछ रूपया-पैसा खर्च के लिए दिया और मुक्त भी कर दिया।"

"यों ? तो अपने पिता का तमाम काम-काज सँभालनेवाली छोकरी—रूखी और बेढंगी बातों के बीच में—प्रेम की बातें समझती है अवश्य !"

"यों मैं किसी की बात में फँस जाऊँ —ऐसा आदमी नहीं हूँ ! भावजी ! इसीलिए मैंने तुम से कहा कि तुमने यह जो शर्त रखी, सो ठीक नहीं है ! वह पुरुष के ही कपड़ों में रहती है, खुद बैल हाँकती है, खुद बनजारों को भेजती है, खुद जहाज़ों की पतवारों की देख-रेख रखती है और तूफ़ानों में भी बड़े-बड़े जलयान खे ले जाती है ! नाना छप्पन देश के व्यापारियों के साथ व्यापार करती है। और अवसर आने पर वीर वणिकों की सेना में, मोर्चे पर सबसे आगे रहती है। भावजी, बात मेरी मानिए, यह जंतु छेड़ने-जैसा नही !"

"लेकिन, बोमाया तो उनके विषय में जानती ही होगी !"

बोमाया की आयु पूरे सौ वर्ष की !

उसकी याद करते ही, वह वहाँ आ गई ! ज़रा नाटे क़द और दूहरे शरीर की—जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो खेत में, बरसती बरसात और साँय-साँय बहते पवन के बीच हल खींचने वाले बैलों जैसे सौंदर्य की याद दिलाने वाले सौंदर्य की स्वामिनी...

"अरे, तुम भी क्या कोई आदमी हो ? तुम्हें कोई मिल गया तो जैसे बातें करने ही बैठ गए ! चलो जल्दी करो। मैंने आज चोलेत्री और वाड़ी दोनों की सफाई का काम शुरू किया है।"

बोमाया ने इधर-उधर देखा और फिर पूछा—

"सालुवा कहाँ है ?"

"सोमसामी ने हाथ के इशारे से जवाब दिया—"गए !"

बोमाया ने इशारे से पूछा—"गए ? कहाँ ?"

सोमेश्वर ने उत्तर दिया—"वे बड़ी दूर गए हैं और जहाँ गए हैं वहाँ से शीघ्र ही लौटकर आनेवाले नहीं हैं !"

बोमाया लम्बा एक निःश्वास छोड़कर ज़मीन पर बैठ गई—"बला टली !"

"बिबोया ने पूछा—"बहन, मैं तुमसे कुछ पूछना चाहूँ तो ?"

"पूछिए, अवश्य पूछिए, आप जो पूछना चाहेंगे, उसका मैं पूरा उत्तर दूँगी।"

"तुम गोमती के साथ रही हो ?"

"साथ में ? मैं ? नहीं ! कहाँ तो वह कुवेरभंडारी की इकलौती कन्या ! और कहाँ मैं पालेर ? और यह बात सच है कि मैं उसकी पालेर थी। लेकिन तुम्हें यह सब इस समय कहाँ से याद आया ?"

"यह, याद आया सो आया ! किन्तु वह बाई तुम्हें कैसी लगती थीं ?"

"बाई ! कैसी लगती थीं, यों....?" बोमाया ने तनिक विस्मयमय वाणी में कहा—"बाई-जैसी-बाई ! दूसरी कैसी !"

"यह तो मैं भी समझता हूँ ! लेकिन, उदाहरण के लिए तुममें और उसमें कितना अन्तर है ?"

"मुझमें और उसमें ? तुम क्या पागल हो गए हो ? वह एक बेहारुलु की पुत्री ! एक विशाल व्यापार को जानने बूझने और चलानेवाली ! कुबेर के भण्डार जिसके पैरों में लौट रहे हैं ! उसका एक कदम उठता है और एक लाख रूपए के आभूषणों की झंकार सुनाई देती है ! वह अपने वस्त्र को छूती है और रेशम की झलमलाहट बिजली-की लकीर की तरह झलक उठती है ! उसका एक श्वास उठता है और चारों दिशाएँ सुगंध में महक उठती हैं !....कहाँ वह और कहाँ मैं पालेर ?"

"तुम मेरी बात नहीं समझी बहन !"

"किस प्रकार समझूं ? कहाँ तो हज़ार पुरुषों के बीच अपना रास्ता निकाल लेनेवाली बेहारुलु की वह बेटी और कहाँ मैं एक पालेर !"

"यह तो ठीक है ! कि भगवान ने उसे ऐसे स्थान और घर में जन्म दिया है ! यदि तुम्हें उस घर में जन्म मिला होता तो तुम भी वैसी ही होतीं ! और अगर वह तुम्हारे स्थान पर होती तो वह भी ठोकरें खाती होती ! लेकिन मैं पूछना यह चाहता हूँ कि मान लीजिए उसकी सारी सजावट-बनावट में से यदि उसका पैसा, उसका धन, उसका वैभव, उसके नौकर-चाकर—सभी कम कर दें तो फिर वह बाई किस प्रकार की है ?"

"यह बात मैं नहीं समझ सकती ! जो कुछ उसके बाप-दादा का है, वह भला, कम कैसे हो सकता है ? व्यक्ति के आसपास वातावरण ही उसे छोटा-बड़ा और श्रीमंत या ग़रीब बनाता है ! इसके अतिरिक्त तो, जो दो पैरों से चलते हैं, वे सभी आदमी एक समान !

सोमसामी ने कहा—"भावजी, ये इस तरह नहीं समझेंगी ? पुरुषों में मुझसे आगे और रसोई घर में भोजन से आगे इसकी बुद्धि नहीं चलती। मुझे ही इसे समझाने दीजिये।"

"ठीक है, तब आप ही कहिये।" बोमाया ने कहा।

"यह मैं बेलगोला से एक पद्मिनी को पकड़ लाया तो, मेरे इन भालारी भाई-बन्धुओं को इस तरह के खयाल आये।"

"अरे, वाह ! और नजर भी ठेठ गोमती तक पहुँचाई ?"

"अरे पगली, जब मारना ही है तो फिर, मोर ही क्यों न मारा

जाए ?" सोमसामी ने कहा—"वेलगोला में एक पद्मिनी थी, उसे मैं ले आया ! अब दूसरी भी कोई है ? इसलिए भालारी तुझे गोमती के बारे में पूछता था।"

"तो भालारी," बोमाया ने हँसकर कहा—"यह ख़याल छोड़ देना।"

"लेकिन इसका कोई कारण ?" त्रिबोया ने पूछा—"इस दुनिया में ऐसी कौन-सी चीज़ है, जो मनुष्य को अपने पुरुषार्थ पर न मिले ? आदमी के पुरुषार्थ के प्रतिफल ही आकाश के चंद्र-सूर्य और नक्षत्रों के भेद खुल गए ! आदमी ने पुरुषार्थ किया और सात सागरों के भेद छिपे न रह सके ! मनुष्यों के पुरुषार्थ पर ही राज्य प्राप्त हुए और राज्यों में परिवर्तन भी हुए ! इंसान की मेहनत के सबब ही, शेर और हाथी भी उसके काबू में आ गये ! फिर भला, गोमती की क्या बिसात ! भले वह स्वर्ग की सुन्दरी परी ही क्यों न हो, है तो एक बनिए की बेटी ! और भाभी, तुम इस बिबोया को क्या समझती हो ?"

"भावजी, तुम चाहे-जैसे हो, तो भी, हो बेसवागा !" किसी आदमी की नज़र उसके संयोग और उसके समाज की बाहरी बनावट पर नहीं पहुँचती। और हाँ, दुनिया में सभी बेसवागा नहीं हैं ! और सब तरफ तुम्हें पांचालों की लड़कियाँ नहीं मिल सकतीं।"

"यह भला क्या चीज़ है ?" सोमसामी ने पूछा।

"गोमती कोई पांचाल स्त्री नहीं है और नहीं है किसी बेसवागा की बेटी !" तुम्हें अगर खबर न हो तो, बतला दूँ कि गोमती के हाथ के लिए स्वयं लंका के राजा ने संदेशा भेजा था ! और वह भी कैसा संदेश ? उसने कहलाया था कि तुम्हारे पिता की एक पाई भी मुझे नहीं चाहिए, उल्टे तुम्हें हीरों में तोलकर, तुम्हारा रत्नाभिषेक करके, तुम कहो तो सारा धन तुम्हारे पिता को दे दूँ ! अथवा, कहो तो, दान में दे दूँ ! लेकिन, गोमती ने इस महान् सदेश को भी खाली लौटा दिया ! अब आप क्या कहते हैं ?"

"भाभी, गोमती के गुणगान गाती तुम थकती नहीं, और सुनते-सुनते मैं थकता नहीं ! लेकिन, स्थिति यह है कि चादर छोटी और पैर लम्बे हैं !

तुम्हें ख़बर न हो तो कहे देता हूँ कि उसके लिए मैं अपने सर की बाज़ी लगाकर बैठा हूँ ! अब और तुम्हें क्या कहना है ?"

"मैं दूसरा कुछ और नहीं कहती ! तुम्हें एक बात कह देती हूँ। सिर की बाजी लगाई है तो सिर दे देना। लेकिन सिर किसे दिया है तुमने ?"

"सालुवा माँगी को !"

"उस शैतान को ! वह ज़हरीला बिच्छू है ! जुआरी है। और यह कहता-फिरता है कि राजा बननेवाला है वह ! एक बार वह गोमती अम्मा के पास आया था। अपने बाप वायीजन तक बात पहुँचाते उसे शरम तक न आई ! सेठ तो कहता है : "मैंने संसार से मन हटा लिया है, आप जानें और गोमती जानें !"

"इस बात में मेरी दिलचस्पी है। फिर ?" बिबोया ने आतुरतापूर्वक पूछा—"फिर क्या हुआ ?"

"फिर सालुवा माँगी ने गोमती अम्मा* से चर्चा की। अम्मा ने उसे नौकरों और दासों, के द्वारा धक्के मार कर निकलवा दिया !"

"किसलिए ?"

"गोमती अम्मा कहती है : यह मेरे पिता के यहाँ चोरी करने आया था ! मैं सात-मात मर्दों के बराबर हूँ फिर मुझसे स्त्रियों की तरह बात करते इसे शर्म न आई ?"

"यह तुम्हारी अम्मा कोई स्त्री-महिला है अथवा हिडिम्बा है ? शूर्पणखा है अथवा पूतना है ? कौन है ?"

"यों तो वह हिडिम्बा भी नहीं है और पूतना भी नहीं। यह मेरा ही उदाहरण देखिए न ?"

'तुम्हारा कौन-सा उदाहरण ?"

"अरे, हमारे नायक ने एक बार गोमती देवी से शिकायत की—

'यह बोमाया कुछ काम नहीं करती ! किसी पुरुष के संग दिन भर आँखें लड़ाती बैठी रहती है !' तब अम्मा बोलीं—'अरे, होलेय या पालेर

*दक्षिण भारत में सम्मानसूचक प्रयोग।

अगर काम न करेगा, तो, जाएगा कहाँ ?' सो, भावजी, उसने अपने दोरंगी के हाथ मुझे पकड़ मँगवाया। और बिना-पूछताछ के, मुझे पेड़ से बाँध दिया और हाथ में बेंत लेकर खड़ी हो गई ! उसने फिर एक अधोवस्त्र के सिवाय, मेरे सारे कपड़े खींच कर उतार फेंके और मुझे नंगी कर दिया ! फिर पीटने लगी। उसके हाथ बड़े मज़बूत हैं। दिखने में दुबली-पतली है, मगर ताकत बहुत है उसमें। बड़े-बड़े मुँहज़ोर घोड़ों की लगाम जब खींचती है तब या तो वे हवा हो जाते हैं या उनके मुँह फट जाते हैं। सागर में जहाज़ तूफ़ान-भँवर में पड़ा हो तो अकेली ही वह उसे नियंत्रण में रखती है। अकेली ही पाल खोल देती है। और उसके वे हाथ—हाथ नहीं, हथौड़े हैं, हथौड़े ! उसका यह दावा है कि चाहे जैसा मर्द जो काम कर सकता है, वही काम वह खुद भी कर सकती है ! और यह दावा और यह गुमान ग़लत भी नहीं है। सो, उस दिन वह तो मुझे बेंत से सड़ासड़ पीटने लगी। मेरे गले से चीख निकली। उसके प्रहार से अच्छे-अच्छे पालेरों के हाथ-पैर पंगु हो जाते हैं। मैंने चीत्कार कर कहा—

"अम्मा ! अम्मा ! वह तो मेरा पति है ! मेरा पति बनने वाला है !"

"फिर ?" मानो, बोमाया के शब्द साकार हो रहे हैं, इस तरह बिबोया की आँख के सामने यह उमंग उपस्थित हो गया !

"फिर अम्मा बोलीं—'पगली न बन ! अपनी ज़िंदगी को धूल में मिलाना चाहती है तो भले, जा ! किंतु मैं अपना काम नहीं बिगाड़ने दूँगी, तुझे ! कौन है वह अभागा जो तुझ जैसी होलेय का हाथ पकड़ना चाहता है ?"

"फिर तुमने बतलाया था क्या, कि वह अभागा सोमसामी है ?"

"मेरे कहने पर कहने लगीं—'एक ब्राह्मण-विप्र ! बुलाओ उसे !' फिर सोमसामी आए। और गोमती अम्मा ने उनसे पूछा। सोमसामी ने 'हाँ' कही। अतः गोमती देवी ने मुझे पेड़ के बन्धन से छुड़ा दिया और पाँच सौ वराह दहेज में देकर सोमसामी को सौंप दिया। लेकिन सौंपते उसने तुम्हारे इन भावजी को क्या कहा था, जानते हो ?"

"नहीं, क्या कहा था, भला ?"

"कहा उसने—'यह मेरी होलेय है, इसलिए मेरी जमानत है। विप्र, आज इसे तुम्हें सौंपती हूँ। लेकिन याद रखना, अगर तुमने इसे हैरान किया तो जीते-जी चाबुक की मार से तुम्हारी खाल न उतार लूँ तो मेरा नाम गोमती नहीं।'

"अरे, तुम यह किसी स्त्री की चर्चा कर रही हो, या किसी जीवित प्रेतनी की ?"

"भावजी, एक स्त्री की ही यह बात है समझे ? और तुमने जिस स्त्री के लिए अपने सिर की बाजी लगाई है, उसी की यह बात है। जाते-जाते वह कहने लगी—'अब तुम ब्राह्मण नहीं रहे। विप्रजन जैनों जितने उदार नहीं होते। कोई वणिक होता तो तुम्हें अपने में समा लेता, लेकिन विप्र जिसे कहते हैं, वे तुम्हें अपने में न समा सकेंगे। इतना ही नहीं, इस विप्र को भी 'विनोदी' कहकर जाति से बाहर कर देंगे। इसलिए तुम दोनों ऐसा काम करना, जिससे लगभग पाँच जीतल की कमाई हो सके। सोमसामी तुम ब्राह्मण हो, तुम्हें खाना बनाना आता होगा। बोमाया बर्तन मलने और दूसरे प्रकार के काम कर सकेगी। अत: एक चोलेत्री लगा सको तो सुखी रहोगे। चोलेत्री के 'सामी' की जाति-पाँति या माँ-बाप के बारे में कोई कुछ पूछता नहीं।"

"यह बात है भावजी," सोमसामी ने कहा—"अब क्या तुम्हें, यह नहीं लगता कि एक ज़हरीले नाग के पास तुमने अपना सिर रख दिया है ? और एक शेरनी को जीवित पकड़ने की बाजी बदी है ! क्या तुम्हें यह नहीं लगता कि तुमने भूल की है ?"

"मुझे भी लगता है कि मैंने भूल तो की है"—बिबोया ने स्वीकार किया—"लेकिन एक बात है : पुरुषार्थ तो करना ही पड़ेगा, ज्यों की त्यों बात धर दूं तो मैं कैसा बिबोया !"
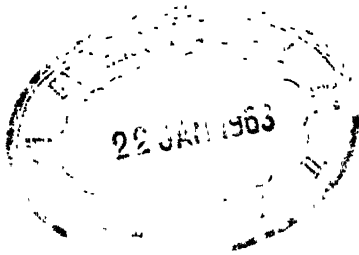
विश्वकर्मा ने स्वयं आकर मानो इस नगरी का निर्माण किया है, मानो श्रीकृष्ण भगवान की द्वारिका नगरी साक्षात् अपने कनक-जड़ित कोट कँगुरे सहित वहाँ आकर उपस्थित हुई है--अथवा लंकापति रावण की लंका घाटियों के बीच आश्रय लेने के लिए आ गई है, या देवों की अमरपुरी भूल-भटक कर यहाँ आ पहुँची है !....

---ऐसी, यह वीरवणिकों की बेलगोला नगरी---पश्चिमी-घाट के पर्वत नीलगिरि पर्वतमाला से मिलने के लिए जहाँ मुड़ते हैं और सागर की ओर जाने के लिए, जहाँ तनिक अपना पट खोलते हैं, वहाँ बसी है !

वणिकों, वीरों, देवांगों और बेहारुलु व्यावहारिकों के प्रासाद इतस्ततः फैले पड़े थे ! और एक-एक अमरणे (प्रासाद) में सात-सात सागरों की समृद्धि चकाचौंध पैदा कर रही थी। बालीद्वीप के सूत को शरमाने वाली और रेशम को भी असूया आए ऐसे वल्कलों से लेकर, बर्बरों की लौहकृतियाँ, काकोस और कर्जत (बम्बई) तक के मत्स्यचर्म आदि के इस नगरी में भांडार भरे थे ! जावा के सुगंधि द्रव्यों और काश्मीरी केसर से सारा नगर महकता था और स्पेन की जाफरान से मानो उन्होंने समता की थी !

वीरवणिकों के नाना छप्पन देशों के स्थल और जल के मार्ग कितने प्रलम्ब थे, यह उनकी नगरी देखने से स्पष्ट विदित होता था। बेलगोला का मणिग्राम यानी सात सागरों का प्रवास। और उसके एक वणिक का अमरणे अर्थात् सात सागरों का सौष्ठव !

उसके मणिग्राम में फारस के घोड़े ! अरबस्तान के रेगिस्तान में, जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि ये हरिण हैं तो हरिण प्रतीत होते हैं और

पंखी मानते है तो पंखी की प्रतीति होती है—ऐसे सुन्दर पंछियों के पंखों के पंखे ! शिराई की शराब, तेहरान का इत्र, पाताल की अन्य सामग्री, सौराष्ट्र की विचित्र वस्तुएँ और मोती, ब्रह्म देश का 'रेशमी काठ', श्याम का काठ का रेशम ! खत्ता (चीन) और खोना का चीनाम्बर, जावा और बाली के वल्कल—सभी वस्तुएँ बेलगोला के बाजारों में देखने को मिल जातीं !

उसके प्रासादों में राजस्थान के दर्पण और संगमरमर, नर्मदा के रंग-बिरंगे पत्थर, और हिमालय में गंगोत्री की हिम कंदराओं में उत्पन्न होनेवाले तीन-तीन उपवीतों के चिह्न वाले स्फटिक !—सब कुछ बेलगोला की शोभा-वृद्धि के लिए प्रस्तुत थे !

और उसके उद्यानों में सोमवल्ली के पौधे थे ! सोमवल्ली के पौधे—मात्र गंगोत्री और यमुनोत्री के ऊपरी भाग में वहाँ उत्पन्न होते हैं, जहाँ वनस्पति की मर्यादा पूर्ण होती है और हिमकंदराएं शुरू होती हैं। संसार के अन्य किसी पर्वत की हिमकंदरा में यह वल्लरी उगती नहीं, जीवित रहती नहीं ! परन्तु बेलगोला के वणिक मानो ठेठ दक्षिण के अपने उद्यानों में, हिमालय की हिमकंदरा के वातावरण की रचना कर सकते थे और सोमवल्ली के पौधे रोप सकते थे, उन्हें जीवित रख सकते थे !

आदमी की हथेली और पंजे-जैसे पत्ते होते हैं सोमवल्ली के ! और उँगलियों जैसे ही लम्बे, पतले और कुछ मोटे पाँच पत्ते इस पौधे के होते हैं। हथेली के स्थान पर केसर के रंग के फूल लगते हैं ! और इसी फूल से पाँच उँगलियों की तरह पाँच पत्ते फूटते हैं ! सम्पूर्ण चांद्रमास में केवल पूर्णमासी के दिवस और अवसर पर ही यह वल्लरी सम्पूर्ण रीति से खिलती है। फिर ज्यों-ज्यों चंद्रमा क्षीण होता जाता है, त्यों-त्यों यह वल्लरी भी संकुचित होती जाती है ! अमावस के दिन, इसके पुष्प-पल्लव आदि सम्पूर्ण अंश बन्द हो जाते हैं ! फिर ज्यों-ज्यों चन्द्र पुनः वृद्धि पाता है त्यों-त्यों फिर से खिलने लगता है। विचित्र एक बात यह है कि इस वल्लरी पर सूर्य किरण या प्रकाश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता ! पूर्ण विकसित वल्लरी के पुष्प के पाँचों पत्तों को एक साथ पीस कर रस का यदि पान किया जाए तो पीने वाले को

नवजीवन प्राप्त होता है। इस रस-पान के भाग्यवान की आयु तो उतनी ही रहती है, जितनी विधाता ने उसे दी है मगर देह पर आयु का प्रभाव कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। दूसरी विचित्र बात यह है कि इस बल्लरी की न तो कलम उगती है, न बीज ही उगते हैं—मात्र 'रसबिन्दु' से उसकी उत्पत्ति होती है!

सात सागर की रत्न-संचय-समान इस धनवंत नगरी में इसका पृथ्वीश्रेष्ठि बेहारुलु वायीजन धनवंत माना जाता।

कई उद्यानों से सुशोभित उसका प्रासाद अनुपम माना जाता था। प्रासाद क्या था, मानो किसी अप्सरा ने पाषाणी संगमरमर की काया में प्रकट होने की कामना की हो!

वायीजन बेहारुलु की हवेली में, उसके दीवानखाने में एक पर्यंक सजा था!

इस सुन्दर पर्यंक पर इस समय एक सुकुमारी बैठी हुई थी। सात सागरों के सार के समान उसकी पोशाक थी। ईरानी पर्वतमालाओं में विचरने वाले दो-दो सींगोंवाले भेड़ों के असली ऊन से मँढ़ा हुआ छत्र उसके माथे पर था। कानों में लाल माणिक के कुंडल थे। गले में सौराष्ट्र के मोतियों की लड़ियाँ थीं। उसके शरीर पर मदुरावासी सौराष्ट्रीय कारीगरों का बनाया हुआ बढ़िया और बारीक रेशम का घुटनों तक पहुँचने वाला अचकन था। इसकी बनावट कुछ-कुछ अरबी परिवेश से मिलती थी और दाहिने कंधे पर आसमानी मुद्रा की छाप थी। कमर पर बाली का बना हुआ वल्कल शोभा दे रहा था। पैरों में मलाया के अगरु के खड़ाऊँ थे और उन खड़ाउओं की महक सारे खंड को गंध से भर रही थी। उसके शरीर की बनावट भरी हुई और उठावदार थी। उसके शरीर पर सौष्ठव और सुन्दरता की छाया थी।

उसके दीवानखाने की बनावट ऐसी थी कि वहाँ बैठ कर वह उस अति विशाल अरमण में चलने वाले नानाभाँति के व्यवहारों में से कई प्रमुख कार्यकलापों को देख सकती थी।

कहीं-कहीं मल्लाहों का आगमन चल रहा था। आने और जाने वाले

जहाजों के विषय में व्यापार और सौदे की बातें हो रही थीं। कहीं सैकड़ों मुनीम और गुमास्ते बैठे-बैठे हिसाब लिख रहे थे। कहीं नाना छप्पन देशों में घूमने वाले देवांग और बनजारे, दलाल और व्यापारी—कान से मुँह लगाकर, हाथों पर आवरण डाल कर और नीचे हथेली पर उँगली से कुछ लिखकर—कहीं कुछ संकेत से तो कहीं बडी बोलचाल से सौदे-वायदे कर रहे थे। कहीं भिन्न-भिन्न पंथों पर विभिन्न व्यापारों के लिए जाने वाले यात्री और मुसाफिर पंथ के समयपत्रकों पर विचार कर रहे थे। किसी को चीन में, किसी को बाली में तो किसी को सिराज़ और बगदाद में मिलने के लिए वचन दे रही थी।

कहीं देश-परदेश के क़ासीदों के काग़ज़ आ रहे थे और उन्हें काग़ज़ लिखे जा रहे थे। कहीं बड़े-बड़े तराज़ुओं पर सोने के वराह सिक्के तौले जा रहे थे। और थैले भर-भर कर दूसरे सिक्कों की लेन-देन चल रही थी। जीतल की तो कहीं कोई गिनती ही नहीं थी। एक कोने में उनका ढेर लगता जा रहा था और नौकर लोग उनकी थैलियाँ भर-भर कर ले जा रहे थे और फिर उनका क्या होता यह किसी को ज्ञात न था। और ज्ञात हो या न हो इसकी किसी को चिंता भी न थी। अमरणे के पिछवाड़े मेहमानों, अतिथियों, मुलाकातियों और अन्यान्य आगन्तुकों के लिए बहुत बड़ा रसोई-घर था।

यह समस्त व्यवहार कुबेर भांडारी की शोभा के अनुकूल था और इससे समवेत रूप में एक ऐसा कोलाहल उठ रहा था कि जो कानों को आनंद देने वाला था। और जैसे किसी प्रचंड जलयान पर विराजित नाखुदा नाविक अपने गद्दी-तकिए पर अधलेटा-सा जहाज़ की गतिविधि से उठने वाले चित्र-विचित्र स्वरों को कान लगाकर सुनता हो और उन स्वरों के योग और वियोग के आधार पर जहाज़ की गति, पवन की दिशा, जलयान की स्थिति, मल्लाहों के समस्त काम-काज का अनुमान पा रहा हो—उस प्रकार पर्यंक पर बैठी हुई यह प्रतिमा कभी भाल पर हाथ फिराती, कभी पर्यंक पर पैर हिलाती, कभी अपने मुँह पर हाथ फिराती, मानो जहाज़ के समान ही विशाल इस अरमणे के विभिन्न व्यापारों का ध्यान रखती हो! अर्ध-

सुधि की अवस्था में मानो, उसका आधा मन इस दैनिक कार्यकलाप में लीन था। और शेष आधा मन किसी सम्भावित कार्य के सूत्रों को धीमे-धीमे जोड़ रहा था !

इस प्रकार के विशाल और विविध भाँति के व्यापार-व्यवहार पर नियंत्रण रखने वाली और एकमात्र अंगुलिनिर्देशन पर इच्छित दिशा में इच्छानुसार धारा को मोड़ देनेवाली शक्ति किसी युग की स्वयं सत्ता होनी चाहिए। इस दृष्टि से यदि कोई इस व्यक्तिमत्ता को देखे तो, उसका पौरुषेय तनिक नज़ाकत भरा प्रतीत होता है और दर्शक को तनिक अचरज भी होता है !

दर्शक कुछ और निकट आता है तो उसका अचरज अपार विस्मय में परिवर्तित हो जाता है। सर्वथा अपरिचित होने पर वह दिग्मूढ़ बनकर अवाक् रह जाता है ! क्योंकि जगप्रसिद्ध जगत्सेठ और वणिकों के तीनों पदों—वणिक्, बनानी और वेहारुलुओं के बड़े व्यवहारी पृथ्वीसेट्ठि का यह पद था ! और इस पद पर और इस स्थान पर कोई पुरुष नहीं, वरन् एक स्त्री बैठी थी !

जब तक उसके सन्निकट पहुँचकर आप उसे देखें नहीं, तब तक यह स्पष्ट नहीं हो सकता कि वह स्त्री है या पुरुष, क्योंकि उसका परिवेश पुरुष-जैसा ही है ! वह 'स्त्री' है, यह जान लेने पर, सदंतर भिन्न धारणा होती है। उसकी काया का वर्ण चंदन-जैसा ! उसके लोचनों में सागरतल की अतल गहराई-सा नित्यहरित् तेज ! उसके बैठने का ढंग ! उसके सप्रमाण और सौष्ठव से झरते और उभारदार चेहरे पर पतली नाक और धनुष की कमान-सा पतला ऊपरी होठ ! उसके चेहरे के प्रमाण में नन्हा लगता, उसका मुख ! लगभग पारदर्शक प्रतीत होनेवाले—लाल माणिक के रंग के कान ! जिसके देह में दरिया न हो, जिसके मन में दरिया न हो, जिसके मिजाज़ में दरिया न हो, जिसके जीवन में दरिया न हो, उसके कुलपरिवार, घर में चमत्कृत सागरतरंग-सी ऐसी कन्या जन्म नहीं ले सकती ! जन्म लेती है तो जीवित नहीं रह सकती !

यह थी सात सागर में अपने जहाज़ों की पताका फहरानेवाले व्यापारी,

वीर-वणिक, पृथ्वीसेट्ठि वायीजन की कन्या—'गोमती' !

इस गोमती का चेहरा ऐसा—कि आप उसे उदास मानें तो रोषभरा प्रतीत हो और रोषभरा मानें तो उदास प्रतीत हो ! यही चेहरा लिए वह इस समय अपने स्थान पर बैठी थी कि यदि कोई अतिथि आ जाए तो, उसका स्वागत करे ! कोई अभ्यागत आ जाए तो उसे संतोष प्रदान करे, कोई बखेड़ा पेश हो तो उसका निपटारा करे ! उसका प्रबल पर्यंक मानो सप्तसागरों का सिंहासन था। नाना छप्पन देशों में बसनेवाले लोगों के दैनिक व्हवहार का मध्यबिंदु था। । सब इस ओर अनायास या सायास खिंचे चले आते और प्रत्येक अपना-अपना भार लेकर लौटता !

इस सिंहासन का अपना विशेष तेज था। आज से पहले, इस सिंहासन के सम्मुख दक्षिण के राजा-महाराजा खड़े रहे थे ! यह सिंहासन अपने प्रति अपने आरोही के सम्पूर्ण लक्ष्य की अपेक्षा रखता था !

तथापि, इस आसन पर बैठने वाली व्यक्तिमत्ता का ध्यान और लक्ष्य आज अपने अमरणे के कार्यकलाप की ओर न था ! ऐसा लगता था मानो आज उसका मन सैर के लिए बाहर चला गया है !

उसके मन में उत्पन्न होने वाले सभी भावविचार सुखपूर्ण नहीं थे ! उसका निचला होठ उसके दो दाँतों के बीच में यदा-कदा दब रहा था—यह मानो उसके मानस के द्वंद्व को परिलक्षित करता था !

तभी उतावला चलता एक नौजवान भीतर आया—"गोमती ! गोमती ? वह आया है !"

"कौन ?"

"वह ! वह....वह....दूसरा कोई आता है तो वह स्वयं ही आता है न ? अन्यथा मैं आप से कहने के लिए भला आता ही क्यों ? वही आया है।"

गोमती ने इस नौजवान के उत्तेजित मुखमण्डल की ओर देखकर पूछा—"आज 'शिराज़ी' का समारोह तो नहीं मनाया है न ?"

"कौन ?...मैं ? शिराज़ी खेलूं ? तुम क्या पागल हो गई हो ? लेकिन तुम एक दिन, एक-न-एक दिन...।"

"बस करो, भाई बस करो !"

"भाई ?"

"क्यों, भाई क्यों नहीं ? बूआ का बेटा भाई कहलाता है—इसमें किसी को ऐतराज है ? अथवा तुम कहो तो तुम्हें मैं भावजी कहकर बुलाऊँ !"

"बूआ के बेटे और भाई में बड़ा अन्तर है गोमती ! तुम मुझे भावजी ही कहो।"

"भावजी क्या ! तुम कहो तो होलेय कहूँ, पालेर कहूँ अथवा कालाचोर कहूँ, 'नेपाला'[1] कहूँ ! मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? लेकिन भले भावजी, भाई बनने में आपको क्या उज्र हो सकता है !"

"तुम गोमती !...तुम दक्षिण के वीर वणिकों का आचार नहीं जानती। यदि बहन के बेटा और भाई के बेटी हो और दोनों के बीच उम्र की बाधा न हो तो....तो..."

"तो ?..." गोमती ने तिरस्कारपूर्वक हँसकर पूछा और हँसकर कहा—"यह बात हमने अनेक बार की है और आगे भी कई बार करेंगे। लेकिन इस वक्त इसका क्या प्रयोजन है ?"

"तुम्हारे पिताजी तो मानो उपाश्रय में जा बैठे हैं ! और उसके चैत्य में वे 'समय' के अतिरिक्त अन्य किसी आदेश के विषय में अस्वीकृति देते है। कहते हैं कि मैंने तो अब जगत् का जंजाल छोड़ दिया। इसलिए गोमती से पूछो, वही सारा काम-काज देखती है। वे तो 'प्रायोपदेश' की बातें करते हैं।"

"हम इस बारे में भी चर्चा कर चुके हैं।"

"लेकिन, प्रायोपदेश के पूर्व व्यवहार और संसार का यह तनिक-सा काम करते जाएँ तो, क्या बुरा है ?"

"यह बात तुम कई बार कह चुके हो।"

"मरुप्रदेश के दर्पण और स्फटिक के इस प्रासाद में तुम रहती हो, सो, तुम्हारा मानस भी वैसा ही पाषाणवत् कठोर बन गया है। पत्थर में जिस

१—मयलापुर मद्रास और जीजी के बीच सफर में नेपाल नामक द्वीप है। प्राचीन काल में यहाँ कई लुटेरे और डाकू रहते थे, अतः शब्द बना 'नेपाला' अर्थात् चोर-लुटेरा !

प्रकार पानी की पैठ नहीं, उस प्रकार तुम्हारे मन में भी किसी भावना या लगन के लिए स्थान नहीं !"

"तुम इतनी भी समझ रखते हो, यह बड़ी अच्छी बात है। तुम्हारा यदि यह विश्वास है कि इस विषय की चर्चा मुझसे करते समय, तुम्हें पत्थर से सिर पटकना पड़ता है, तो जाने दो, हम दूसरे विषय पर वार्तालाप करें!"

"तुमसे बातचीत करने का यही परिणाम है ! किन्तु इसका निर्णय तो तब होगा, जब मेरी माँ और तुम्हारे पिता—दोनों—बहन-भाई मिलेंगे। तुम्हारे पिता भले प्रायोपदेश करें, किन्तु लोक-व्यवहार तो वीर वणिकों के पृथ्वीसेट्ठि के अनुरूप ही आचरित करना होगा ! वे भी क्या कुछ उलटा-सीधा कर सकते हैं ? गोमती, इतना तो तुम भी लिखकर, रख लेना ! मैं वरजांग सेट्ठि...!"

"ठहरो, भावजी ! तुमने अपनी एक बात कही, और अनेक बार उस एक बात को कहा ! ...और मैंने उसे शांतिपूर्वक सुना भी....अब तुम मेरी एक बात एक बार ही सुन लो।"

"कहो।"

"भाई और बहन जब मिलेंगे, जो होना होगा, वह होगा, जो न होना होगा, वह नहीं होगा ! परन्तु मेरे निकट आकर, तुम अब फिर कभी इस बात की चर्चा न करना, वरना ! ..."

वरजांग ने तनिक आवेश में कहा—"वरना ?"

गोमती ने कड़ककर कहा—"वरना...वरना...छोड़ दो। छोड़ो इस चर्चा को। इस वक्त इसकी ज़रूरत नहीं ! लेकिन तुम इसी चर्चा के लिए तो यहाँ नहीं आए थे। कुछ-दूसरी ही चर्चा करने आए थे ! किसी अतिथि या अभ्यागत की बात कहने आये थे ? क्या बात है ?"

"वह तो मैं भूल ही गया !...वह आया है ?"

"वह यानी वह कौन ?"

"मैंने तुम्हें उसका नाम नहीं बतलाया ?"

"नही !"

"परंतु, अब तो मैं उसका नाम ही भूल गया ! ...क्या है उसका नाम ?

...उसका नाम...उन होलेयों और पालेरों का सेठिया बनकर, वह-जो. फिरता है न ?...टोटी...?"

"वही ? नाम तो वही है।"

"क्यों आया है ? उसे धक्के मारकर निकलवा नहीं दिया ?" मेरे अरमणो में टोटी आए ?...क्यों आया है वह ?..."

"लेकिन हम लोगों से तो, वह बात ही कहाँ करता है ?"

"उससे बात करने की ज़रूरत ही नहीं थी। फिर भी, तुमने उससे क्या कहा ? उसने तुमसे क्या-क्या कहा ?"

"यह टोटी—है तो पालेर। परंतु उसका मिजाज़ तो मेरे और तुम्हारे मिजाज़ से भी ज़्यादा अक्खड़ है ! कहता था : मैं स्वयं पृथ्वीसेट्ठि से ही बात करूँगा अथवा उनकी ओर से समस्त व्यवहार जो चलाता है, उससे बात करूँगा।"

"यह बात है ? आख़िर क्या कहना चाहता है ?"

"यही तो मुश्किल है ! यदि तुमने मुझे यह अधिकार दिया होता तो आज तुम्हें इस टोटी के साथ सिरपच्ची करने की ज़रूरत नहीं थी ! ऐसे नाफ़रमान पालेर से बातचीत करना भले घर की बेटी का काम नहीं है ! लेकिन जब तुम कुछ समझती नहीं तो किया क्या जाए ?"

गोमती ने पर्यंक की गद्दी के नीचे हाथ डाला और उसके नीचे से एक 'कशा' (चाबुक) निकाला ! यह चाबुक मगर की पूँछ का बना था। बहुत लम्बा, पतला, काले नाग-सा था। इस पर छोटे-छोटे काँटे थे।

"यह क्या चीज़ है, जानते हो वरजांग ?"

"यह होलेयों और पालेरों को दण्ड देने की कशा है। क्यों पूछ रही हो, भला ?"

"यों ही। जानते हो, इसका उपयोग होने पर क्या होता है ?"

"इसका उपयोग टोटी पर करना है ? इसका एक ही वार, पहने हुए वस्त्र के पार पहुँचकर चमड़ी उतार लेता है ! किन्तु तनिक सोच-विचार कर क़दम उठाना। यद्यपि टोटी पालेर है, नाफ़रमान है, फिर भी इस वक्त इसे छेड़ना ठीक नहीं !"

"इस कशा का उपयोग मैं टोटी पर करूँ या न करूँ, यह मेरी मरज़ी की बात है, वरजांग ! और किसी होलेय-पालेर और पृथ्वीसेट्ठि के बीच में धरतीभर की कोई ताक़त नहीं आ सकती ! मगर यह बात बाद में होगा.... आज इतना ही ध्यान रखना कि कहीं यह कशा तुम्हें अपना शिकार न बना ले !"

"मुझे ? अपने भावी पति को ? तुम क्या पागल हो गई हो ?"

"मैं पागल नहीं हो गई ! किन्तु लगता है, तुम पर ही कुछ पागलपन सवार है ! और जिसके सिर में पागलपन घुस-बैठा है, उसे उससे मुक्ति दिलाने का एकमात्र उपाय यह कशा है ! तुमने यह भी देखा है कि मेरे होलेय और पालेर इस कशा को देखकर बराबर चौंक उठते हैं ! और तुमने यह भी देखा है कि मेरा हाथ जरा भारी है।"

"मुझे ! मुझे ! तुम धमकी देती हो, मुझे ?..."

"तुम्हें धमकी नहीं देती, चेतावनी देती हूँ। मैं ऐसी प्राणी नहीं, जिसे आसानी से छेड़ा जा सकता है ! आज तक तुमने ऐसी वैसी बातें का हैं, लेकिन, अब जो यदि तुमने फिर से इस बात का उच्चारण किया तो इस कशा से तुम्हारी—जीवित की खाल उतार लूँगी ! यह लिख कर रख लेना। मुझे तुम्हारी बातें पसंद नहीं। मुझे तुम्हारी बात स्वीकार नहीं। तुम्हारा और मेरा जो पारिवारिक सम्बन्ध है, उसके कारण मैं आज तक अपने स्वभाव पर संयम रखती आई हूँ। परंतु तुम इस संयम की परीक्षा न लेना।"

गोमती खड़ी हो गई ! उसकी आँखों में मानो बिफरी हुई बाघिन का रोष उफन आया था। उसका चेहरा लाल हो गया था ! उसकी शक्ति की बातें तो सबने कानोंकान सुनी थीं ! इस तरह की शक्तिसम्पन्ना, ऐसी लापरवाह और ऐसी रोषवत युवती के हाथों में कशा देखकर, बाघिन के सामने खड़े बैल की तरह, वरजांग थर् थर् काँपने लगा !

"अरे तुम तो चिढ़ गईं ! तुम से तो कोई दो पल निर्दोष परिहास का उल्लेख भी नहीं कर सकता ! लेकिन कुछ परवाह नहीं ! वैसा परिहास कोई दूसरा करना चाहे तो करे, मुझे नहीं करना है तुम्हारे साथ !"

"बस ! दूसरे परिहासकर्त्ता आएंगे तो उनका सामना किस प्रकार

किया जाए, यह सीखने के लिए, मैं तुम्हारे पास नहीं आऊँगी ! यदि तुम भले आदमी हो, अपनी इज्जत बचाकर रखना चाहते हो तो फिर कभी ऐसी बात न कहना ! और यदि भूल-चूक से भी कभी कही तो, याद रखना, मुंह से नहीं इस चाबुक से तुम्हें जवाब दूंगी—यह मेरी अंतिम चेतावनी है !"

"ठीक, तब, बात नहीं करेंगे !"

"बस ! अब टोटी की बात करो !"

"इसमें बात करने-जैसा है ही क्या ? टोटी बाहर खड़ा है ! तुम्हारे पिताजी से अथवा उनके ऐवज काम करने वाले वीर वणिक से वह मिलना चाहता है ! परन्तु किस तरह, क्या बात करना चाहता है, यह उसने नहीं बतलाया !"

"उसे मेरे पास लाओ !"

"गोमती, अब तुम ज़रा मेरी बात भी मानो ! ज़रा सोच-समझ कर कदम बढाओ ! यह टोटी सामान्य टोटी नहीं है। इस मंडल के समस्त होलेयों और पालेरों का नियन्त्रण उसकी एक आवाज़ और पुकार के वश में है ! और होलेय और पालेर आज बिफरे हुए हैं ! ये राय-रेखा द्वारा प्रदत्त अधिकार माँगते हैं ! शेष दूसरे व्यक्ति तुमसे बात करते सकुचाते हैं और मुझे कहा गया है कि टोटी के प्रति सावधानी बरती जाए !"

"जाति का वह शूद्र-ढेढ़, और ऊपर से पालेर और मैं हूँ—पृथ्वीसेट्ठि की पुत्री, बेलगोला के पृथ्वीसेट्ठि वायीजन की बेटी, सात समुन्दरों पर जहाज़ चलानेवाले और नाना छप्पन देशों में निर्द्वंद्व विचरण करने वाले वीर वणिकों की तीनों शाखाओं को सुरक्षित रखनेवाली...गोमती...और उसके प्रति सावधानी बरतूँ ? उसका ध्यान रखूं—उसका ?" गोमती ने दाँत पीस कर पूछा—"कौन है 'वह' कहने वाला ?"

"तुम तो हवा से जूझती हो ! सभी जानकार यही कहते हैं !"

"कौन जानकार—कहता है ?"

"तुम्हारे बड़े व्यवहारी कहते हैं, तुम्हारे देवांग कहते हैं, तुम्हारे 'सामुराया' कहते हैं और तुम्हारे मल्लाह कहते हैं ! अरे, कौन नहीं कहता ! खेतों में अनाज ज्यों का त्यों पड़ा है और कुरुम्बाओं और कम्पूओं के प्राण परिश्रम

करते-करते कंठ में आ गए हैं ! मयलापुर और मांगरुल, होनावर और विगाम्वा, गोमांतक और जीजी में जलयान, नौकाएं और जहाज़ लंगर डाले जैसे-के-तैसे पड़े हैं ! नदियों पर हमारे व्यापार का यातायात रुक गया है ! स्थल पर कई काफ़िले रुक गए हैं। आज सभी होलेयों और पालेरों के सिर फिर गए हैं। और आजकल यह टोटी उन सबकी आँख कान और नाक बना बैठा है !"

"वे सिर-फिरे पालेर एक बार यदि मेरे हाथ पड़ जाएं ! पड़ जाएं.......पड़ जाएं.......! तो" गोमती के होठ क्रोध से काँपते रहे !

"हाथ में पड़ जाएं तो क्या करोगी ? उनके सिर फिराए हैं राय-रेखा ने ! और राय-रेखा के रचयिता हैं राय हरिहर !"

"यह राय-हरिहर......वह कुरुम्बा ! भला वह शूद्र से 'राय' बन बैठा ? कर्नाटक के राजा ने एक बाबा जोगी को राज्य सौंप दिया और अपना सिर खोया; और उस जोगी ने एक कुरुम्ब को राज्य चलाने के लिए सौंप दिया ! इस विषय में हमें क्या करना है ? इससे वीरवणिकों का क्या संबंध है ? श्रवण-बेलगोला के वीरवणिक आज से पहले किसी राजा, किसी राय अथवा किसी राज्य के तावेदार नहीं थे, न कभी होंगे। उनके व्यवहार और व्यापार के मार्ग में कोई राज्य-प्रणाली वाधक न बनी और न बनेगी ही। वीर वणिकों की पूर्वंदा ही ऐसी है। सबने इस पूर्वंदा को स्वीकार किया है। यदि कोई इस पूर्वंदा को अस्वीकार करे तो वीर वणिकों की सेना उनसे स्वीकृति लेने में समर्थ है। क्या आप यह समझते हैं कि हमारी परापूर्व, वंशपरंपरा और पूर्वंदा के अधिकारों को हम छोड़ देंगे ? क्या दूसरों को तो लड़ना आता है और हमें नहीं आता है ? यदि कोई इस भ्रम में है कि मेरे पिता ने अरहंत की अखंड उपासना अंगीकार करके मुझे सारा व्यवहार-कार्य सौंप दिया है तो वह मुझे एक छोकरी मानकर पूर्वंदा से प्रतिकूल बातें कर या करवा सकता है तो उसकी भारी भूल है। और आवश्यकता पड़ने पर मैं अपने इस दीवानखाने में अथवा युद्ध के मैदान में उन्हें इस भूल की भूल बतला दूँगी !"

"तुम...तुम....तुम यह सब मुझे क्यों कहती हो ?" वरजांग ने रोष-

: ९ :

परचेरी

किसी बिफरी हुई बाघिन की माँद में मानो कोई गैंडा छींकता हुआ आ जाय उस प्रकार गोमती के सामने टोटी आकर खड़ा हो गया।

यों, देखने में टोटी विशेष असाधारण व्यक्ति न था। और होलेय तथा पालेर के लिए, साधारण आदमियों से जो नीचा स्थान वीरवणिकों ने अंकित किया था, उस स्थान के योग्य ही वह दीखता था। एकदम काला, ठिगना, छोटी-पतली आँखों वाला, छोटे-काले बालों वाला यह टोटी मानव के रूप में न तो असाधारण था और न साधारण ही था।

परन्तु उसकी पतली आँखों में एक अजब ही तेज तैरता था। उसकी काया होलेय और पालेर की थी परन्तु पालेरों की तरह उसकी आँखें हमेशा नीची न रहती थीं। वह हमेशा सीधा देखता था।

और उसकी वेश-भूषा भी होलेय या पालेरों-जैसी नहीं थी। वह तो ऐसे कपड़े पहन कर आया था मानो कि वह किसी भद्र समाज का सदस्य है। श्रेष्ठियों की उपस्थिति में ये कपड़े, उनके सरासर अपमान थे।

रायस के समान उसने अपने माथे पर कामदार टोपी पहनी थी, भेड़ के चर्म की नहीं, परन्तु बकरे के चमड़े की। उसके कानों में अग्रहारी ब्राह्मण

परचेरी—विजयनगर राज्य का एक धर्मादेश, जिसके द्वारा गुलाम और दासप्रथा पर नियंत्रण लाते हुए दासों के कतिपय अधिकारों की रक्षा की गई थी।

के कानों में शोभा देने वाली कड़ी के समान, कड़ी शोभित थी। पालेरों का कोई धर्म नहीं होता, सम्प्रदाय नहीं होता, समय नहीं होता, फिर भी आज इस टोटी ने तो ब्राह्मणों के जंगम जैसा भगवाँ उत्तरीय पहना था। पालेरों की तरह केवल एक लँगोटी न लगाकर, उसने वीरवणिकों जैसा अधोवस्त्र पहना था! और धरती धरातल में धँस गई, अथवा क्या हुआ? कि एक पालेर के पैरों में जूते! टोटी ने दीवानखाने के बाहर अपने जूते उतारे और उनकी चरमराहट गोमती के कानों में भूकम्प की गड़गड़ाहट के समान गूँजी।

कक्ष में आते ही टोटी ने नमस्कार किया। और यह न देखकर कि उसके नमस्कार स्वीकार किए गए हैं या नहीं, वह नीचे बैठ गया। एक पालेर...वीरवणिकों का एक पालेर...पृथ्वीसेट्ठि के सिंहासन पर बैठने वाली व्यक्तिमत्ता के सम्मुख नीचे बैठ गया, इस क्षुद्र आदमी की यह मज़ाल! अपने अनन्त रोष के मध्य टोटी की यह धृष्टता गोमती के लिए अनन्त विस्मय का कारण बन गई, पल भर के लिए मानो वह भी अवाक् रह गई। बाघिन के सामने छोटा-सा बकरा निर्द्वन्द्व होकर चला आए और डर कर भाग न जाए तो बाघिन भी आश्चर्यचकित रह जाए। शायद भाग भी जाए! टोटी को अपने सामने बुलाने के औचित्य अथवा अनौचित्य पर विचार करने का अब समय गोमती के पास न था। क्षण भर के लिए उसने टोटी से बहुत दूर जाना चाहा!

लेकिन दूसरे ही पल उसका मिजाज ठिकाने आ गया। आखिर बेटी तो वीरवणिक की थी, उसमें भी अपने व्यवहार से ही सात सागरों का व्यापार-साम्राज्य अपना बनाने वाले वायीजन वेहारूलु की! टोटी की इस प्रदर्शित धृष्टता के पीछे कौन-सी ताकत काम कर रही है, जानना जरूरी है। और उस ताकत का अनुमान भी पा लेना होगा।

टोटी ने आसन पर बैठते-बैठते पूछा—

"आपने मुझे बुलाया है?"

"हाँ, क्यों, तुम मुझ से मिलने आए थे?"

"नहीं। मैं आप से मिलने के लिए नहीं आया।" मुँहफट टोटी ने

जवाब दिया—

"मैं तो पृथ्वीसेट्ठि से मिलने आया था। यहाँ आने पर सुना कि वे तो भगवान की सेवा मे संलग्न है। अतएव मैं उस से मिलना चाहता था, जो पृथ्वीसेट्ठि के आसन पर समासीन हो। मुझे आप से नहीं मिलना था। मैंने वरजांग से बात की थी।"

"वरजांग ! अवश्य इस पालेर का दिमाग फिर गया है। यह टोटी एक सेट्ठि को 'वरजांग' ही कहता है ? सेट्ठि नहीं, मालिक नहीं, वीर नहीं, कुछ नहीं, केवल वरजाग ?....अरे, वणिकजन पारस्परिक वार्तालाप में इससे अधिक विवेक का प्रदर्शन करते हैं।

"पृथ्वीसेट्ठि का आसन मैं सँभाल रही हूँ"—गोमती ने कठोर वाणी में कहा—"कहो, क्या कहना है तुम्हें ?"

"मुझे ? मुझे तो कुछ नही कहना है, मैं तो तुम्हारी बात सुनने के लिए आया हूँ !"

"तुम मुझसे मिलने नहीं आए ?"

"मुझे पृथ्वीसेट्ठि ने नहीं बुलाया था ?"

"मैंने तुम्हें बुलाया था ? बिल्कुल नहीं।"

"तो फिर, मैं जाता हूँ !" टोटी खड़ा हो गया।

वार्यीजन के व्यवहार के पुराने, बड़े व्यवहारी टोटी के पीछे-पीछे आए थे। उन्होंने टोटी की पीठ के पीछे से ही गोमती को संकेत किया। इस संकेत को देखकर गोमती ने होठ काटे ! चाबुक को उसने कसकर पकड़ लिया। उसकी उँगलियाँ सफेद कपास के समान सफेद पड़ गई। परन्तु वह चुप रही !

बड़े व्यवहारी ने कहा—"अब तो जरा बैठो भाई !"

टोटी ने पीठ फेर कर बड़े व्यवहारी को देखा। नमस्कार कर वह बोला—"नमस्कार"

"नमस्कार।" बड़े व्यवहारी ने नमस्कार स्वीकार किया !

"तू तो कुछ दुबला पड़ गया है, नही ? हमारे यहाँ था, तब कुछ ठीक था ?"

"मैं ठीक भी नहीं था, दुबला भी नहीं था !"

"व्यवहारीजी," टोटी ने तनिक तिरछा उत्तर दिया—"मेरा कुछ काम हो तो, मैं रुकूँ अथवा लौट जाऊँ ?"

"काम तो क्या हो सकता है ? मुझे तुझ-सा आदमी पसंद आया, सीधी और साफ़ बात तो इतनी ही है।"

"वीर वणिकों से टेढ़ी-मेढ़ी बात करके कोई व्यक्ति सफल हुआ है ?"—टोटी ने कहा—"यह जाति ही ऐसी है। अपना काम पड़ने पर नरम, काम निकलने पर गरम और कठोर और स्वार्थ के सिवाय दूसरी बात ही नहीं समझती !"

"अच्छा, तूने हमारा यही मूल्य आँका है !"

"आपने बुलवाया है इस समय, तो अवश्य आपके स्वार्थ की कोई बात होगी।"

"और तेरे स्वार्थ की हो तो ?"

"तो मान लूँगा कि पूर्व का सूरज पश्चिम में उगा है।"

गोमती ने अब तक अपने आपको बड़ी कठिनाई से रोका ! वीर-वणिकों का बड़ा व्यवहारी—किसी राजा-महाराजा के महामात्य अथवा, किसी सुलतान ने वज़ीरेआज़म-जैसा ओहदा रखनेवाला, एक मामूली से इस तरह बातें करता है ? और चुपचाप सब कुछ सुनता रहे..."

गोमती की आँख के कोने लाल-लाल हो गए ! उसने तनिक व्यग्र होकर व्यवहारी से कहा—

"अब, आपको टोटी से बात करनी हो तो कर लीजिए, हमारे स्वार्थ की बात हो तो इसमें बुरा क्या है ? और इसके स्वार्थ की बात हो और यह न समझे तो इसमें दोष किसका ? जो हो, जल्दी बात खत्म कीजिए। ऐसे आदमियों से ज्यादा बकवास अच्छी नहीं।"

"हाँ, जो बात हो, जल्द पटा दें। गोमती अम्मा अब अधिक सहन नहीं कर सकतीं। एक पालेर से बात करना, उन्हें अपमानजनक प्रतीत होता है।" टोटी ने ज़रा वक्रता से कहा।

विपक्षी के मानस को पढ़कर अपनी बात, अविवेकी व्यक्ति के समान

स्पष्ट रूप में प्रकाशित करनेवाला यह पालेर गोमती के लिए सर्वथा नया अनुभव था। मानों चौमासे में बुखार चढ़ आया हो—उस भाँति गोमती अंग-अंग में पीड़ा और अकुलाहट का अनुभव करने लगी।

"तो भाई टोटी सुन : तुम होलेयों और पालेरों ने हमारा समस्त व्यवहार रोककर, क्या करने-धरने की सोची है ?"

"आपका व्यवहार हमने रोक दिया ? क्या कहते हैं आप ?"

"यह साँप के घर मेहमानी-जैसी बात हुई। तेरा गुरु कोई पक्का आदमी लगता है ! अच्छा तो यही कि उसे ही बुला ला, उसीसे बातचीत हो जाए !"

"मेरा गुरु दूसरा कोई नहीं : मैं स्वयं ही अपना गुरु हूँ।"

"तो तू मुझे बतला कि तुमने वीरवणिकों का जो व्यवहार बाट-घाट, पंथ, स्थल, जल, जलयान, और काफ़िलों आदि को रोक दिया है, उसका कारण क्या है ? उसमें तुम लोगों का क्या लाभ है ?"

"हमने लाभ की बात ही कब और कहाँ की ? और आपका व्यवहार रोकने से हमें कौन-सा फायदा है ! बात तो इतनी-सी है कि भविष्य में हम आपका काम नहीं करना चाहते है। आगे आप अपने रास्ते और हम अपने रास्ते जाएंगे।"

"इस तरह जिस दिन होलेय और पालेर अपना रास्ता पकड़ने की बात करेंगे, उसदिन वीर वणिक अपना धंधा बंद कर देंगे।" गोमती ने पर्यंक के एक कोने पर पैर पटक कर रोषपूर्वक कहा—"होलेयों के लिए और दूसरा रास्ता कौन-सा ? पालेरों का रास्ता, कैसा ? हमने गिन-गिन कर तुम्हारी कीमत चुकाई है ! और कीमत चुका देने पर भी अगर होलेय और पालेर काम करने से इंकार कर दें, तो उसके लिए हमारे पास एक मार्ग है, एक उपाय है और वह है—यह...." और अधिक कुछ न कहकर, बड़े व्यवहारी के कुछ कहने के पूर्व ही, गोमती ने अपने पर्यंक से उछलकर, अपने कशा से टोटी के कंधे पर एक ज़ोरदार प्रहार किया !

टोटी ने उछलकर, गोमती की सूझ-समझ के पूर्व ही कशा उसके हाथ से छीन लिया ! बड़े व्यवहारी को चिंता हुई कि टोटी गोमती पर वार

कर बैठेगा ! एक क्षण के लिए टोटी के चेहरे पर भी लहू उभर आया। उसकी आँखों में क्रोध काँपने लगा। किंतु दूसरे ही क्षण वह शांत हो गया। अपना हाथ नीचे झुकाकर दृढ़ता से वह कहने लगा—

"यह वार मुझ पर नहीं किया गया ! मैंने आप लोगों के हाथ से अनेक चाबुकों की मार सही है, उनकी गिनती में यह एक और बढ़ा, इसलिए, यह वार वीर वणिकों के व्यवहार पर ही हुआ है ! यह समझ लें। अब मैं जाता हूँ। और वीर वणिकों के होलेय और पालेर भी सदा के लिए चले गए हैं, इस बात की स्मृति दिलाते रहने के हेतु यह कशा मैं अपने साथ लेकर जाता हूँ !"

'होलेय और पालेर सदा के लिए चले गए हैं ?" बड़े व्यवहारी ने आश्चर्य से पूछा !—"अरे, तुम लोग, अगर यों चले जाओगे तो तुम सब, आखिर करोगे क्या ? क्या खाओगे ? क्या पीओगे ?"

"हमारी यह चिंता अब आप छोड़ दीजिए बड़े व्यवहारी जी ? अब तो इसी समस्या पर विचार कीजिए कि हमारे जाने पर आप लोग क्या खाएंगे ? और यह विचार और समस्या हमारे-जितनी छोटी नहीं, काफी बड़ी है, इस बात का ख्याल रखना !"

"तुम्हारी समस्या छोटी है ?...यानी ! "गोमती ने पूछा।

"जी हाँ ! पृथ्वीसेट्टि के इस आसन और इस आसन पर बैठने वाले आप सब लोगों से मैं साफ़-साफ़ कह देना चाहता हूँ कि आप हमारी चिंता न करें ! तुम से कही अधिक समर्थ व्यक्ति ने यह चिंता और समस्या अपने हाथ में ले ली है। हम सभी होलेय और पालेर राय हरिहर की सेवा में भरती हो जाने वाले हैं।"

"क्या हैसियत है इस राय हरिहर की, कि वीरवणिकों के होलेयों और पालेरों की तरफ आँख उठाकर देख भी सके ? वीरवणिकों ने आज तक अपना व्यवहार स्वतंत्र रहकर चलाया है और चलाएंगे ! और इस में बड़े-बड़े सम्राट, सुलतान और कलियुगी कालयवन तक बाधक नहीं बन सके, यह अच्छी तरह याद रखना। क्या तेरे उस राय हरिहर को वीरवणिकों की शक्ति का अनुमान नहीं ?"

"शायद न हो। और अगर आप उन्हें यह अनुमान करा देना चाहते हों तो उसके लिए उपयुक्त अवसर आ गया है!"

"यानी ?"

"यानी, वीरवणिकों के जो काफिले मदुरा के सुलतान के लिए जा रहे थे, उन्हें राय हरिहर ने जब्त कर दिया है।"

"हमारे काफिले जब्त ? क्या उसके धड़ पर दो सिर हैं ?"

"और वे तो यह भी कहते हैं कि समस्त दक्षिणापथ के लिए मदुरा के सुलताने से लेन-देन, व्यापार-व्यवहार रखना राजाज्ञा द्वारा निषिद्ध है। जो कोई राज्यादेश का उल्लंघन करता है, या आप करते हैं तो क्या आप के धड़ पर दो सिर हैं ?"

अब, इस वार्ता में बड़े व्यवहारी स्पष्टतया बीच में पड़े। और कहने लगे—

"गोमती अम्मा! कुछ देर मुझे टोटी से बातचीत करने दें।" और उत्तर की राह न देखकर, बूढ़े ने अपनी बात आगे बढ़ाई—

"राय हरिहर का झंझट तो हम उन से समझ लेंगे। हम तो तुम से तुम्हारी ही बात करना चाहते हैं।"

"जी! मैं भी यही चाहता हूँ।" गोमती की ओर उँगली का इशारा कर, अविवेकपूर्वक उसने कहा—"किंतु हम लोग इस बारे में बात करना ही नहीं चाहते। इस वक्त यह कशा मेरे हाथ में है। यदि इन के हाथ में होता तो ये इस बार भी मुझ पर वार करने में आनाकानी नहीं करतीं।"

"अब इन बातों को जाने दो। तुम तो पालेर कहलाते हो, एक चाबुक कम या ज्यादा! तुम्हें इसकी चिंता ही क्या? अपनी मूल वार्ता में ऐसी साधारण बातें नहीं लानी चाहिए।"

"जी"—टोटी ने कहा—"अब मेरे लिए बात करने जैसा कोई विषय ही नहीं रह गया है।"

"फिर भी ? मैं अकेला ही बातचीत करूँ। इसमें क्या बात का कभी अंत आएगा ? तुम लोग क्या चाहते हो ? यह तो बतलाओ ?"

"समस्त दक्षिणापथ के लिए राय हरिहर ने राय-रेखा अंकित की है—उसके अनुसार उन्होंने राज्य, महाजन, अमलदार, रायस, वणिक और पालेर तक प्रत्येक नागरिक और अधिकारी के लिए उनके अधिकारों और उत्तरदायित्वों की विशद व्याख्या और नियमावली प्रस्तुत है। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि आज से पूर्व के काल में जिसकी लाठी उसकी भैंस—जैसी अवस्था में यदि सनातन परम्परा और पूर्वदाएँ विनष्ट हो गई हैं तो उस अवस्था का आज से अंत हो जाता है! लेन-देन, हिसाव-किताब, जमा-नामा—सब बदल जाएंगे। ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक—सबके अधिकार नए सिरे से अंकित किए गए हैं! और सवके उत्तरदायित्व भी नए सिरे से निश्चित हुए हैं। इसके लिए उन्होंने धर्मशासन भी प्रकाशित किए हैं। समस्त दक्षिणापथ में—तुंगभद्रा नदी के तट से लेकर मनार तक, आज राय-रेखा का शासन है। इस शासन-व्यवस्था को समझाने और स्पष्ट करने के लिए स्वयं राय हरिहर सर्वत्र यात्रा कर रहे हैं।"

बड़े व्यवहारीजी बोले—"हाँ, यह हम जानते हैं। और ब्राह्मण रायस, कुरुम्वा, और किरातों के अधिकारों पर ये राय-रेखा का गोवर लीपना चाहते हैं—यह भी हम जानते हैं। यानी हम तुम्हें परचेरी के अधिकार दे देंगे, अच्छा? होलेयों और पालेरों को हम वीर वणिक हक दे देंगे यों? वीर वणिक किसी लगन या भावना के प्रवाह में बह जाएं—ऐसे नहीं हैं। हम तो मात्र यथार्थ को देखनेवाले और परखनेवाले है। यह समझ रखना! यदि हम होलेयों और पालेरों को अधिकार सौंप दें, तब तो हम व्यापार कर चुके, कर चुके नाना छप्पन देशों का व्यवहार पूरा! सात सागरों का जहाज़ी व्यापार कर चुके! और बंजारों के काफ़िले भेज चुके, फिर तो? ऐसा पागलपन हम कदापि नहीं कर सकते! वीर वणिक जन सब कुछ स्वीकार कर लेंगे परन्तु परचेरी को सदैव अस्वीकार ही करेंगे।"

राह-मार्ग में जब वीर वणिकों का महाजन, वयोवृद्ध, बड़ा व्यवहारी सामने से आता, मिल जाता है तो इदांगी और वालांगी तक रास्ते से हटकर उसे मार्ग देते हैं। स्वयं पृथ्वीसेट्टि भी अपनी गद्दी पर तनिक खिसककर बैठते हैं और उनके लिए रिक्त स्थान बनाते है। बड़ा व्यवहारी तो वीर

वणिकों की आँख और उनके कान !

गोमती के पिता वायीजन के समान शांतप्रकृति व्यक्ति इस दुनिया में दूसरा नहीं हो सकता ! बेलगोला के वनान्तर में स्थित गोमटेश्वर की साठ हाथ ऊँची प्रतिमा, अपने चारों ओर पन्द्रह कोस की परिधि तक शांति, स्वस्थता और सौम्यता का संदेश देती थी ! वायीजन भी उतना ही शांत और स्वस्थ था और स्वयं वायीजन ही कहता था कि बड़ा व्यवहारी तो उनसे भी अधिक शांत है। खुद कालयवन मलिक काफूर ने—जब बेलगोला पर चढ़ाई की थी, तब वायीजन भी उत्तेजित हो उठा था और शस्त्रों से सुसज्ज हुआ था ! लेकिन तब भी बड़े व्यवहारी शांत रहे थे ! खुद मलिक काफूर को जब इन्होंने व्यापार का महत्त्व समझाया था और उसे—मूर्ति-भंजक मलिक काफूर को गोमटेश्वर की प्रतिमा के पास से वापस लौटा दिया था, तब भी बड़े व्यवहारी शांत ही थे !

इसलिए, जब हिमालय के शीतलतम हिम को भी शांति के दो पाठ पढ़ाने में समर्थ बड़े व्यवहारी को परचेरी का नाम सुनकर उत्तेजित होते देखा तो गोमती ने पूछा—"बड़े व्यवहारी जी, परचेरी का क्या मतलब है ?"

"गोमती अम्मा ! ये बात हम बाद में भी कर सकते हैं। इस समय तो इस टोटी से फैसला कर लूँ।"

"जिस आसन पर मैं बैठी हूँ, उस आसन से मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ, बड़े व्यवहारी !" गोमती ने तैश में आकर, कहा।

गोमती की अकुलाहट, उतावली और तेज़ी देखकर, बड़े व्यवहारी ने कहा—तुंगभद्रा के दक्षिण तट से लगाकर, रामेश्वर और कन्याकुमारी तक विजय धर्म राज्य के नाम से एक चक्र शासन की स्थापना के लिए कर्नाटक देश के महामंडलेश्वर पांड्य संघ के साथ में रहकर प्रत्येक काम करते हैं, करेंगे ! वे कहते हैं कि समस्त दक्षिणापथ जब एकचित्त हो जाएगा तभी तुंगभद्रा के उस पार तुर्कों को रोक कर राज किया जा सकता है।"

"लेकिन, इस काम से हम वीरवणिकों का क्या लेना-देना ? हमें तो गोचरी' और 'गोतरी' का व्यापार करना है। हमें तो माल बेचना है और माल खरीदना है। विदेशों को भेजना है और विदेशों से लाना है।

हमें भला, किसी राज्य की स्थापना से क्या लेना-देना ? और तुर्कों को रोकने से हमारा क्या सम्बन्ध ? हम तो अपने घर, न तुर्कों का, न विजय-धर्म और न अन्य किसी का ही शासन चाहते हैं। आसपास के प्रान्तर में व्यवस्थित राज-व्यवस्था स्थापित रहे—इतना ही हम चाहते हैं—हमारे ग्राहक, शांतिपूर्वक जीवन यापन करें, शांति से जिएं, शांति से मरें, आजीवन ससम्मान रह सकें और सम्मान सहित अपने व्यवहार का पालन कर सकें—यही, हमें चाहिए। विजय धर्मराज्य यदि इस चीज़ को देता हो तो अच्छी बात है! और तुर्क यदि इस व्यवस्था के योग्य हों तो अवश्य वे अपनी मनमानी करें—हमारा क्या बिगड़ता है ? हम पर तो दोनों में से एक भी स्नान या सूतक नहीं लगता है! अतएव, राय-रेखा से हमारा क्या रिश्ता ?"

"आप उतावली न कीजिए अम्मा! इस टोटी को यही बात समझाना चाहता था!"

"लेकिन आप किसी परचेरी की चर्चा कर रहे थे, सो वह भी क्या इसी राय-रेखा का पाखंड है ?"

"हाँ अम्मा! यह राघहरिहर किसके पास से पाठ पढकर आया है—यह तो, वही जाने! क्योंकि आज से पूर्व, अतीत काल में किसी ने, किसी देश में, कभी ऐसा कदम नहीं उठाया! वह कहता है कि जिस प्रकार राजा लोग अपने राज्य के लिए लड़ते हैं, जिस प्रकार धर्मगुरु अपने मतमतान्तरों के लिए लड़ते हैं, उसी प्रकार सामान्य जन भीतर ही भीतर अपने अधिकारों के लिए लड़ते हैं—इससे अनैक्य के बीज फूटते हैं, पारस्परिक कलह फैलता है और उस वातावरण के कारण जासूस, गद्दार और देशद्रोही पैदा होते हैं! इस लिए वर्तमान काल में श्रुति, स्मृति और पूर्वदा-परम्परा के अनुरूप नए सिरे से जन समस्त के अधिकारों, उत्तरदायित्वों, रीति-नीतियों का निर्माण करना है!"

गोमती तिरस्कारपूर्वक हँसी—"हम वीर वणिक मूलसंघ के भाविक हैं। फिर भला ये श्रुति और स्मृति क्या बला है ? कहने वाला तो अवश्य पागल है, सुनने वाला भी पागल प्रतीत होता है!"

"देखिये न, इस टोटी को भी, मैं यही बात समझा रहा हूँ—भावजी! कहने वला तो पागल है ही और पागलों की बस्तियाँ ही क्यों न बसी हों, लेकिन तू सुननेवाला भी पागल है! हम वीरवणिकों का आज तक का व्यवहार देख! इसमें कब कौन-सी परचेरी की कि अब तुम लोग अधिकार माँगने के लिए उठ खड़े हुए हो? वीरवणिकों की भी अपनी पूर्वदाएँ हैं। और इन पालेरों को क्या इस बात की खबर है कि अगर वीरवणिकों के अधिकार नष्टभ्रष्ट होंगे तो सारा देश भूखों मर जाएगा। आज तक इतने युद्ध हुए, आज तक इतना संहार हुआ, बरबादी हुई, इतने गाँव जलकर भस्म हुए, इतने इतने सिपाही खेतों को रौंद-रौंद कर चले गए! फिर भी हमने इस मुल्क में अनाज की कमी न आने दी! माल का आवागमन न रुकने दिया। इस कार्यकुशलता के लिए हमारी सराहना तो अलग रही, और हमारी कीर्ति का गुणगान परे रहा; विपरीत इसके—हमसे परचेरी की बात! हमें छेड़ कर बिच्छू को हमलावर बनाकर घर में लाने का काम क्यों करवा रहे हैं?"

"बड़े व्यवहारी! आपने बात बहुत बड़ी बनाई है! कुछ तो लम्बी, कुछ बेकार और कुछ निरर्थक रही आपकी यह बात! उस पर भी परचेरी की बात तो आपने की ही नही! परचेरी क्या चीज़ है—अम्मा यह जानना चाहती हैं। शेष बातों के आक्रोश में आप परचेरी की व्याख्या तो भूल ही गए। अब आप यह निश्चित जान लेना कि बिना परचेरी के कोई होलेय या पालेर कदापि आपका काम नहीं करेगा।"

इस वार्तालाप में, गोमती को हस्तक्षेप करने को तत्पर देखकर बड़े व्यवहारीजी ने गोमती से कहा—"इस परचेरी का तात्पर्य है: ये सब होलेय और पालेर हमारे होलिय और पालेर हैं भी सही और नहीं भी है!"

"यह तो स्याद्वाद-जैसी बात है: 'है और नहीं' और 'है और है'... और 'नहीं और है'...ऐसी बात! होलेय और पालेर हमारे यानी हमारे ही हैं! हम इनके श्रेष्ठि और ये हमारे पालेर—तो पालेर ही हैं! अथवा, ये पालेर हैं ही नहीं। और यदि हैं तो अवश्य हमारे पालेर हैं! इसमें गड़बड़ी की क्या जरूरत है? मुझे इस विषय में गड़बड़ पसंद नहीं।"

गोमती ने कहा—

"एक बार आप मुझे, इसका स्पष्टीकरण कर, समझा दीजिए। फिर मैं इस टोटी को जवाब देती हूँ!"

"परन्तु अम्मा! मैं और टोटी निराँत से परस्पर बात कर लेंगे, व्यर्थ ही आप कष्ट न उठाइए।"

"नहीं! और मेरी नहीं—यानी नहीं ही! उसे बदलकर 'हाँ' पृथ्वीसेट्ठि भी नहीं करवा सकता! एकबार आप मुझे परचेरी का प्रपंच समझा दीजिए।"

"जी! परचेरी का अर्थ है होलेय और पालेर के अधिकार। हम इन्हें पालेर के रूप में अवश्य रख सकते हैं, परन्तु ये पालेर हमारे नहीं, राय-रेखा के माने जाएंगे। राय-रेखा इन्हें एक वर्ष के लिए हमें उधार देती है।"

"अच्छा जी, हमारे ही पालेर राज्य हमें 'उधार' देता है? वाह! यह तो कुछ विशेष प्रकार का विजय धर्मराज्य है!"

"जी! प्रत्येक वर्ष नवरात्रि के नौ दिनों में प्रतिपदा के दिवस पर हमारे पालेरों और हमारे बीच में—सेट्ठि और पालेर के सम्बंध पूरे होते हैं। नवरात्रि के नौ दिनों में ये कहीं, किसी का कोई काम न करेंगे। इतने दिन, आनन्दोल्लास में व्यतीत करेंगे। महानवमी के दिन ये पालेर पुनः लौट कर आएंगे और तब हमारे और इनके बीच राज्य का हस्तक्षेप हो, तभी आएंगे।"

और इस हस्तक्षेप व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य हमें कौन-सी जमानत देता है?"

"राज्य हमें जमानत नहीं देता है। उल्टे हमें राज्य को जमानत देनी पड़ेगी।"

"अच्छा! माल भी हमारा और जमानत भी हमारी?"

"जी हाँ! जमानत यों कि जो कोई वीर वणिक, कुरुम्बा, देवांग, बनाजा या बेहारुलु यदि किसी होलेय या पालेर को रखता है—तो, उस होलेय या पालेर को रहने का स्थान हमें देना पड़ेगा। उसके बाल-बच्चों का प्रबंध भी हमें ही करना पड़ेगा, परंतु उन पर हमारा किसी किस्म का कोई अधिकार नहीं रहेगा। फिर, न तो उनके बच्चों को हम बेच ही सकेंगे या न

ही पति को पत्नी से या पत्नी को पति से जुदा ही कर सकेंगे ! हम अपने पालेर को कदापि बेच न सकेंगे !"

"यानी ! माल हमारा पर हम उसे बेच न सकेंगे, यही न ?"

"जी यही ! कपड़े को ये पालेर क्या करेंगे, जो सिर्फ़ एक लँगोटी पहनते हैं, उन्हें कपड़े से क्या मतलब ?"

"और पालेरों को ऋतु-ऋतु के अनुसार कपड़े पहनाने का खर्च हमारे सिर पर रहेगा !"

"एसी रईसी चाहिए तो भला पालेर क्यों बनते हैं ये लोग ? और उनके नसीब में सुख लिखा होता तो विधाता इन्हें पालेर के रूप में जन्म क्यों देता, किसी वीर वणिक के घर में जन्म नहीं देता !"

"अभी तनिक सुनिए ! सुनने ही बैठी हैं आप तो पूरी-पूरी बात सुन लीजिए ! सेट्ठि यदि किसी पालेर पर अत्याचार करता हो, परचेरी के नियमों का पालन न करता हो, तो पालेर अपने क्षेत्र के महाजन से शिकायत कर सकता है।"

"पालेरों का भी महाजन ? कौन है वह ? कहाँ है वह ?"

"कुंभकार सेट्ठि—पालेरों का महाजन ! और उसके निर्णय वीरवणिकों को मानने पड़ेंगे।"

"तो, क्या राय हरिहर यह समझते हैं कि वीर वणिक अपने हाथों में चूड़ियाँ पहन कर बैठे हैं ? और क्या वे इतने गये-गुज़रे हैं कि अपने और अपने पालेर के बीच एक कुम्भकार को निर्णायक बनने देंगे ?"

"जी ! राय हरिहर अपने धर्मादेश में यही हुक्म फरमाते हैं। गाँव-गाँव और बस्ती के बाहर—जहाँ जहाँ राय हरिहर जाते हैं, इन धर्मादेशों और आज्ञाओं को शिलाओं पर खुदवाकर प्रत्येक गाँव और बस्ती में लगवा देते हैं !"

"यानी ?"

"जी ! अंतिम एक बात परचेरी की रह गई, उसे भी समझ लीजिए ! नवरात्रि के प्रथम दिवस पर जब पालेर को उसका सेट्ठि मुक्त करता है, तब उसके लिए आवश्यक है कि पालेर को साल भर की मज़दूरी एक मुश्त उसके

हाथ में सौंप दे।"

"ब्राह्मणों या रायसों में यदि व्यापारियों की वृद्धि उपजती होती, तो वीरवणिकों को तो 'भिक्षां देहि' के लिए निकल जाना पड़ता! यदि वैसी होती तो भीख का धंधा ब्राह्मणों के लिए रहने ही क्यों दिया जाता?"—गोमती टोटी की ओर दो क़दम आगे बढ़कर बोली—"परचेरी क्या चीज़ है, यह हमने सुन लिया! जाओ, वीर वणिकों को वह स्वीकार नहीं है।"

"अच्छा है। तब मुझे आज्ञा दीजिए, मैं चलता हूँ।" टोटी ने पूर्ववत् शांति से कहा।

"भावजी, तुम किस चक्कर में पड़ते हो?" बड़ा व्यवहारी हंसकर कहने लगा—"परचेरी-वरचेरी कुछ नहीं। राय-रेखा का यह बखेड़ा तो हम राय हरिहर से निपट लेंगे। वीर वणिकों के होलेय और पालेर अब सब काम पर लग जाने चाहिए! तब तुम्हें परचेरी तो क्या, परचेरी से भी ज़्यादा मिल जाएगा। सब सबकी सुनें! तुम अपनी बात और अपना काम सँभालो! इन वीर वणिकों के उन होलेय और पालेरों को तुम जाकर समझाओ और अगर वे काम पर चले जाएंगे तो हम तुम्हें सोने के एक लाख वराह नक़द देंगे। अधिक तो क्या एक जहाज़ भी दे देंगे। चले जाओ चीन और करो, एक, दो, तीन सफ़र! इसके बाद, हमारे बीच हमारे जैसे बन कर रहना चाहें तो वैसा करेंगे! अथवा कहीं दूर निकल जाना और सूत के तीन धागे पहन कर ब्राह्मण बनकर बैठ जाना अथवा रायस बन कर आसन लगा बैठना। सोने के वराह के पाँच-सात लाख के स्वामी और आसामी को कोई यह कहने के लिए नहीं जाता कि तू शूद्र है या पालेर है या नीच है! लक्ष्मी का मूल्य और लक्ष्मीपति का कुल दोनों देखने-परखने की किसी को फ़ुर्सत नहीं है!" बड़े व्यवहारी ने टोटी के लिए सीधा प्रस्ताव रक्खा!

टोटी बोला—"बड़े व्यवहारी जी! मैं जाति का शूद्र हूँ। इसलिए सम्भव हैं मुझमें बारीक दृष्टि न हो। लेकिन....आप....आपने क्या आज तक के अपने व्यवहार में किसी आदमी को नहीं देखा? रात दिन सोने में रहते हैं तो क्या आपकी बुद्धि भी स्वर्णमय हो गई है?"

"अर्थात्?"

"सेट्ठि ! जिस प्रकार सोने के बीच रहकर आप सभी वस्तुओं और प्राणियों को सोने से ही नापते हैं, उसी प्रकार मैं समस्त पदार्थों और प्राणियों को मनुष्यता की दृष्टि से देखता हूँ। मैं यदि अपने भाई-बहनों से दग़ा करूँ तो मेरे रोम-रोम में कीड़े पड़ें और मरने पर रौरव नरक में भी मुझे जगह न मिले !"

"गोमती के अधर तिरस्कार में मुड़े—"वाह अब तो यह पालेर भी रोम-रोम में कीड़े पड़ने और परलोक की बात करते सीख गया ! अरे, तुम्हारा यह लोक-परलोक-भगवान् तुम्हारे ये सेट्ठिजन ही हैं !"

"इससे तो अच्छा है राय हरिहर की सेवा में ही भर्ती हो जाएँ ! समस्त देश में वे सैनिकों की भर्ती कर रहे हैं ! जिन होलेय और पालेरों को उनके श्रेष्ठि परचेरी के अधिकारों से वंचित रख रहे हैं, उन्हें वे अपने यहाँ भर्ती करने को तैयार हैं और 'दोरंगी' के रूप में उन्हें 'दोरंगी' के समस्त अधिकार देना चाहते हैं।"

"यह राय हरिहर..." गोमती ने दाँत पीसकर कहा—"एक बार अगर मेरे सामने आ जाए...सिर्फ़ एक बार...हमारी परम्परा के अधिकारों को काटने वाला यह है कौन ? कर्नाटक के महामंडलेश्वर को यहाँ कौन जानता है ? हमारी सामाजिक जीवन-प्रणाली, हमारे व्यापार-व्यवहार की प्रणाली...उसे...उसे...किंतु वह है कौन ?"

गोमती के रोषमय उदगारों के उत्तर में टोटी ने कहा—वह कर्नाटक का महामंडलेश्वर नहीं गोमती अम्मा ! वह तो विजयधर्म राज्य का महा-मडलेश्वर है। उसने राय-रेखा का धर्मादेश दिया है। उसने हम होलेय और पालेर लोगों को ढोर से मनुष्य बना दिया है और हमें परचेरी का वरदान दिया है ! उसने चारों समयों को एक सूत्र में बाँधकर उन पर राजगुरु का छत्र धरा है। राज्य के समस्त अमरदारों, दुर्गपालों, रायसों, अग्रहारों, ब्राह्मणों और नायकों को उसने राय-रेखा के सूत्र में आबद्ध कर लिया है। अपने आप को नियमों के सेवक के रूप में पेश किया है। और राय-रेखा को राजसत्ता, धर्मगुरु, महाजन, पृथ्वीसेट्ठि, कुंभकार सेट्ठि आदि पर प्रतिष्ठित किया है ! और उसने—गोमती अम्मा, उसने तुरुष्कों से

व्यापार करने के अधिकार पर कड़ा प्रतिबंध लगाया है। मदुरा के सुल्तान के साथ होनेवाले तुम्हारे समग्र व्यपार को जब्त कर लिया है और बन्जारों को रोक दिया है और सवत्र जब्तियों का दौर-दौरा शुरु किया है। आप पूछती हैं न कि राय हरिहर कौन है ? तो मैं आपको बतलाता हूँ कि राय-हरिहर ये हैं !"

"बस करें !" गोमती का स्वर उसके हृदय की अतल गहराई में से उफनाते हुए रोष के कारण फट गया—"बस करें ! बड़े व्यवहारी ! इस टोटी को अभी फौरन गिरफ्तार कर लीजिए ! और सेनानायक से कहिए कि वीरवणिकों की बकध्वज सेना को सुसज्जित करे। उस सेना के आगे रहकर मैं स्वयं उस रायहरिहर का पानी देखने जाऊँगी। मुझे प्रतीत होता हैं कि इस धरती पर या तो उसके लिए, या मेरे लिए—दोनों में से सिर्फ़ एक के लिए ही स्थान है। हम दोनों के लिए एक साथ स्थान नहीं है !"

"गोमती अम्मा !"

"अब बस कीजिए बड़े व्यवहारी जी ! मैंने आपकी बहुत सुनी ! और इस टोटी से, इस नीच पालेर से बहुत सुना ! अब मैं किसी से कुछ सुनना नहीं चाहती ! अरहंत की उपासना में आसक्त अपने पिता के—पृथ्वीसेट्ठि के आसन पर मैं प्रतिष्ठित हूँ और जब तक स्थित हूँ तब तक किसी रायरेखा या किसी राय हरिहर के सामने झुकूँगी नहीं !"

बाहर से एक लड़की आई। उसे देखकर गोमती ने कहा—"क्यों सावनी !"

"गोमती अम्मा ! बाहर स्वयं राय हरिहर पधारे हैं और आपसे मिलना चाहते हैं !"

: ६ :

मोहलत

गोमती इस तरह स्तब्ध रह गई मानो ऐसा धृष्ट संदेश आज से पहले कभी उसके कान में न पड़ा था ! दूसरे सब लोग भी स्तब्ध रह गए।

उत्तरी भारत में लगभग दो सौ वर्षों से तुर्कों के आक्रमण हो रहे थे। और अब तो वे वहाँ सर्वस्वामी बन कर बैठे थे। दक्षिण में भी चालीस-पचास सालों से उनके काले-गहरे साए जब तब पड़ते थे। अति भयंकर कलियुगी कालयवन हमलावर बनकर आया था। और वह अपने पीछे राख के रूप में गाँवों और कस्बों और भस्म के रूप में देव-स्थानों को छोड़ गया था ! युग-युगान्तरों के राजवंशों और राजतंत्रों को नष्ट-भ्रष्ट कर वह चला गया था। उसके बनाए खंडहरों में उल्लू बोल रहे थे !

परन्तु युग-युगों से वीर वणिकों की एक पूर्वदा अखण्ड रही थी। क्या उत्तर, क्या पश्चिम, क्या पूर्व और क्या दक्षिण–किसी भी दिशा में किसी ने आज तक वीर वणिकों के नाना छप्पन देशों में व्यापारिक काफ़िले भेजने के अधिकार पर आँख तक न उठाई थी। तुरुष्कों ने किसी राज्य पर हमला किया हो, गाँव जला दिए हों, बस्ती को लूटा हो, देवों के देवमंदिर, ब्राह्मणों के अग्रहार और राजाओं के राजमहलों के खंडहर बना दिये हों, तब भी किसी तुरुष्क सुलतान ने या किसी तुरुष्क सिपहसालार ने, किसी भी तुरुष्क अमीर ने अथवा तुरुष्क मलिक ने––किसी ने कहीं भी वीरवणिकों के नाना छप्पन देशों में जाने-आनेवाले काफ़िलों को नहीं रोका था, नहीं लूटा था !

दक्षिण में सप्तसामंत-चक्र-चूड़ामणि बनने के प्रलोभन अनेक राजाओं

के मन में थे। और उसके लिए, भीतर-ही-भीतर वे भयंकर जुनून से संगरों और संग्रामों में लड़े थे! तुर्कों को भी लज्जित करनेवाली उनकी खूनी लड़ाइयाँ और रक्तरंजित नीतियाँ देश और समाज की छाती पर चढ़ी थीं, किंतु चक्रवर्ती पद के उन लोलुपों ने भी कभी वीर वणिकों के व्यवहार पर डाका न डाला था!

सैकड़ों सालों की ऐसी अखण्ड पूर्व परम्परा पर पहला पैर रखनेवाला था—राय हरिहर! और वही, आज द्वार बाहर खड़ा था! और भीतर आने के लिए संदेश भेज रहा था।

"हमें उसे खोजने के लिए न जाना पड़ा! स्वयं ही वह आगे बढ़कर मरने के लिए आया है।"—गोमती ने कठोर स्वर में कहा—"उसे भीतर आने दो।"

सावनी गई।

उसके जाने पर टोटी ने कहा—"गोमती अम्मा, एक बात जान लेना! होलेयों और पालेरों की तरफ़ से मैं आपसे साफ़-साफ़ कह देता हूँ कि राय हरिहर का एक बाल भी बाँका हुआ तो हम लोग वीरवणिकों से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न रखेंगे।"

"मत घबरा टोटी! ज़रा तू घबरा! गोमती ने एक-एक अक्षर का अलग अलग उच्चारण किया! यह विश्वास रख कि किसी भी प्रकार के सम्बन्ध के बिना भी अपने होलेयों और पालेरों को सँभाल कर रखना हमें आता है। इसमें हम किसी का हस्तक्षेप पसंद नहीं करते! यह याद रखना!"

गोमती का रुद्र स्वरूप, उसकी कर्कश वाणी, उसके चेहरे पर चढ़ा हुआ सिंदूरवर्णी खूनी तेज़—देखकर, बड़े व्यवहारी ने अत्यन्त आग्रह-पूर्वक कहा—

"गोमती अम्मा! आप समझदार हैं, उतावली मत करना। बेचैनी न बतलाना!"

"आप निश्चित रहिए बड़े व्यवहारीजी! मैं राय हरिहर से हिसाब लूँगी! वीरवणिकों की जो अवहेलना उसने की है, व्याज सहित उसका

बदला लूँगी, लेकिन ठंडे लहू से।"

टोटी ने धीमे स्वर में कहा—"इसकी आप चिंता न करें सेट्ठि। और आप भी फिक्र न करें बड़े व्यवहारीजी! स्वयं राय हरिहर अत्यन्त शान्त व्यक्ति हैं। वे किसी महिला से झगडेंगे नहीं!"

"तू चुप रह!" मानो गोमती की आँख और कंठ फट चला—"तू ही इन सभी काले कारनामों का कारण है। तेरा चुकारा मैं करूँगी। यह न मान लेना कि मैं तुम्हें जाने दूँगी।"

अचानक गोमती को विचार आया कि वह एक अनार्य और एक दस्यु, एक होलेय और एक ग़ुलाम से बात कर रही है—उसे लगा कि उसकी बात में स्वल्प विनय आ गया था, इसलिए पिछला बुद्धि के पछतावे के समान उसने धार के लिए घिसी जाने वाली तलवार की आवाज़ के अनुरूप कहा—"तू...तू....एक कमजात होलेय...हमारी जूठन से पला हुआ! टोटी.... एक होलेय....तेरा हिसाब...मैं चुकाऊँगी....मत घबरा।"

"राय हरिहर से भी आप इसी तरह शांति से बात करेंगी यह जानकर मुझे अत्यधिक आनन्द होता है। क्योंकि राय हरिहर से सबकी शिकायत यही है कि वे कभी अकुलाते नहीं, कभी अशान्त नहीं होते! वे परम गंभीर हैं। कहते हैं उनके नवयुवा मस्तिष्क पर अघोर तपस्वी विद्याशंकर महाराज के करकमल की छाया रही है! मुझे ऐसा दीखता है, आज उसकी कसौटी है।...और मेरा हिसाब...उसकी आप चिंता न करना, मैं भी उसकी, ब्याज सहित वसूली के लिए आया हूँ सेट्ठि!"

गोमती का सिर फटने लगा।

खास अरब सौदागरों के द्वारा अंध देश के अगाध सरोवरों के काल कीचड़ से पकड़े हुए मगरमच्छ की पूँछ का काँटेदार कशा—जिसे टोटी ने उसके हाथ से छीनकर वापस लौटा दिया था, उसने अपने हाथ में उठा लिया!

और बाघिन जिस तरह उछलती है, उस तरह उछलकर उसने टोटी के कंधे पर कशा का कराल कठोर प्रहार किया!

प्रहार तो किया, किंतु, कशा अधबीच ही थम गई।

क्षरण भर के लिए गोमती स्तब्ध बनकर, देखती रह गई कि कशा यह दूसरे किसी के हाथ पर पडा था ! और उस हाथ के वस्त्राच्छादित आवरण को छेदकर उसे रक्तरंजित कर के ही लौटा था !

गोमती उस हाथ को देखती रह गई ! जिस जगह कशा का वार हुआ था, उस जगह से बह-बहकर रक्त-प्रवाह वस्त्रों को लाल रंग से रंग रहा था ! यह था सेठ का कशा, एक होलेय पर जो चलाया गया था । सामान्य-तया, बराबरी के किसी व्यक्ति पर कभी इसका प्रयोग न किया गया था ! बेलगोला के मणिग्राम में नागाहूत नामक एक सेट्ठि था, कहते हैं, वह अपने गुलाम को औंधा सुलाकर उसकी पीठ पर शतरंज खेलता ! और आज गोमती इस नागाहूत को भी पीछे छोड़ जाना चाहती थी ! इस प्रकार की भूख उसमें जागृत हुई थी !

लाल-लाल बनने वाले उस वस्त्र-विशेप में से, टप् टप् कर, रक्तबिंदु नीचे टपकने लगे ! टोटी दौड़ा, तनिक परे सावनी खड़ी थी, और यह सब देखती-सुनती खड़ी थी ! टोटी ने उसके स्कंध से एक झटके में आँचल खींच लिया और पट्टी फाड़ ली । चौंकी हुई सावनी अपने सेट्ठिजनों के सम्मुख अपने-आप को वस्त्र-विहीन होती देखकर, अपने पल्लव को दोनों हाथों से पकड़कर, खड़ी रही ! और टोटी के एक झटके से, फटता हुआ चीनाम्बर चरमराहट के साथ चीर दिया गया !-और वस्त्रांश से उसने व्रण के घाव पर, कसकर पट्टी बाँध दी ।

चीरा हुआ चीनाम्बर चरचराहट के साथ फटा तो, सब का ध्यान उस ओर आकर्पित हुआ । और मानो मोह की मूर्च्छना से जगी हो, उस तरह गोमती, घायल हाथ वाले व्यक्ति को नख से शिखा तक देखती रह गई !

साफ़ सीधा नौजवान था वह ! आयु पच्चीस या अट्ठाईस से ज़्यादा न थी । परंतु मानो बड़ी थकान के कारण इस स्वल्प वय में ही उसके चेहरे पर दो एक झुर्रियाँ पड गई थीं ! थकान सब को निस्तेज, चेतन और रंक बना देती है । किसी विरल व्यक्ति को ही वह गौरव और तेज़ प्रदान करती है । और टोटी पर किए गए प्रहार को अपनी हथेली पर झेलने वाला नौजवान ऐसी ही विरल विभूतियों में से एक था ।

पैर से सिर तक, उसने सादे वस्त्र धारण किए थे ! और ये वस्त्र किसी ब्राह्मण या रायस, किसी नायक अथवा वणिक के वस्त्र नहीं थे। ये तो दक्षिण के बाहर तीर्थों की यात्रा करने वाले यात्री के वस्त्र थे ! उसके सिर पर पगड़ी जैसा शिरस्त्राण था, शरीर पर टखनों तक पहुँचने वाला चोगा था और पदत्राण था—यह परिवेश क्या था, मानो मूलसंघ के किसी यति, मानो भागवतों के किसी पौराणिक, मानो शैवों के किसी नायंवार अथवा जंगमों के किसी भूरुद्र का वेश था ! व्यक्ति यह संसारी के बजाय साधु-जैसा लगता था ! और इसका वेश सचमुच ही साधुओं का परिवेश ही है—ऐसे भ्रम की पुष्टि करने वाला एक दंड भी इसके हाथ में था ! इसके अतिरिक्त दूसरा कोई अस्त्र या शस्त्र, उसके हाथों में अथवा उसकी कटि पर नहीं बँधा था !

और न यह परिवेश किसी भिक्षु अथवा व्यापारी का ही प्रतीत होता था, न संसार-त्यागी साधु का ही लगता था ! सादे परिवेश में भी व्यक्ति यह उच्चाधिकारी लग रहा था और इसकी पुष्टि उसकी पगड़ी की मुद्रा से होती थी !

वीरवणिकों का बेटा या बेटी बचपन ही से जवाहरात का पारखी होता है। और इस मुद्रा के ठीक मध्य में, किसी स्वस्थ आदमी के लहू-सा लाल-लाल एक माणिक था और माणिक वह कम से कम, सोने के पाँच हजार वराह से कम मूल्य का नहीं था ! दूर से कम से कम सवा सौ गुंजा के वज़न का प्रतीत होनेवाला यह माणिक अवश्य धरतीतल पर विरल था ! और गोमती तो, अन्ततया वीरवणिकों की बेटी ! इस भीषण रोष की उत्तेजना के बीच में भी उसने सोचा कि यदि यह आगंतुक इस माणिक को बेचे तो वह पांच क्या, सात हज़ार वराह देकर भी, उसे खरीद ले !

ऐसे इस महामूल्यवान माणिक के चारों ओर सफ़ेद हीरों की किनारी थी ! इस समस्त किनारी का प्रत्येक हीरा शुक्र तारे के समान नीले रंग का था ! उसे देखकर गोमती ने सोचा कि कम से कम दस हज़ार वराह के मूल्य की अपनी मुद्रा धारण कर घूमने वाला यह व्यक्ति याचक तो नहीं है। यों तो यह राज्य का दण्डनायक, या सामुराय, या महामंडलेश्वर....!

और गोमती को लगा कि दूसरी पहचान की जरूरत नहीं है। यह मूल्यवंत मुद्रा ही पहचान थी !...

यह स्वयं राय हरिहर था। गोमती के विचार में ऐसी मुद्रा पहनने का अधिकार रखनेवाला, उससे अधिक ऊँचा अधिकारी दूसरा न था ! राजा वीर बल्लाल द्वारा कर्नाटक का राज्यसिंहासन दान में दिए जाने के बाद, कर्नाटक के राजा के रूप में मान्य विद्याशंकर महाराज के विजयधर्म राज्य का यह महामंडलेश्वर था !

अपने हाथ पर जब तक टोटी ने पट्टी न बाँध दी, तब तक रायस स्वस्थ शांत खड़ा रहा ! फिर हँसकर बोला—"बहन ! भाई को बुलाकर सत्कार क्या इसी भांति किया जाता है ?"

किंतु यह हँसी की माधुरी से पूर्ण शान्त और स्वस्थ स्वर गोमती को अधिक उत्तेजनापूर्ण प्रतीत हुआ ! बोली—

"बहन !...बहन !...मुझे....मुझे...आप बहन कहते हैं !....और ऐसा ही भाईचारा प्रदर्शित करते हैं ?" गोमती ने कठिनाई से दबाए गए अपने रोष पर अकुंश रखते हुए टोटी की ओर उँगली उठाई—

रायहरिहर ने टोटी से कहा—"बस भावजी ! घाव तो लगते ही रहते हैं ! ये सब तो मनुष्य के भाग्य में जन्म से ही लिखा-आता है ! इसकी अधिक चिंता करना व्यर्थ है ! लेकिन आप की मेहरबानी !"

अग्नि में घी पड़ने पर अग्नि जिस तरह धधक उठती है, उस तरह गोमती का मिजाज़ आपे से बाहर हो जाए, उससे पूर्व ही बड़े व्यवहारी जी ने हस्तक्षेप किया।

वीरवणिकों की हज़ार साल की परम्परा में किसी बड़े व्यवहारी को आज-जैसी कठिन परिस्थिति का सामना न करना पड़ा था !

वीरवणिक अपने समस्त राज्य-व्यवहार और लोक-व्यवहार के दैनिक संचालन के लिए प्रति वर्ष पृथ्वीसेट्टि का निर्वाचन करते ! और निर्वाचनोपरान्त अपने कंधे पर पृथ्वीसेट्टि की पालकी उठाकर सारे बोलगोला में उसका जुलूस निकालते ! तथापि सहस्र वर्षीय परम्परा में जब पृथ्वीसेट्टि के सामने सचमुच वक्र गुत्थी प्रस्तुत हुई थी, तभी पृथ्वीसेट्टि सब कुछ तज-

कर, चैत्य में बैठा अरहंत की उपासना कर रहा था !

और जिस आसन पर बैठकर पृथ्वीसेट्ठि ने कलभ्र, पुलकेशी, सातवाहन, पांड्य, चोल और चालुक्य नरेन्द्रों से वार्तालाप किया था; जिस आसन पर बैठकर पृथ्वीसेट्ठियों ने मलाया, बाली, पाताल, मलागासा के सागर पार के राजाओं से संधियाँ की थीं और युद्ध भी किए थे; जिस आसन पर बैठकर पृथ्वीसेट्ठियों ने कलियुग के कालयवन को अपना मित्र बना लिया था और मदुरा के सुलतान को व्यापारिक रीति-नीति सिखलाई थी—उस आसन पर, एक वयोवृद्ध सेठ के बजाय इस समय एक बाला बैठी थी—अपने पृथ्वीसेट्ठि पिता के दत्ताधिकार के फलस्वरूप !

हज़ार साल की परम्परा में आज से पहले किसी देशी या विदेशी राज-सत्ता ने बाधा उपस्थित न की थी कि वीरवणिकों का मुक्त व्यापार, और जहाज़-कमाने के अधिकार का कभी विरोध नहीं किया था। खुद कलियुग के कालयवन ने अथवा भयंकर संहारप्रेमी कलभ्रों ने भी वीरवणिकों के मुक्त व्यापार में रुकावट नहीं डाली थी।

सभी एक ही बात समझते थे : प्रत्येक गाँव के लोगों को खाने-पीने की सामग्री नियमित रूप से मिलती रहे, व्यापार-व्यवहार चलता रहे, तभी ही भावी लूट की राह निर्भय रहती है। कमाने वाले व्यक्ति यदि कमाते रहें तब ही धन-संचय हो सकता है और तभी ही लूट-मार की जा सकती है।

आज तक वीरवणिकों को ऐसी चुनौती किसी न दी थी। राजा आपस में लड़ें-झगड़ें, देशी-विदेशी झगड़ें, तो उनकी लड़ाइयों में वीरवणिक दोनों दलों को सामान-सरंजाम बेचें यह बहुत ही स्वाभाविक माना जाता। बनजारों को देवांग समझा जाता है, इनके शरीर या माल को कोई लुटेरा स्पर्श न करता था।

इस परम्परा को विनष्ट देखकर और विनष्ट करने वाले को अपने समक्ष खड़े देखकर गोमती का मिजाज़ तेज हो गया। गोमती इस पूर्वंदा के एक ओर खड़ी थी—हाथ में उसके चाबुक था, पूर्वंदा के दूसरी ओर रायहरिहर खड़ा था—जिसने हाथ पर चाबुक झेल लिया था। एक ओर हज़ार वर्षों की परम्परा अचल पत्थर के समान अचल थी, दूसरी ओर इस परम्परा को

बहाकर ले जाने वाली भयकर बाढ थी ! इन दोनो के बीच वडा व्यवहारी खडा था। उसके लिए परिस्थिति अननुभूत थी। अत्यधिक याद करने के पश्चात् भी कोई ऐसा उदाहरण नही मिल रहा था जो ऐसे सयोगो में मदद कर सके कि क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए।

परतु [illegible] यदि उग्र स्वभाव रखे तो चल नही सकता। व्यापारी का बेटा मूल को कभी न खोएगा किन्तु बाद की चीजो मे तो वह उतनी अधिक रियायत कर देगा जितनी ग्राहक माँगेगा।

अतः उसने कहा . "आओ, बैठो ! अरे सावनी ! सावनी ! कहाँ गई सावनी ? सावनी !...सावनी !...अतिथियो के लिए जलपान तो ले आ, ताबूल भी ले आ !"

गोमती होठ काटते हुए देखती रही, सुनती रही। उसका जी चाहता था कि चाबुक-चाबुक से राय हरिहर की खाल उतार ले। परन्तु...अतिथि-धर्म भी तो आवश्यक है ! वडे व्यवहारी भी, अपनी आयु के अनुसार आदर के अधिकारी थे।

"रायहरिहर ने वडे व्यवहारी को नमस्कार किया, ओर उनके बतलाए आसन पर बैठते हुए कहा :

"हमारे बीच गलतफहमी न फैल जाए इसलिए सोचा कि मैं वेलगोला आऊँ ! भगवान् गोमटेश्वर के दर्शन कर पावन हो जाऊँ और अपनी बात आपको स्पष्ट कहूँ।"

"तुम्हारी बात......तुम्हारी बात".......गोमती से चुप न रहा गया, "तुम्हारी बात,. तुम्हारी बात तो हमने तभी सुन ली, जब इस नीच होलेय को याद किया !" और गोमती ने रोषपूर्वक काँपती अगुली से टोटी की ओर इशारा किया।

"आप स्वस्थ हो बहन ! आप बेचैन हो जायगी तो हमारी बात कैसे समझेगी ? मैंने सुना है कि पृथ्वीसेट्टि का आसन माता वसुन्धरा के समान क्षमाशील है। क्या आप थोडी देर के लिए मुझे क्षमा के दर्शन नही कराएँगी ?"

"तुम मुझे बहन कह रह हो, ठीक है न ? परन्तु जो बहन का माल लूट ले, ऐसे भाई हो। पृथ्वीसेट्टि का आसन क्षमाशील अवश्य है, परतु

वह वीरो के लफंगे— लुटेरे के सामने नही !"

कर्नाटक राज्य ऐसा-वैसा नही था। जहाँ से गोमटेश्वर प्रतिमा के दर्शन बन्द हुए थे वहाँ से तुगभद्रा तक उसका विस्तार था। वीरवणिक अपने व्यापार-विस्तार की परिधि मे जिन—नाना छप्पन देशो को मानते है उन्ही के बीच का है कुतल देश।

तुगभद्रा के पार, वारंगल को बीच मे रखनेवाला प्रदेश था तेलुगु। और तेलुगु के समीप ही पुराण-प्रसिद्ध दडकारण्य के अवशेष रूप मे किरातप्रदेश था। तेलुगु से पूर्व समुद्र के तट तक और पूर्वी घाट के पहाडो तक फैला हुआ पाडचसघ था, चेरप्रदेश था, तोजडाई मडल था। और चंद्रगुट्टी, उदयगिरि, तिरुपति, एन्जी, मयलापुर, शिवकाची, सोमपाटन, अरुणाचल-जैसे अठारह दुर्ग थे। और ये सब किसी तपस्वी साधु के कमडल मे एकत्र हुए थे। और इन एकत्र हुए राज्यो के साम्राज्य का—विजयधर्म राज्य का—यह था महामण्डलेश्वर।

और महामण्डलेश्वर को, राजाओ को, रायसो को लूटने का अनादि काल से अधिकार था ! चोर, लुटेरे लूटे तो लूट कहलाती है। रायस और महामण्डलेश्वर लूटे तो विजय कहलाती है अथवा राजनीति !

अतः बडे व्यवहारी को लगा कि कुतल, तेलुगु, तामिल राज्यसघ के महामण्डलेश्वर को पीछे से तो ठीक, यदि सामने ही लुटेरे कहा जाए तो वीर वणिको के युग-युग से प्रसिद्ध सौजन्य का भग होता है।

और एक दूसरी बात गोमती अम्मा की समझ मे नही आती थी, यह खेद की ही बात थी। वीरवणिको के लिए बजारो के मुक्त व्यापार से भी अधिक कठिन प्रश्न था—होलेयो का। यदि ये लोग मजदूरी करने से इकार करे तो.. तो बेलगोला मे श्रमिको का प्रश्न कितना उलझ जाय ?....तो भंडार कौन भरे ?....तो जहाजो का सचार कौन करे ?... तो फिर सामान और माल कौन ढोए ?... तब काफिलो को कौन ले जाए ?....तब सेना के सिपाही कहाँ से लाए जाए ? हजारों वर्षोतक इस बात का किसी ने विचार भी न किया था। परन्तु जब आज सोचने-समझने का वक्त आया तो बड़े व्यवहारी को लगा कि वीरवणिको के सातसागर की और नाना छप्पन देशों

की पूरी जमावट होलियो की मजदूरी पर निर्भर है। यदि नींव के इस पत्थर को हटा दिया या हिला दिया जाय तो गगनचुम्बी भवन भी धूलि-धूसरित हो जाएगा।

अतिम माह की ही बात करो, न! होलैय परचेरी माग रहे थे। पशुओं की तरह उन्हे पीटने पर भी वे काम करने में इन्कार करते थे।...

बड़े व्यवहारी की दृष्टि मे गोमती भान भूल रही थी, वीरवणिको के सामने जो प्रश्न था वह राय हरिहर का नही परन्तु टोटी का था। सचमुच में तो राय हरिहर को बात मे फँसाकर टोटी को वश मे करना चाहिए। नही तो वीरवणिको की ऋद्धि, सिद्धि, समृद्धि के भडार मे नीचे मे छेद पड जाएगे और फिर तो कुबेर के भाडारी भी उस हानि की पूर्ति न कर सकेंगे।

बडे व्यवहारी ने गोमती के सामने देखकर, उस पर अपनी उम्र, अपने अनुभव, गोमती के अनुभवी पिता का अपने मे विश्वास, इन सभी की छाप डालते हुए कहा—

"बहन! आप बेचैन न होवे। जल्दीबाजी करने मे दुनिया मे आज तक किसी बात का निर्णय नही निकला है और आज भी नहीं निकलेगा।"

बात करते-करते बड़े व्यवहारी गोमती के पास खिसक आए और राय हरिहर की ओर देखकर बोले—"इस टोटी पर आपने बडा जादू किया है! यह तो आपकी ही आँखो देखता है और आप के ही कानो सुनता है। देखिए न, हमारी गोमती अम्मा की जो दासी से अधिक सहेली-जैसी सावनी है, उसका पल्लू किस तरह फाड डाला!...खास चीन से लाया गया चीनाशुक था यह!....इसने तो एक ही झटके मे उसे फाड डाला और बेचारी सावनी अभी भी अपना अधफटा आँचल थामकर खड़ी है!...

अगुलिनिर्देशन के साथ बडे व्यवहारी ने विशेष स्वर मे अपनी बात बनाई कि राय हरिहर का ध्यान सावनी की ओर आकर्षित हुआ!

इस दृष्टि-दिशापरिवर्तन का लाभ उठाकर बड़ा व्यवहारी तुरन्त नीचे झुका और गोमती के कानो मे उसने स्पष्ट, पर आग्रही स्वर मे कहा—

"अम्मा! यह न भूलिए कि हमारे लिए पहला प्रश्न राय हरिहर का नहीं, इस टोटी का है। पहले राय हरिहर के द्वारा टोटी का फैसला

होने दो ! शेष सब बाद में देखा जायगा !"

सिर्फ गोमती सुन-समझ सके, ऐसे धीमे और स्पष्ट शब्दों में अपनी बात कहकर बड़ा व्यवहारी पुनः स्वाभाविक रूप में, अपनी असली जगह चला आया ! बोला—

"अरे, आपने अभी ताम्बूल नहीं लिया ?...सावनी...सावनी...जल्दी मंडलेश्वर को एक ताम्बूल दे ! और फिर हड़प्पा से कहा कि ताम्बूल लेकर महामंडलेश्वर की सेवा में अभी उपस्थित हो जाए !"

"बड़े व्यवहारीजी ! आपके आतिथ्य के लिए मैं आपका ऋणी हूँ ! और ताम्बूल न लेने की मेरी शपथ है।"

"शपथ ? क्यों भला, प्रकृति स्वस्थ नहीं ?"

"जी, ऐसी बात नहीं। भावजी, जहाँ तक मैं विजयधर्म राज्य की स्थापना न कर लूँ और जहाँ तक भगवान विद्याशंकर महाराज अथवा उनके प्रतिनिधि का कर्नाटक सिंहासन के प्रतिष्ठापनाचार्य के रूप में अभिषेक न कर लूँ, तब तक मैं ताम्बूल तक ग्रहण न करूँगा, यही मेरी शपथ है !"

"मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी श्रद्धा जितनी बलवान है, उतना बलवान तुम्हारा व्यवहार नहीं है।"

"श्रद्धा बलवान होगी तो व्यवहार बलवान हो ही जाएगा। फिर भी आपके पक्ष को सविस्तर समझने-बूझने के हेतु मैं उत्सुक तो हूँ ही।"

"इस विषय में पक्ष-जैसी कोई बात नहीं है। आपकी श्रद्धा फलीभूत होने पर हमें आनन्द ही होगा। किंतु क्षमा करना, रायस ! आपकी आयु पच्चीस या अधिक से अधिक सत्ताईस वर्ष की होगी, परन्तु मैं तो पचहत्तर वर्षों को अपने पीछे छोड़ चुका हूँ। यह तो आप भी मानते हैं : एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकती—कदाचित् समा भी जाएं। कदाचित् एक घर में दो पत्नियाँ समा जाएं और सूर्य चंद्र एक साथ उदय हो जाएं—यह सब होना सम्भव है, लेकिन दो राजा एक साथ मिलें और एक साथ रह सकें—यह कदापि सम्भव नहीं। इसी तरह, दो धर्म साथ में नहीं रह सकते ! दो भाषाएं साथ में नहीं रह सकतीं। ऐसा कभी न हुआ और कभी होगा नहीं। और आप तो चार-चार राज्यों, चार-चार राजाओं,

चार-चार धर्मो को एक सूत्र मे बॉधने का स्वप्न देख रहे है !! भावजी, अभी आप नादान नौजवान है और मै वयोवृद्ध हूँ। वरना, आपके सामने ही मै खिलखिला उठता ! क्या करूँ—आपकी बाते ही ऐसी है।"

"बडे व्यवहारीजी ! मैं तो गुरुओ की खोज मे हूँ। आप भी मेरे गुरुओं की खोज मे एक है।"

"मै आपका गुरु ..क्या बात करते है भला !"

"सच्ची बात कहता हूँ। मेरा काम कितना विकट है यह आपने मुझे भलीभाँति बतला दिया ! और इसलिए मुझे और अधिक धैर्य रखना चाहिए। अभी अधिक परिश्रम करना चाहिए। लेकिन मेरी एक ही कठिनाई है—मेरे पास समय बहुत कम है। गुरुदेव विद्याशंकर महाराज ने मुझे सिर्फ सात साल का समय दिया था !"

"भावजी, आपको अधिक तो मैं क्या कहूँ ! गुरु और शिष्य के बीच तीसरा आदमी हस्तक्षेप ही क्यो करे ? और एक बात कहूँ—यदि अनन्त धैर्य अखड है तो काल भी अनन्त है !"

"भावजी, पथ प्रलम्ब है। आज से पूर्व किसी ने इस पंथ पर चलने का प्रयत्न नही किया है ! यो, मेरे लिए यह पथ अपरिचित है और इस कारण आज मै व्यवहारकुशल और व्यवहारकारण पटु वीर वणिको के मुख्य ग्राम मे आया हूँ।"

"हमारे पास आए हैं ! मडलेश्वर, हमारे पास, आने-जैसा है ही क्या ? आप जानते है : वीर वणिको ने आज से पहले कभी राजनीति मे भाग नही लिया था ! और आज के बाद भी नही लेगे। इसलिए यदि आपके प्रयास सफलीभूत होते है तो हमे क्या हानि ? और निष्फल हो जाएँ तो हमारा लाभ ? समस्त दक्षिणापथ मे आज से पहले अनेक राज्य और सम्प्रदाय आए, सप्तकर्णी, सात वाहन, पुलकेशी, आंध्रभृत्य, पाड्य, चोल, चेर, चौलुक्य, होयसल, काकतीय, यादव, गजपति और उनके अतिरिक्त छोटे-बडे नायक, दुर्गपाल, सामुराय....और तुरुष्क आए ! भावजी, दक्षिणापथ मे आज से पहले कौन कहाँ नही आया ? उन्होने सामन्त-चक्र-चूडामणि बनने के मनोरथो के स्वप्न देखे ! और समय आने पर वे चले भी गए ! फिर भी, वीर वणिक तो जैसे-के-तैसे ही रहे ! वे कही से नही आए और कही जानेवाले

नहीं ! क्योंकि वीर वणिक राजनीति में भाग नहीं लेते ! हमें किसी नए राज्य की स्थापना में दिलचस्पी नहीं ! हमें किसी पुराने राज्य के पतन पर हर्ष भी नहीं ! हमारा यह नगर—श्रवण बेलगोला—और इसमें विराजित गोमटेश्वर की प्रतिमा—जहाँ तक इसकी दृष्टि जाती है, वहाँ तक का समस्त प्रदेश हमारा है। उससे तिलभर भी अधिक ज़मीन की हमने कभी माँग न की ! आज से पूर्व हमने किसी राज्य की स्थानपा में भाग भी नहीं लिया। न ही किसी के नाश में योग दिया। राजा और राज्य प्रजा को क्या लेदेकर गए हैं—यह एक प्रश्न है ! वे क्या देकर जाएंगे, यह भी एक सवाल है ! परन्तु वीर वणिकों ने सात सागर पार के स्थविरों और नाना छप्पन देशों के प्रजाजनों के लिए कठोर अकाल-काल में भी अन्न, वस्त्र और वस्तु का अभाव न होने दिया ! यह हमारा निजानंद है, यह हमारा व्यवसाय है और यह हमारा व्यवहार है ! इससे अधिक, पिछले हज़ार सालों में भी हमने कभी न माँगा और कभी स्वीकार भी न किया ! फिर भावजी, आपके यहाँ आने की ज़रूरत ही क्या है ? हम किसी के पथ के बाधक नहीं बने। फिर भला, आपके मार्ग में 'अंतराय' क्यों डालेंगे ? यह तो आप मानते हैं ? वास्तव में तो, हमीं आपके पास आने वाले थे !"

"मेरे पास ?....आप ...क्यों जी ? मेरा कोई अपराध ?"

"अपराध क्या होगा ? राज्य और मंडलेश्वर कभी किसी के प्रति अपराध करते ही नहीं ! परन्तु......"

गोमती अब तक रोष-भरे चेहरे से सब-कुछ चुपचाप सुन रही थी। अब वह बीच में ही बोली—

"हमारे बड़े व्यवहारी आवश्यकता से अधिक विनयवान हैं अतएव ये तुम्हारे अपराध की चर्चा नहीं करेंगे, ये बात मैं बतलाऊँगी तुम्हें।"

"खुशी से कहिए !"

"तो सुनिए ! आपका अपराध यह रहा—" और गोमती ने टोटी की ओर उँगली उठाई। यह आपका पहला अपराध है ! और आपका दूसरा अपराध भी पहले से अधिक नहीं तो उसके समान तो अवश्य है : वह है हमारी परम्परा पर आघात !"

"बहन, मैं स्वयं चलकर यहाँ आया हूँ। मैं अपने साथ किसी साथी को नहीं लाया और अपने संग के साथियों को बेलगोला की सीमा के बाहर ही छोड़ कर आया हूँ। यहाँ मेरे साथ कोई आदमी नहीं है और कोई शस्त्र भी नहीं है। अरहन्तों के उपासकों के इन तीर्थधाम में मैं सर्वथा एकाकी और निःशस्त्र आया हूँ। आपसे यह छिपी नहीं है कि मैं वीरवणिकों के व्यवहार के अनुकूल ही लेन-देन और हिसाब चुकता करने के लिए आया हूँ।"

राय हरिहर के इस निवेदन को सुनकर गोमती क्षण भर के लिए अवाक् रह गई। उसने सोचा कि क्या सचमुच ही यह व्यक्ति सिंह की मांद में अकेला और नि.शस्त्र आया है।"

क्षण भर चुप रह कर वह बोली—"भावजी, यह बहुत अच्छी बात है। हिसाब की लेन-देन और व्याज और व्याज के व्याज की लेन-देन का काम हमारे यहाँ पिछले एक हजार सालों से होता आया है। आप यदि हिसाव चुकाने के लिए आए है तो हम भी हिसाव लेने के लिए तैयार है। सबसे पहले मैं अपना हिसाब आपके रहते वसूल करना चाहती हूँ। अरे, कौन है बाहर ?" कहकर गोमती आवेश में खड़ी हो गई। और चिल्लाकर कहा—"इस नीच और सिर-फिरे होलेय को यहाँ से ले जाओ। और होलेयों के बाड़े में तमाम होलेय और पालेरों के बीच में खड़ा रखकर उन सब के देखते इसकी खाल उतार दो।"

हरिहर के चेहरे की स्वस्थता वैसी ही रही। मात्र उसके हाथ की मुट्ठी में नख उसकी हथेली में घुस गए।

"बहन, कोई कदम उठाने के पहले आप ज़रा मेरे एक सवाल का जवाब दें—"क्या पृथ्वीसेट्ठि के इस अधिकारी आसन को सेठ वायीजन सुशोभित नहीं करते ?"

"उनकी ओर से उनके वारिस के रूप में यह अधिकार मेरा है।" गोमती ने कहा।

"तो बहिन, एक विनती करूँ ?"

"कहिए ?"

"अपने हुक्म को रोक लीजिए।"

"यह कहने वाले आप कौन होते हैं ?"

"पृथ्वीसेट्ठि के आसन के सामने खड़े रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार है। वीरवणिकों के निवेदन और प्रतिज्ञा-पत्र पर क्या लिखा हुआ है ? क्या आप उसे भूल गई हैं ? क्या उसमें नहीं लिखा है कि पृथ्वीसेट्ठि के आसन के सामने न्याय माँगने वाले को, अरहन्त की साक्षी में न्याय मिलेगा ?

"लिखा है मंडलेश्वर, यही लिखा है।" गोमती ने कहा—"और जो कुछ मैं करती हूँ वह न्याय ही है।"

"क्षमा करें। परन्तु यदि मेरी त्रुटि हो तो बड़े व्यवहारी जी उसमें सुधार करें। परन्तु पृथ्वीसेट्ठि का आसन मुद्राविहीन नहीं हो सकता। बहन, पहले आप पृथ्वीसेट्ठि की मुद्रा धारण कीजिए। फिर जो फैसला देना चाहती हों, खुशी से दीजिए।"

"यह रही वह मुद्रा, देखना चाहते हो तो देख लीजिए। आपकी राज-मुद्रा की अपेक्षा यह जरा भी तेजहीन नहीं है। इसके बीच में भी लाल माणिक है। जिसका आशय है कि इस मुद्रा को धारण करने वाले के हाथों में न्यायदान का अधिकार है।"

"अपनी सीमा में न्यायादेश देने के पृथ्वीसेट्ठि के अधिकार को मैं अस्वीकार नहीं करता। मैं तो यही कहता हूँ कि मुद्रा-परिधान से रहित यह आसन व्यर्थ है।"

"मैं मुद्रा को धारण करूँ, या न करूँ इससे कौन सा फर्क पड़ जाता है ?"

"फर्क इतना ही है बहन कि मुद्रा को धारण कर लेने पर आप जो आदेश देंगी उसका उत्तरदायित्व समस्त मणिग्राम पर रहेगा और मुद्रा रहित आपका आदेश—आपका निजी आदेश—माना जाएगा। अब, आपकी जैसी इच्छा हो वैसा कीजिए। मुझे कोई उज्र नहीं। अब क्या करना है, इसका विचार आपको करना है।"

"गोमती ने मुद्रा बाहर निकाली। अपने शीश पर उसे रखने जा रही थी कि उसने बड़े व्यवहारी को अपनी ओर ध्यान से देखते हुए देखा और वह रुक गई। बड़े व्यवहारी के वृद्ध वदन पर चिंता, उद्वेग, चेतावनी आदि

की रेखाएँ एक के बाद एक आ जा रही थीं, गोमती ने उन्हें देखा। अपने अभिमान से युक्त क्रोध के मध्य में भी बनिए की यह बेटी बड़े व्यवहारी का मौन निषेध समझ गई।

उसने मुद्रा को एक ओर रखकर कहा—

"अपने पिता की प्रतिष्ठा और अधिकार की रक्षा करने के लिए मुझे किसी मुद्रा की आवश्यकता नहीं। मैं वीरवणिकों के मणिग्राम के पृथ्वीसेट्टि वायीजन की पुत्री हूँ। और उनकी ओर से सारा कामकाज सँभालती हूँ। यह बात नाना छप्पन देशों में सब लोगों को ज्ञात है। और इसलिए मुझे इस हेतु किसी मुद्रा को धारण करने की आवश्यकता नहीं।"

"बहन, जैसी आपकी इच्छा। लेकिन मैं तो अपने मुद्रा-परिधान से युक्त होकर यहाँ आया हूँ और इसी रीति से आपसे बात करना चाहता हूँ। विजयधर्म-राज्य के स्वामी श्री विद्याशंकर महाराज का महामण्डलेश्वर आपके सामने खड़ा है। और वह आपकी शिकायत का जवाब देना चाहता है। और अपनी बात आपके सामने पेश करना चाहता है—इतना आप समझ लीजिए।"

"अपनी बात तो मैं तभी कह सकूँगी, जब तक सबसे पहले इस नीच होलेय को इसके पाखंड की पूरी सजा देने के लिए सौंप न दिया जाएगा!"

"कौन सौंपेगा?"

"मैं।"

"क्या यह अधिकार आपका है, बहन? यह अधिकार तो पृथ्वीसेट्टि की मुद्रा को ही प्राप्त है। मुद्राहीन आसन निरर्थक है।"

गोमती क्षण भर के लिए विस्मित रह गई। मुद्रा परिधान का महत्त्व और मुद्रा-परित्याग की मर्यादा उसकी समझ में तो आई। फिर भी अपनी हठ रखकर वह बोली—"मुद्रा हो या न हो। मेरे हुक्म पर ज़रूर अमल किया जाएगा। दोरंगियों, ले जाओ इसे।"

"ज़रा रुको। टोटी होलेय के कार्याकार्य के समस्त उत्तरदायित्व को मैं अंगीकार करता हूँ। यदि आपके अभिमान को ठेस पहुँचती हो तो मुझे होलेयों के अपने बाड़े में ले चलो और उतारो मेरी खाल जीते जी। और मैं

आपको वचन देता हूं बहन कि मैं आपसे दया की भीख नहीं माँगूगा और न एक वार ही उफ करूँगा। अर्हन्तों के उपासकों के समान दयालु लोगों से भी मैं दया की भीख नही माँगूगा!"

राय हरिहर टोटी के पास जाकर खड़े रह गए। और बंधन स्वीकार करने की तत्परता दिखाते हुए उन्होंने अपने दोनों हाथ दोरंगियों के सामने फैला दिए। उन हाथों को हटाए बिना दोरंगी टोटी तक नहीं पहुँच सकते थे।

"बड़े व्यवहारी ने गोमती के कान में कहा—"अम्मा, आप यह क्या करती है? एक राज्य के महामंडलेश्वर पर...क्या मैं कहूँ आपसे? क्या आप नाना छप्पन देशों में वीरवणिकों की नाक कटाना चाहती हैं? रोष को वश में रखिए। जरा अपनी पूर्वदा का ध्यान रखिए। एक राज्य का महामंडलेश्वर स्वयं चलकर, एकाकी और निःशस्त्र पृथ्वीसेट्ठि के जिस आसन के सामने आकर खड़ा हुआ है उस आसन के मान की रक्षा कीजिए।" और गोमती को विशेष कुछ कहने का अवसर न देकर बड़े व्यवहारी ने स्वयं ही वार्ता-सूत्र अपने हाथ में ले लिया। दोरंगियों से उन्होंने कहा—'तुम लोग बाहर बैठो।"

फिर रायहरिहर से कहने लगे—"आप तो एक राज्य के महामंडलेश्वर हैं। आप का अविनय करने की हमारी कोई कामना नहीं है। फिर भी अविनय का आभास हुआ हो तो हमें क्षमा करें। अपने अधिकारों की सुरक्षा के हेतु वीरवणिक विवाद और युद्धक्षेत्र में उपस्थित होने को सदैव तैयार हैं। फिर भी उनके व्यवहार और सौजन्य पर विश्वास रखकर चाहे कोई एकाकी और निःशस्त्र व्यक्ति आए, उसका स्वागत करने और सुघर व्यवहार रखने की हमारी प्राचीन परम्परा है।"

"इस पूर्वदा पर निर्भर रह कर ही तो मैं यहाँ चला आया हूँ।"

"इस परम्परा से जो अभय पद मिलता है वह तो आप लेना चाहते हैं! वाह रे भावजी वाह!' गोमती बीच में कहे-बिना न रह सकी।

"यही सब देखने-सुनने के लिए मैं आया हूँ, बहन।"

"तो सुनिए। बड़े व्यवहारी जी आप ही जवाब दीजिए, न! मेरी तो

जीभ वश में नहीं रहती है। मेरा रोष वश में नहीं रहता है इसलिए आप ही बात कीजिए।"

"जी।" बड़े व्यवहारी ने रायहरिहर की ओर देखकर, कहा—"हमारी पूर्वंदा नाना छप्पन देशों में प्रसिद्ध है। अब तक किसी ने इस पूर्वंदा का उल्लंघन नहीं किया है। फिर महामंडलेश्वर, आप को ही इसका अतिक्रम करने की क्यों सूझी ?"

"क्या आप रायरेखा को अपनी पूर्वंदा का अतिक्रमण मानते हैं ?"

"हमारे प्रदेश में किसी का राज्य-शासन नहीं, इस लिए हमारा किसी राज्य और किसी रेखा से अथवा किसी राय से संबंध नहीं है। भगवान गोमटेश्वर की छाया में और उसकी चरण-शरण में युगों से हम रहते हैं। सेतुबंधरामेश्वर से लेकर विंध्याचल पर्वत पर्यंत, द्वारका से लेकर जगन्नाथ पुरी तक सप्तसागरों के चौरासी बंदरगाहों से हम माल लाते हैं और ले जाते हैं। खरीदी करते हैं और बेचते हैं। नाना छप्पन देशों में पूर्व, पश्चिम और दक्षिण समुद्रों में वीरवणिकों को कौन नहीं पहचानता ? और चाहे अकाल हो, लड़ाई हो, जो हो, सो हो, आप ही बताइए, वीरवणिकों ने किसे भूखा रखा है ? परन्तु मैं इस काम की बड़ाई आप के सामने करना नहीं चाहता, क्योंकि यह तो हमारा व्यवसाय है, यह तो हमारा व्यवहार है। और मैं इस बात से इन्कार नहीं करता कि इस में हमारी कमाई है। किन्तु होलेय-पालेर यदि उन्नत और उद्दंड बन जाएं तो हमारा व्यवहार किस प्रकार चल सकता है ? पर राज्य के महामंडलेश्वर हमारे होलेय और पालेरों के बीच के हमारे मतभेद को बढ़ाते जाएँ, क्या यह महामंडलेश्वर को शोभा देता है ? ये होलेर और पालेर सारे कामकाज छोड़ दें और महामंडलेश्वर हस्तक्षेप करें तो हमारा व्यवसाय कैसे चल सकता है ? ऐसी हालत में सात सागरों में, देश और परदेश में वीरवणिकों का व्यवहार कैसे निभ सकता है ? राज्य के सैनिक यदि द्रोह करें तो, आप को कैसा लगेगा ? फिर यह तो हमारी पूर्वंदा है। इसमें क्या पर राज्य के महामंडलेश्वर को हस्तक्षेप करना चाहिए ?"

"बड़े व्यवहारी जी, रायरेखा होलेय और सेठ और पालेर और रायस

आदि के बीच में किसी प्रकार का मदभेद खड़ा करना नहीं चाहती। वह तो मात्र उसकी नींव को अधिक संगीन बनाना चाहती है।"

"परन्तु ये राय और ये रेखा....इनसे हमारा क्या संबंध है? हमारे यहाँ कोई राय नही है और हमारी पूर्वदा के सिवाय हमारी कोई रेखा नहीं है।" बड़े व्यवहारी ने कहा—"इस पर भी हमारे काफिलों को आप ने लूट लिया, हमारे बनजारों को कैदकर लिया।"

"विदेशों से वस्त्र और अश्व मँगाकर आप वीरवणिक मदुरा के तुरुष्क सुल्तान को भेजते थे। लेकिन आज हम चाहते हैं कि दक्षिणापथ का कोई भी नागरिक तुरुष्कों से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं रख सकेगा। अब तो ऐसे संबंध अशक्य और असम्भव हैं!"

"लेकिन हमें क्या? हमारी मर्यादा और हमारी पूर्वदा हमारे व्यापार पर ही निर्भर है। हमारे व्यापार के इस ओर जो खड़ा रहे, वह हमारा हिस्सेदार और उस ओर जो खड़ा रहे वह हमारा ग्राहक—यह है हमारी पूर्वदा, हमारा व्यवहार, हमारी कुलप्रतिष्ठा, ग्रामप्रतिष्ठा, और व्यवसाय-प्रतिष्ठा। आज तक हमारे होलेयों और पालेरों के बीच, आज तक हमारे बनाजे और हमारे बनजारों के बीच कोई राजा या कोई मंडलेश्वर, या कोई विद्रोही या कोई सुल्तान बीच में नहीं आया।....

"तो फिर आप को हस्तक्षेप करने की जरूरत कैसे पड़ी? क्या आप का विचार है कि हम पूर्वदा और परम्परा के दिए गये अधिकारों का यह आक्रमण सहन कर लेंगे?"

"बड़े व्यवहारी जी, आप की बात तो पूरी हो गई है। अब मेरी बात सुनें। आप सब अपनी पूर्वदा और परम्परा के बल पर दूसरे आदमियों की मेहनत के शोषण पर अपने वैभव की वृद्धि करना चाहते हैं। परन्तु आप यह तो सोचते ही नहीं कि पूर्वदा और परम्परा ने आप के ऊपर किसी धर्म को लादा है! जिस साम्राज्य का मैं महामंडलेश्वर हूँ उस साम्राज्य पर अपने अधिकारों का भार कम डालने की और अपने अधिकारों पर अधिक भार डालने की बातें कर रहे है। सभी की अलग-अलग पूर्वदाएं हैं—प्रत्येक वर्ग की, जाति की, प्रत्येक व्यवसाय की—और इन सब की, जाति-पाँति, व्यक्ति-

व्यवसाय के अनेक अधिकार हैं। अधिकार है इसीलिए दूसरों के शोषण के बल पर अपना अधिकार आप लोग सुरक्षित रखते हैं! इन अधिकारों के संघर्ष में ही आज उत्तरापथ बरबाद हुआ है और दक्षिणापथ भी बरबाद होने आया है। इसी संघर्ष के कारण प्रजा के निम्न स्तर और उच्च स्तर के बीच वैमनस्य फैलाया है। जिसमें ही सत्ता के लालची, विदेशी आक्रमण-कारियों और जासूसों का मिलन हुआ है। देश में मौर्य जब आते हैं, उच्च वर्ग नष्ट होता है और निम्न वर्ग इस बात का स्वागत करता है। कलभ्र आते हैं और फिर से यही प्रकरण दुहराया जाता है। फिर यवन आते हैं, राजा और राज्य विनष्ट होते हैं। मंदिरों का नाश होता है। फिर भी लोग अपने देश का संहार देखते रह जाते हैं!

"इसीलिए भगवान विद्याशंकर ने आदेश दिया है कि प्रजाजन मात्र, व्यवसाय मात्र और वर्ण मात्र की जो विविध पूर्वदा है उस समग्र का समुच्चय हो और सर्वजन अपने अधिकारों के साथ अपने देश के प्रति अपने धर्म को भी समझें और प्रत्येक पूर्वदा के साथ साथ मर्यादा भी अंकित है। इस प्रकार की एक सर्वसामान्य परम्परा का समुच्चय होना चाहिए। इसी हेतु तो विविध शास्त्र, स्मृतियाँ, आगम, जातक, आदि का संकलन करके हमने इस रायरेखा की रचना की है। और इसमें साम्राज्य के सम्राट से लेकर महामंडलेश्वर, महामात्य, अमात्य, राजगुरु और धर्मगुरु, जाति और पाँति, पटेल और पंथ, व्यवसाय और बेसवागा, सबके अधिकारों की मर्यादा निर्धारित की है। यह इसलिए कि समष्टि का कल्याण हो। इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति या समाज को सीमाहीन अथवा नियंत्रणहीन अधिकार नहीं मिलेंगे। मर्यादा का पालन स्वयं सम्राट तक के लिए अनिवार्य है। यह है रेखा का संक्षिप्त रूप।

"अगर ऐसा ही हुआ तो प्रजाजन मात्र को इस भूमि और इस भूमि के सम्मान के प्रति आकर्षण रहेगा, इनके प्रति ममत्व रहेगा। यदि यही हुआ तो निश्चय ही हमारी यह विविध धर्म, सम्प्रदाय, राज्य, भाषा और भावना आदि में विभिन्न जनता रायरेखा के एक सूत्र में आबद्ध होकर विदेशी यवनों से टक्कर ले सकती है और उनके सामने अविचल खड़ी रह सकती है।

दक्षिणापथ की समस्त जनता को अपने निर्वाह के लिए जो-कुछ प्राप्त होता है वह सब इसी धरती की अनुकम्पासे प्राप्त होता है। और इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को रायरेखा के परमार्थ में ही अपना स्वार्थ दृष्टिगोचर होगा। यदि अपनी धरती के प्रति उसके मन में ममत्व रहेगा तो वह विदेशियों का सामना करने को तत्पर रहेगा। सबके अधिकारों की रक्षा में ही हमारे अधिकारों की रक्षा है—यह भावना उनके मन में उत्पन्न होगी और जब प्रजा के मानस में ऐसी स्वयंभू लगन का उदय होगा तभी यह भूमि और इसके निवासी अपना शौर्य प्रदर्शित कर सकेंगे और अपने जीवन की रक्षा कर सकेंगें। तब हम समस्त उत्तरापथ और समस्त दक्षिणापथ को यह उदाहरण दिखा सकेंगे कि इस प्रकार चार राज्यों, चार धर्मों और चार प्रान्तों का समन्वय भी हो सकता है और उन्हें इस प्रकार सम्मान भी दिया जा सकता है।

"आज से पहले इस देश में अनेक राज्यों और साम्राज्यों की रचना हुई थी और उनका अंत भी हुआ था। अनेक विजय-मालाएं भी प्राप्त हुई, परन्तु किसी ने आज से पहले इस देश के जनमात्र को उसके अधिकार की मर्यादा और धर्म की सीमा समझाने का प्रयत्न नहीं किया। वास्तव में किसी को किसी पर एकाधिकार प्राप्त नहीं हुआ। किसी का अपना धर्म ही श्रेष्ठ धर्म नहीं है। सबको—ऊँच और नीच को, राय और रंक को, मात्र धर्माधिकार ही है। यह बात मैं भगवान विद्याशंकर के आदेश और उपदेश को ध्यान में रखकर कह रहा हूँ और इसी के आधार पर मैंने रायरेखा का सर्जन किया है।"

"आप की बात मैंने बड़े ग़ौर से सुनी है। भगवान विद्याशंकर जैसे तपस्वी कहते हैं, आप जैसे मंडलेश्वर कहते हैं और वारंगल, पांड्य संघ और चोल नेता कहते हैं एवं अन्यान्य दुर्गापाल भी इस बात को स्वीकार करते हैं तो अवश्य यह सत्य होगी। लेकिन इससे हमारा क्या संबंध ? हम तो किसी राज्य के अन्तर्गत नहीं, फिर भला आपकी रायरेखा हमारी परम्परा को क्योंकर छूती है ? क्योंकर हमारे होलेय और पालेरों में उत्तेजना फैलाई जाती है ? और किस लिए उन्हें पृष्ठबल दिया जाता है ? क्योंकर

जागृत हुई थी। इन भेदों की दरारों में से ही शक आये, हूण आए, कलभ्र आए, तुरुष्क आए और आज तो मदुरा में एक तुरुष्क सुल्तान बन कर बैठा है, और आज की दिल्ली में एक तुरुष्क शहनशाह बन कर बैठा है। आज दो सौ सालों से यवन राज्यों का विनाश कर रहे हैं, देव-मंदिरों को तोड़ रहे हैं और गाँवों को जला रहे हैं—इसका कारण भी ये विविध मतभेद ही हैं!

"आज हमारे दुखी देश में एक ऐसे विलक्षण और विचित्र वर्ग का जन्म हुआ, उदय हुआ है, जो यह चाहता है कि चाहे धरती धूल में मिल जाए, चाहे देश गुलाम हो जाए, हमारा अधिकार सुरक्षित रहना चाहिए। परिणाम यह निकला कि देश के टुकड़ हुए, विनाश की नींवें पड़ीं और संघर्ष पैदा हुए—इनका प्रत्यक्ष उदाहरण, आज हमारे और आपके बीच जो संघर्ष पैदा हुआ है—वह है! वीरवणिक अपने अधिकारों के विषय में इतनी सावधानी रखें और इसलिए होलेयों और पालेरों के प्रति लापरवाह बन जाएं तो फिर भला होलेय और पालेर भी वीरवणिकों के प्रति लापरवाह बनकर अपने मानवीय अधिकार के निमित्त पुरुषार्थ करना चाहें तो उन्हें कौन रोक सकता है? आज तुर्कों का मुकाबला करने के लिए सेना की जरूरत है। किसलिए उन्हें—होलेयों को अपनी सेना में भर्ती न करूं?

"आपकी पूर्वदा चाहे तुर्कों से भी मुक्त-व्यापार करने की रही हो, परन्तु मेरी पूर्वदा तो कहती है कि तू इस भूमि का बेटा है, इसलिए तुर्कों का मुकाबला कर। अतएव तुर्कों को मिलने वाली मदद को रोक देना—मेरा अधिकार है। क्या आप मेरी बात समझते हैं व्यवहारी जी? और अगर आप और हम यों, अपने अपने अनियंत्रित अधिकारों के लिए अड़ते-लड़ते रहें तो हमारे बीच स्थायी संघर्ष छिड़ जाएगा! और मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि यदि विजय धर्म-साम्राज्य ऐसे व्यापार को निषिद्ध एवं अवैध ठहराता हो, तब भी आपके बेलगोला की सामर्थ्य चाहे जितनी हो, फिर भी कितनी? पिछले राजाओं के पद-चिह्नों पर यदि मैं भी चला होता तो उनकी तरह बेलगोला को लूटने से मुझे कौन रोक सकता था? कदाचित् आप युद्ध करें, किंतु वह युद्ध कितने दिन चल सकता है?"

"ये तो धमकी की बातें हैं! क्या आप हमें धमकी देने के लिए ही आये हैं?"—गोमती ने रोषपूर्वक पूछा—

"यदि धमकी की भाषा में बात करने के लिए मैं आया होता तो, अकेला न आता ! उस स्थिति में आपके होलेयों और पालेरों से मैं यह न कहता कि संयम रखें ! होलेयों के कारण तुम्हारे जो रोज़गार और धंधे बंद हो गए हैं, उन्हें फिर से चलाने के लिए मैं न आता ! आज से पहले अन्य शासकों ने जो किया, वही करने के लिए मैं आता—विजेता के रूप में आता और तब तुम्हारे होलेयों को नवीन राज्यतंत्र के नवीन वफ़ादारों के रूप में अग्रस्थान पर स्थापित करके, आप सबको होलेय और पालेर बनकर राज्य में सम्मिलित होने का अनिवार्य आदेश देता ! परन्तु मैं, ऐसी किसी बात के लिए, तुम्हारे पास नहीं आया। मैं आप पर अपनी विजय लाद देने के लिए भी नहीं आया ! आप पर विजय-धर्म का शासनभार डालने के लिए भी नहीं आया ! मैं तो आपसे एक ही बात कहने के लिए आया हूँ : आप अपनी परम्परा का पालन करें परन्तु उसके साथ परम्परा पर धरती की, प्रत्येक मनुष्य की स्वायत्तता की मर्यादा स्वीकार करें।"

"इसलिए कि हम आपके दास बनकर रहें ? यही न ? हज़ार साल में भी हम किसी के दास नहीं बने ! और अब आपके दास बनेंगे ?"

"दास नहीं, हमारे पड़ोसी बन कर रहिए ! राय-रेखा, आपसे विजय धर्म की तावेदारी नहीं चाहती ! किसी भी दुर्ग से, किसी भी राज्य से, वह किसी भी भाँति का दासत्व नहीं चाहती ! भगवान विद्याशंकर का राज्य तो सबकी मैत्री की माँग करता है। आपके होलेय भी मनुष्य हैं, उन्हें परचेरी का अधिकार दीजिए ! विजयधर्म-राज्य आज तुरुष्कों का पथ रोक देने के लिए परम पुरुषार्थ के क़दम बढ़ा रहा है। उस पुरुषार्थ से फलित उसके धर्म का आदर कीजिए। इस देश के दुश्मनों के हाथ मजबूत न कीजिए। अपने अधीनस्थ लोगों पर हावी होकर, उनके जीवन की उमंगों का अन्त न कीजिए ! इस भूमि से तुरुष्कों को निकाल बाहर करने के लिए आपके जो होलेय तैयार हों, उन्हें अपने दासत्व से मुक्त कीजिए और आप स्वयं भी तुरुष्कों को निकाल देने के काम में, सहानुभूति रखने-जितनी मर्यादा का अंकुश अपने व्यवसाय पर रखिए ताकि तुर्क समर्थ और सबल न बन सकें ! तीसरी कोई चीज़ मैं नही चाहता ! तीसरी किसी बात की भीख मैं आपसे नहीं माँगता ! आपके स्वाधीन ग्राम, व्यवसाय और

परम्परा पर मैं आधिपत्य स्थापित करने के लिए नहीं आया हूँ। मैं तो आप से मात्र इतनी ही भिक्षा माँगता हूँ! इतनी भीख मुझे दीजिए—इससे आपका कल्याण होगा, नाना छप्पन देशों का कल्याण होगा!" पैर पटक कर गोमती खड़ी हो गई—"इसका उत्तर बड़े व्यवहारी, आप न दीजिए, मैं दूंगी? राय हरिहर, हमारे साहजिक और परम्परागत सौजन्य पर निर्भर रहकर आप यहाँ निःशस्त्र और एकाकी चले आए हैं, अच्छी बात है यह! आपकी बात मैंने सुनी। अब मेरी बात आप सुनिए। आप घोड़े पर सवार होकर ही आए होंगे और घोड़े पर बैठकर ही लौटेंगे। यदि घोड़ा साथ में न लाये होंगे तो, मै दूंगी आपको। आप जाइए। ठीक एक प्रहर के पश्चात् वीरवणिकों के सैनिकों के आगे आगे रहकर मैं आपके पीछे पड़ूँगी और यदि आपको मैं गिरफ्तार कर सकी तो वीरवणिकों की हज़ार साल की परम्परा के विरुद्ध विद्रोह करने के अपराध में आपका बध करूँगी!"

"और यह टोटी...?"

अभिमानवश गोमती के नथुने फूल फूल गए। तिरस्कार के कारण उसकी आँखें मानो फट-फट गईं!

उसने रोप-आक्रोश में कहा—

"टोटी?...टोटी भी भले आपके साथ जाए!....राय, आप इस बात की परीक्षा ले सकते हैं कि यह नीच होलेय आपके लिए कितना उपयोगी सिद्ध हो सकता है! आपको मैंने एक प्रहर की जो अवधि दी है उसमें अपनी इच्छानुसार इसका उपयोग कर लें! क्योंकि इसके बाद, जब यह मेरे हाथ पड़ेगा, मैं इसकी खाल उतरवा लूँगी!"

राय हरिहर ने गोमती को नमस्कार किया—

"मुझे खेद है कि मैं आपको अपनी बात समझाने में असमर्थ रहा!"

"पधारिए"—गोमती ने कहा—"एक प्रहर पश्चात्, फिर से हमारी मुलाकात होगी....और मुलाकात होने पर मैं आपको मृत्युदण्ड दूँगी!"

और पीठ फेर कर वहाँ से चली गई!

दो मुसाफिर

सोमसामी ने कहा—

"जब भद्रानदी का यह मोड़ समाप्त हो जाएगा, तब भद्रवासिनी देवी का मंदिर दृष्टिगोचर होना बन्द हो जाएगा, क्योंकि यह पर्वतश्रेणियों की आड़ में आ जाएगा और तब गोमटेश्वर की प्रतिमा सामने आएगी। वहीं से बेलगोला की सरहद शुरू होती है।"

बिबोया बोला—"सामी, तुम इस पथक के जानकार मालूम होते हो?"

"क्यों नहीं? वायीजन पृथ्वीसेट्टि की जूठन लूटने के लिए मैं इसी राह से बेलगोला गया था! और इसी राह से मैं और बोमाया लौटे थे। भगवती गोमती देवी की वह कृपा मैं कभी भूल नहीं सकता! इस समस्त पथ के कण कण मेरे लिए मानो युग युग पुराने परिचित हैं!"

"भले आदमी! तू जब और तब गोमती की इतनी प्रशंसा करता है। तो क्या तेरी पत्नी बोमाया को इससे ईर्ष्या नहीं होती?"

"ईर्ष्या किस बात की? बोमाया जानती है कि वह मेरी अर्धांगिनी है। और गोमती एक उपकारक है। और उपकारी की सराहना के प्रति असूया कैसे रखी जा सकती है?"

"मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है...प्रतीत होता है!"...

"प्रतीत होता है? रुक क्यों गए?"

"नहीं, परन्तु मुझे विस्मय होता है कि सालुवा मांगी और मेरे बीच की जुआ की शर्त्त में तुम्हारी इतनी रुचि क्योंकर है?"

परम्परा पर मैं आधिपत्य स्थापित करने के लिए नहीं आया हूँ। मैं तो आप से मात्र इतनी ही भिक्षा माँगता हूँ! इतनी भीख मुझे दीजिए—इससे आपका कल्याण होगा, नाना छप्पन देशों का कल्याण होगा!" पैर पटक कर गोमती खड़ी हो गई—"इसका उत्तर बड़े व्यवहारी, आप न दीजिए, मैं दूँगी? राय हरिहर, हमारे साहजिक और परम्परागत सौजन्य पर निर्भर रहकर आप यहाँ निःशस्त्र और एकाकी चले आए हैं, अच्छी बात है यह! आपकी बात मैंने सुनी। अब मेरी बात आप सुनिए। आप घोड़े पर सवार होकर ही आए होंगे और घोड़े पर बैठकर ही लौटेंगे। यदि घोड़ा साथ में न लाये होंगे तो, मैं दूँगी आपको। आप जाइए। ठीक एक प्रहर के पश्चात् वीरवणिकों के सैनिकों के आगे आगे रहकर मैं आपके पीछे पड़ूँगी और यदि आपको मैं गिरफ्तार कर सकी तो वीरवणिकों की हज़ार साल की परम्परा के विरुद्ध विद्रोह करने के अपराध में आपका बध करूँगी!"

"और यह टोटी...?"

अभिमानवश गोमती के नथुने फूल फूल गए। तिरस्कार के कारण उसकी आँखें मानो फट-फट गई!

उसने रोप-आक्रोश में कहा—

"टोटी?...टोटी भी भले आपके साथ जाए!....राय, आप इस बात की परीक्षा ले सकते हैं कि यह नीच होलेय आपके लिए कितना उपयोगी सिद्ध हो सकता है! आपको मैंने एक प्रहर की जो अवधि दी है उसमें अपनी इच्छानुसार इसका उपयोग कर लें! क्योंकि इसके बाद, जब यह मेरे हाथ पड़ेगा, मैं इसकी खाल उतरवा लूँगी!"

राय हरिहर ने गोमती को नमस्कार किया—

"मुझे खेद है कि मैं आपको अपनी वात समझाने में असमर्थ रहा!"

"पधारिए"—गोमती ने कहा—"एक प्रहर पश्चात्, फिर से हमारी मुलाकात होगी....और मुलाकात होने पर मैं आपको मृत्युदण्ड दूँगी!"

और पीठ फेर कर वहाँ से चली गई!

"और क्योंकर मैं तुम्हारे साथ आने को रजामन्द हुआ ! यही न ?" सोमसामी ने पूछा।

"हां, कुछ ऐसी ही बात है ! किसी दूसरी बोमाया का लोभ तो तेरे मन में नहीं है ?"

"अभी भी तुम्हें मेरी बात नहीं जँचती ? तो, कहो तो मैं लौट जाऊँ ?"

"नहीं रे, क्योंकर इतनी जल्दी करता है ? तेरी बात मैं मानूं या न मानूं, इसमें तेरी क्या हानि और मेरी भी क्या हानि ? इस अपरिचित प्रदेश में एक के स्थान पर दो व्यक्ति अच्छे ! फिर तू मेरा परिचित ठहरा। तू यह भी जानता है कि मेरे पास समय बहुत कम रह गया है और जो कुछ रह गया है, उसमे से भी दस दिन चूक गए हैं ? महाकर्णाधिप सोमैया नायक की अनुज्ञा के बिना महामंडलेश्वर भी कहीं प्रयाण नहीं कर सकते, फिर मैं तो गजसेना का साधारण दण्डनायक हूँ। सोमैया प्रज्ञाचक्षु हैं, यानी चक्षु नहीं हैं परंतु प्रज्ञा कई गुनी है ! मेरे मन की सच्ची बात तो उन्होंने पल भर में मेरे मुँह से निकलवा ली ! प्रयाण के पूर्व छुट्टी माँगने गया, तो सोचा था कि टेढ़ी-मेढ़ी गप्प लगा दूँगा मगर गोमतीवाली बात तो उन्हें नहीं ही बताऊँगा, लेकिन पत्थर को छेदनेवाले कठिन यंत्र की तरह उन्होंने मेरे मन को छेदकर बात बाहर निकलवा ली। लेकिन बात जान लेने पर छुट्टी देने से इंकार नहीं किया। तुम तो मेरी बात के मूल साक्षी हो ही !"

तभी न मैं अपनी चोलेश्री बोमाया को सौंपकर, तुम्हारे साथ चला आया ! मन में कई दिनों से विचार मँडरा रहा था कि बाहर-कहीं घूमने जाना चाहिए। हम ठहरे आवारा आदमी ! धंधा-रोज़गार अच्छा है ! बोमाया जैसी पत्नी है। गृहस्थजीवन में कोई दुख भी नहीं। फिर भी अपने वातावरण से मन ऊब जाता है और किसी वनान्तर में या सागर की ओर भाग जाने का मन होता है ! फिर तुमसे बचपन की मैत्री, अतः तुम्हें देखते ही मुझे तो ऐसा लगा मानो मुफ्त में गुड़ की गाड़ी मिल गई। सो, मैं तुम्हारे साथ ही चल पड़ा ! और गोमती अम्मा के दर्शन भी होंगे।" —सोमसामी ने कहा।

"और वायीजन सेट्ठि की जूठन भी"—बिवोया ने हँसकर इतनी बात

जोड़ दी—"परन्तु सोमसामी ! मुझे तो तेरी मैत्री और तेरे बंधुत्व की ही कामना है। मैंने कहा न, एक से दो भले !"

"हां भालारी," सोमसामी ने कहा—"यह पंथ ही ऐसा कि इस पर एक से दो राहगीर भले ! यह प्रदेश क्या है—मानो प्रत्यक्ष मायानगरी है। सोनेचाँदीं का पार नहीं। हीरा और माणिक अपार हैं। भालारी, तुम्हें मालूम है, बेलगोला में श्रीमंत का लक्षण क्या है ?"

"वाह ! धरती के एक छोर से अंतिम छोर तक—क्या उत्तरभूमि कि क्या दक्षिणभूमि, क्या पश्चिम भूमि, क्या पूर्वधरा, क्या रावण की लंका कि क्या कृष्ण की द्वारिका, क्या कुबेर की अलका कि क्या मगध का पाटलिपुत्र, क्या राजा क्या रंक—जहाँ पूछिए वहाँ श्रीमंताई का एक ही लक्षण : सोना चाँदी, रेशम, जर-जवाहिर...बेलगोला में दूसरा क्या होगा ? कहते हैं कि राजा विक्रम की उज्जयिनी नगरी में हीरे मन के हिसाब से तोले जाते थे, तो बेलगोला में शेर के हिसाब से तौले जाते होंगे...दूसरा क्या ?

'नहीं, ऐसा नहीं भावजी ! वहां तो भिखारी जैसे कपड़े पहनते हैं वे ही श्रीमंत कहलाते हैं। वह बात तुमने नहीं सुनी ?"

"कौन-सी ?"

द्वार-समुद्र का एक व्यवहारी एक बार एक जलयान में यात्रा कर रहा था। रास्ते में जहाज़ टूट गया। और एक अपरिचित द्वीप पर उतरा। वहाँ पर असली मोती हैं। अरे, मिलते हैं तो कैसे ? समुद्र से ये मोती, ज्वार के साथ किनारे तक बहकर आ जाते हैं—ढूंढ़ने की जरूरत नहीं पड़ती ! बस, मोती-भरी सीपियाँ अमावस और पूनम पर ज्वार के साथ बहकर आती हैं।"

"बहुत बड़ा भाग्य !"

"चुप रहो। परन्तु वहाँ के मनुष्य क्या करते हैं, यह मालूम है ? अंदर असली मोती होते हैं न—माला के मनके जैसे, कोई काले और लाल, कोई सफेद और भूरे, और सभी असली—इन असली मोतियों को समुद्र में फेंककर, द्वीप के आदिवासी सिर्फ सीपियों से अपना शृंगार करते हैं। क्या आप विश्वास कर लेंगे कि वहाँ के लोग मौतियों की कोई कीमत नहीं

मानते, और जिसके पास जितनी अधिक सीपियाँ होती हैं, वे उतने अधिक धनवान समझे जाते हैं !"

"ऐसे द्वीप में हमने जन्म नहीं लिया, और यह भुक्खड़ द्वारसमुद्र हमारे भाग्य में बँधा !"

सोमसामी ने कहा—"यह व्यवहारी तो अनेक मोतियों के थैले जहाज़ में भरकर लाया है।"

"तब तो वह बहुत भाग्यशाली है !"

"अरे भावजी, किन्तु उसका भाग्य उससे दो कदम आगे-आगे दौड़ता है। द्वारसमुद्र के होयसलराज बल्लाल को जब पता चला तो उन्होंने उस व्यवहारी को जीवित ही जमीन में गाड़ दिया, और थैलियों को अपने राज-कोष में रखवा लिया।"

"सोमसामी ! बात सत्य हो या झूठ, परन्तु बल्लालदेव तो संन्यासी बन गये और राजसंन्यासी के समान अपने समस्त राज्य को दान में देकर अजरामर यश के स्वामी बने। अन्त में वे वीर की मौत स्वर्ग चले गए। उनके पीछे उनके विषय में ऐसी बातें नहीं सोचनी चाहिए।"

"अरे, यह किस राजसंन्यासी की बात है ? और हो तो भी क्या ? तीसरे बल्लालदेव तो बलिराजा के समान एक ही बात से अमर हो गए। परन्तु बलिराजा की तरह उनकी अगली बातें आसुरी थीं। तुम्हें मालूम है कि, कलियुग के कालयवन के विषय में ?"

"बस करो सोमसामी ! तुम हँसमुख हो, मेरे साथी हो, और हम दोनों को बातें करने की छूट है। परन्तु यह बात तो बन्द कर दो। समस्त वैभव और समस्त जीवन का दान करनेवाले के, अपने दान के माहात्म्य की छाया में, उसका समस्त अतीत धुल जाता है। जानते हो, इन्हीं राजसंन्यासी के संसारधर्मकाल की राजरानी, किसी ज़माने की कर्नाटक देश की कुंतल परमेश्वरी, आज किस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रही हैं ? तपस्वी विद्याशंकर के पम्पा सरोवर स्थित आश्रम के निकट एक पर्ण कुटीर में वे रहती हैं और तपस्वी के शिष्यों को भोजन बनाकर खिलाती हैं। उनके वस्त्र धोती हैं, बिछौने बिछाती हैं और अपरिग्रह का पालन करती हैं।"

है। और तैराक पानी में डूबता है। बेचारा जब दूसरों को गाड़ने गया तो स्वयं गड़ गया! और बेचारा होयसल वंश की स्थापना करने गया। 'होय' का अर्थ है 'बाघ' जो हज़ार लोगों की जान लेता है और समस्त पथक को उजाड़ने वाले, किसी अघोरी के अवतार बाघ को मारकर, पथक को फिर से बसानेवाला 'होयसल' कहलाया! और अंत में मरा बाघ के प्रहार से! मतलब की बात यह है भावजी—ईश्वर तो है परन्तु उस पर विश्वास रखना चाहिए!

"और मोती के उन थैलों का क्या हुआ?"

"राजभंडार में पड़े रहे और ज्यों के त्यों उन्हें कलियुगी कालयवन उठा ले गया!"

"तब तो वह भी धनवान बन गया, क्यों?"

"अरे, राम-राम कहो! चोरी का माल किसी दिन किसी को हज़म हुआ है? चोरी की चीज़ जल्दी या देर से चांडाल के घर ही जाती है। तुमने दिल्ली का हाल नहीं सुना?"

"नहीं! अरे भावजी, यह नई बला तू कहाँ से ले आया?"

"ऐसी धरम, धरम के न्याय, ईश्वरीय न्याय और धर्म की तुला और सामाजिक न्याय की बातें यदि तुम्हें सुनना हो, भालारी, तो चार-पांच ब्राह्मणों को निमन्त्रण देना चाहिए। किसी अग्रहार में उन्हें लड्डू खिलाना चाहिए। ऊपर से इडली का प्रबन्ध रखना चाहिए। फिर बाद में विजया के पान का प्रबन्ध रहे। फिर कुछ पालेरों को बुलवा कर मंदिर के चबूतरे पर जल का छिड़काव करा कर, पल्लव बिछा कर, ब्राह्मणों को उठाकर सुला देना चाहिए और धीमे-धीमे पंखा झलना चाहिए। फिर तो भावजी न्याय और धर्म की ऐसी बारीक बातें कहाँ होंगी कि स्वयं आकाश में विराजित धर्मराज को भी जिनका ज्ञान नहीं होगा!"

"हाँ सामी! तुमने भी अग्रहार छोड़कर, चोलेत्री का धन्धा अपनाया, वरना किसी दिन तुम भी इस मजे का रस चूसते। और दिल्ली का कौन सा हाल तुम सुना रहे थे?"

"दिल्ली के सुलतान ने समस्त उत्तरापथ और आधा दक्षिणापथ लूट

कर अपार सम्पदा एकत्र की। एकत्र भी कितनी की ? कहते है कि सुलतान को अपना यह खज़ाना अपनी आँखों देखने का बड़ा शौक था! उसके सामने उसके एक सौ गुलाम खज़ाने का माल टोकरियों में सजाकर रखते जाते। इस काम में एक प्रहर बीत जाता। कभी मस्ती में आकर सुलतान इस खज़ाने के नीचे अपने गुलामों को जीवित गाड़ देता! ऐसा था वह खज़ाना! धन का भण्डार! दो हज़ार वर्ष तक राजाओं, महाराजाओं, सम्राटों और व्यवहारियों ने जो कुछ एकत्र किया—वह सब सुलतान के इस खज़ाने में प्रस्तुत था!

"इसके बाद दिल्ली में दंगल मचा! कैसे मचा, किसने मचाया, क्यों मचाया—इसके कई कारण बतलाए जाते हैं। परन्तु दंगल मचा—यह सच है। इस दंगल में सुलतान मारा गया। उसके शाहजादे मारे गए। कलियुगी कालयवन मारा गया। सुलतान के भाई, उसका साला, सुलतान के वजीर, सुलतान की बेगमें—सभी मारे गए! बड़े-बड़े अमीरों की बेगमें बाज़ार में एक-एक जीतल में बेच दी गईं। और खुशरू खाँ गुजराती के नाम का डंका बज गया!...अंत में यह गुजराती भी मारा गया और इस बखेड़े में खज़ाना जाने कहाँ लोप हो गया! आज तक उसका पता नहीं! और आज के दिल्ली सुलतान के पास भंडार तो क्या, दैनिक खर्च भी कठिनाई से चल रहा है। इसीलिए तो उसने चमड़े के सिक्के चलाए हैं!"

"अच्छा!"

"हाँ, यही बात हैं। लाखों लोग लूटे गए। लाखों मारे गए और अन्त में सब के हाथ खाली हो गए। लक्ष्मी क्या इस प्रकार हाथ में आती है? वह तो धरती से पैदा होकर इस तरह धरती में समा जाती है कि हम तो देखते ही रह जाते हैं!"

"ठीक! परन्तु इसके समक्ष आकाश में ऊँचे से ऊँचा क्या दृष्टिगोचर होता है?"

"वह है गोमटेश्वर की प्रतिमा! बेलगोला की सीमा में हम आ—पहुँचे हैं।"

"हाँ भावजी! अब, सँभलकर रहना। यों तो गोमती अम्मा का कलेजा

है। और तैराक पानी में डूबता है। बेचारा जब दूसरों को गाड़ने गया तो स्वयं गड़ गया ! और बेचारा होयसल वंश की स्थापना करने गया। 'होय' का अर्थ है 'बाघ' जो हजार लोगों की जान लेता है और समस्त पथक को उजाड़ने वाले, किसी अघोरी के अवतार बाघ को मारकर, पथक को फिर से बसानेवाला 'होयसल' कहलाया ! और अंत में मरा बाघ के प्रहार से ! मतलब की बात यह है भावजी—ईश्वर तो है परन्तु उस पर विश्वास रखना चाहिए !

"और मोती के उन थैलों का क्या हुआ ?"

"राजभंडार में पड़े रहे और ज्यों के त्यों उन्हें कलियुगी कालयवन उठा ले गया !"

"तब तो वह भी धनवान बन गया, क्यों ?"

"अरे, राम-राम कहो ! चोरी का माल किसी दिन किसी को हज़म हुआ है ? चोरी की चीज़ जल्दी या देर से चांडाल के घर ही जाती है। तुमने दिल्ली का हाल नही सुना ?"

"नहीं ! अरे भावजी, यह नई बला तू कहाँ से ले आया ?"

"ऐसी धरम, धरम के न्याय, ईश्वरीय न्याय और धर्म की तुला और सामाजिक न्याय की बातें यदि तुम्हें सुनना हो, भालारी, तो चार-पांच ब्राह्मणों को निमन्त्रण देना चाहिए। किसी अग्रहार में उन्हें लड्डू खिलाना चाहिए। ऊपर से इडली का प्रबन्ध रखना चाहिए। फिर बाद में विजया के पान का प्रबन्ध रहे। फिर कुछ पालेरों को बुलवा कर मंदिर के चबूतरे पर जल का छिड़काव करा कर, पल्लव बिछा कर, ब्राह्मणों को उठाकर सुला देना चाहिए और धीमे-धीमे पंखा झलना चाहिए। फिर तो भावजी न्याय और धर्म की ऐसी बारीक बातें कहाँ होंगी कि स्वयं आकाश में विराजित धर्मराज को भी जिनका ज्ञान नहीं होगा !"

"हाँ सामी ! तुमने भी अग्रहार छोड़कर, चोलेत्री का धन्धा अपनाया, वरना किसी दिन तुम भी इस मजे का रस चूसते। और दिल्ली का कौन सा हाल तुम सुना रहे थे ?"

"दिल्ली के सुलतान ने समस्त उत्तरापथ और आधा दक्षिणापथ लूट

कर अपार सम्पदा एकत्र की। एकत्र भी कितनी की? कहते हैं कि सुलतान को अपना यह ख़ज़ाना अपनी आँखों देखने का बड़ा शौक था! उसके सामने उसके एक सौ गुलाम खज़ाने का माल टोकरियों में सजाकर रखते जाते। इस काम में एक प्रहर बीत जाता। कभी मस्ती में आकर सुलतान इस खज़ाने के नीचे अपने गुलामों को जीवित गाड़ देता! ऐसा था वह खज़ाना! धन का भण्डार! दो हज़ार वर्ष तक राजाओं, महाराजाओं, सम्राटों और व्यवहारियों ने जो कुछ एकत्र किया—वह सब सुलतान के इस खज़ाने में प्रस्तुत था!

"इसके बाद दिल्ली में दंगल मचा! कैसे मचा, किसने मचाया, क्यों मचाया—इसके कई कारण बतलाए जाते हैं। परन्तु दंगल मचा—यह सच है। इस दंगल में सुलतान मारा गया। उसके शाहजादे मारे गए। कलियुगी कालयवन मारा गया। सुलतान के भाई, उसका साला, सुलतान के वजीर, सुलतान की बेगमें—सभी मारे गए! बड़े-बड़े अमीरों की बेगमें बाज़ार में एक-एक जीतल में बेच दी गईं। और खुशरू खाँ गुजराती के नाम का डंका बज गया!...अंत में यह गुजराती भी मारा गया और इस बखेड़े में खज़ाना जाने कहाँ लोप हो गया! आज तक उसका पता नहीं! और आज के दिल्ली सुलतान के पास भंडार तो क्या, दैनिक ख़र्च भी कठिनाई से चल रहा है। इसीलिए तो उसने चमड़े के सिक्के चलाए हैं!"

"अच्छा!"

"हाँ, यही बात हैं। लाखों लोग लूटे गए। लाखों मारे गए और अन्त में सब के हाथ खाली हो गए। लक्ष्मी क्या इस प्रकार हाथ में आती है? वह तो धरती से पैदा होकर इस तरह धरती में समा जाती है कि हम तो देखते ही रह जाते हैं!"

"ठीक! परन्तु इसके समक्ष आकाश में ऊँचे से ऊँचा क्या दृष्टिगोचर होता है?"

"वह है गोमटेश्वर की प्रतिमा! वेलगोला की सीमा में हम आ—पहुँचे हैं।"

"हाँ भावजी! अब, सँभलकर रहना। यों तो गोमती अम्मा का कलेजा

मोम-जैसा नरम है। और यों नेपाल के लाल माणिक की तरह कठिनतर है! उसे तो कोई भी खंडित नहीं कर सकता, लहू जैसे लाल रंग का है! यदि कार्यरत होलेय को चोट पहुँचती है तो गोमती अम्मा अपने हाथ से पट्टी बाँधती है। अपने बिछौने पर उसे सुला देती है और स्वयं पंखा झलती हैं, परन्तु यदि कोई होलेय मर्यादा का उल्लंघन करता है तो अपने हाथों मगर की पूँछ के चाबुक से उसकी जीते जी खाल उतार लेती है! जिसे देखकर दूसरों को भी मूर्छा आ जाती है। परन्तु उसका हृदय तनिक भी द्रवित नहीं होता! ऐसी हैं गोमती अम्मा!"

"सोमसामी, जिस दिन हम चले थे, उसी दिन मैंने तुमसे कहा था कि सालुवा माँगी के अपरिचित जाल में फँसकर, शर्त रखकर मैंने भूल की है। फिर भी बार-बार तुम मेरे सामने गोमती की बात किसलिए करते हो? अपने पर किए गए उपकार से प्रेरित होकर ही क्या तुम बारम्बार मुझे उससे डराने और प्रभावित करने का प्रयत्न करते हो?"

"नहीं भावजी! नहीं! औरत की जात है तो जल्दी या देरी से, मगर उसे शादी तो करनी ही पड़ेगी। इसमें कोई बाधा वह नहीं डाल सकती। पुरुष तो क्वाँरा रह सकता है, लेकिन, स्त्री, कहीं, क्वाँरी रही—यह तुमने कभी सुना है?"

"मतलब यह कि मैं उससे विवाह न करूँ, यही न?"

"नहीं, यह नहीं भावजी, तुम जरूर उससे विवाह करो! मैं तो कहता था कि आप मेरी मजाक किया करते हैं कि बोमाया तेरे सिर पर उपले पाथती है! सो, अब मैं तुम्हें गोमती अम्मा के सामने देखूंगा किस तरह रहते हैं! अरे भावजी, मेरी पत्नी तो मेरे माथे पर सिर्फ उपले ही पाथती है, भले पाथे न बेचारी, किंतु तुम्हारी लुगाई तो तुम्हारे सिर पर खड़ी होकर नाचेगी! और उस दृश्य को मैं देखूंगा, देखकर अपनी आँखें ठंडी करूँगा। और तुम से कहूँगा कि मुझ पर जो बीती वह अब तुम पर बीत रही है!"

"अच्छी बात है! कौन नाचता है और कितना नाचता है और कब नाचता है—यह तो दुल्हिन के आने पर देखा जायगा! सोमसामी, तू नहीं

जानता ! मैं भालारी बिबोया, मदमत्त मातंग को भी मैं अपनी एड़ी के नीचे दबाकर रखता हूं। फिर खंडित स्वभाव भी लड़की की तो मज़ाल ही क्या है ! एक बार मेरी शर्त पूरी होने दे, फिर तेरी चोलेत्री में तेरे और तेरी घरवाली के सामने, शराब पिलाकर मदमत्त बने हाथी को खड़ा कर दूंगा और दूसरी ओर तेरी इस गोमती देवी को, और तुझे बता दूंगा कि दोनों में कौन अधिक नाचता है, मोम की तरह नरम बनकर !"

"भावजी, आपने हाथी देखे हैं और मैंने गोमती अम्मा को देखा है। मेरी चोलेत्री में भावजी, यदि तुम्हारी ही नाचने की बारी न आई तो मेरा सिर तुम्हारी जूती ! यदि तुम नाचे तो मेरी बोमाया तुम्हारे माथे पर एक उपला पाथेगी !"

बिबोया हँसने लगा। खिलखिलाकर हँसने लगा—"खूब ! खूब ! खूब ! स्वीकार है। स्वीकार है सिर्फ़ थोड़े से फेरफार के साथ ! जूती मारने की मेरी बारी आने ही वाली है। यह जूती मैं खुद नहीं मारूँगा, तेरी बोमाया के हाथ तेरे सिर पर मरवाऊँगा !"

"स्वीकार है ! बोमाया के हाथों जूती खाने में कौन-सी बुरी बात है ! अरे भावजी, जो आदमी अपनी औरत के हाथों से जूती खाता है, वही उसके हाथों बने स्वादिष्ट भोजन भी पाता है। स्वीकार है तुम्हारी शर्त।"

"सामी ! बोमाया और स्वादिष्ट भोजन के अतिरिक्त तुझे और भी कुछ सूझता है ?"

"कभी कभी बोमाया को चोलेत्री सौंप कर, किसी मित्र के साथ भटकने की सूझती है, तब जहाँ तक मेरी बनती है उस मित्र-बन्धु का ब्याह करके ही लौटता हूँ।"

"सामी, तुम्हारे मुंह में शक्कर ! सच पूछो तो मुझे विवाह का आकर्षण नहीं है। लेकिन, विवाहोपरान्त सालुवा मांगी का मुंह देखने में अत्यंत आकर्षण है। फिर जो वह उसकी आशा पूरी करे तो सब कुछ तुझे दान में मिल जाएगा।"

"कल्याण हो !"

"यह क्या ? यह क्या ? सामी ! गोमटेश्वर की प्रतिमा के सिरे पर

आकाश में काला-काला लाल-लाल क्या दिख रहा है ? अरे देख तो सही, ऐसा लगता है—काले-काले हाथी उड़कर, आकाश में मँड़रा रहे हैं !"

"आग लग रही है आग ! भयंकर आग लगी है।"

दोनों व्यक्ति अपनी बातचीत भूलकर, तेज़ कदम बढ़ाकर चलने लगे !

आग अधिक और अधिक गहरी होने लगी ! उसकी गोलाई बढ़ने लगी। हाथी की शक्ल के घने-गहरे बादल एक पर एक चढ़कर अम्बर में मँडराने लगे !

भँवरों की भिनभिनाहट-सा कुछ सुनाई देने लगा ! ज्यों-ज्यों वे निकट और अधिकाधिक निकट पहुँचते गए, त्यों-त्यों कोलाहल अधिक गहरा और आग अधिक वेग से बढ़ती प्रतीत होने लगी !

अब उन्हें भागते हुए लोग दिखाई दिए !...

और अब वे किसी भयंकर दंगल की पृष्ठभूमि के समीप आ-पहुँचे !

घायल लोगों की चीत्कार और चीखें सुनकर वे स्तब्ध होकर खड़े रह गए और उन्हें एक आर्तनाद हवा में गूँजता-सा सुनाई दिया—

"पानी....पानी...पानी....अरे कोई अर्हंत के नाम पर एक प्याला पानी पिलाओ !"

: ११ : परत्वेगी का विद्रोह

दौड़कर मोनसामी ने घायल आदमी का सिर अपनी गोद में रख लिया ! विवोत्रा ने उसे पानी पिलाया ! फिर चकमक से एक काड़ी जला-कर उसके प्रकाश में घायल व्यक्ति का चेहरा देखा ! उसकी देह पर घाव तो ज्यादा नहीं थे। रक्त का स्रोत भी नहीं नज़र आता था ! लेकिन घाव से अधिक घाव का भय उस पर हावी था ! इसी कारण वह भयभीत एवं प्रकम्पित था !

"तुम....तुम...तुम....कौन हो ? घायल आदमी ने उठकर भागने की कोशिश में कहा।

"शांत रहो भावजी, भागने के लिए काफी वक्त है। हम से कहां भाग रहे हो ? हम तुम्हारे शत्रु नहीं हैं।"

"तुम...तुम....होलेय नहीं ? तुम टोटी के आदमी नहीं ?"

"अरे सामी ! ज़रा अपने भय से बाहर देख ! हम क्या तुझे होलेय-जैसे नज़र आते हैं ? हम तो टोटी को पहचानते भी नहीं हैं। अब, उठ खड़ा हो जा ! यों कायर की तरह क्या पड़ा है ? तुझे कहीं चोट तो नहीं लगी है !"

"चोट नहीं ? मेरे शरीर पर कोई घाव नहीं ? क्या कहते हैं आप ? एक सौ होलेय पत्थर और लाठियां लेकर मेरे पीछे पड़ गए थे ! और आप कहते है मुझे चोट नहीं लगी ? क्या आप यह जानते हैं कि चोट और ज़ख्म किसे कहते है !"

"चोट की बात अब तू रहने दे मेरे बहादुर ! और एक ही बात सुनले ! घायल आदमी तेरी तरह, कड़कड़ाहट में कुछ बोलता-सुनता नहीं। अब उठकर खड़ा हो जा !"

अपने आप को घायल मानने वाले व्यक्ति ने देखा कि सम्मुख उपस्थित व्यक्ति ऐसे नहीं है कि उसकी सेवा-परिचर्या करें ! और वे कौन हैं—यह वह नहीं जानता था। परन्तु इतना स्पष्ट था कि उसकी मिज़ाजपुरसी में वक्त बरबाद करने वाले तो वे नहीं ही थे ! धीरे-धीरे कराहता हुआ उठ खड़ा हुआ।

"क्या बात है ?"

"अरे, बात के बारे में क्या पूछना ? आप को यदि पूछना ही है तो यह पूछिए कि क्या बात नहीं है ? आसमान नहीं फटा, धरती रसातल में नहीं गई—ये दोनों बातें नहीं, शेष सभी बातें हैं !"

"ये भी हम समझे, आगे बताओ !"

"बेलगोला के होलेयों और पालेरों ने विद्रोह किया है।"

"होलेयों ने विद्रोह कर दिया ? अरे जा, जा ! होलेय कभी द्रोह करते हैं ? करना भी चाहें तो उन्हें कौन करने दे ?"

"कौन करने दे, कैसे ? टोटी।"

"टोटी ? यह टोटी कौन है ?"

"अरे वही है, वीरवणिकों की पूर्वदा का द्रोही, नीच होलेय ! उसी ने सभी होलयों और पालेरों को एकत्र कर आक्रमण कराकर, विद्रोही कराया है।"

"भाई, तुम विद्रोह, विद्रोह तो कब से तोते की तरह रट रहा है पर यह नहीं बतला रहा है कि विद्रोह में आख़िर उसने किया क्या ?"

'ठहरो ! पहले मुझे यह देख लेने दो कि मुझे कहीं चोट तो नहीं आई !'

"देख ले वीर पुरुष ! अच्छी तरह देख ले। देखने से पहले ज़रा अपना नाम तो बतला ?"

'मेरा नाम तुम नहीं जानते ? क्या तुम बेलगोला में नहीं रहते ?"

नाना छप्पन देशों ने मेरा नाम जाना यह सत्य है! मैं आगामी कल का पृथ्वीसेट्टि हूँ।"

"भावजी, ऐ भावजी! हम तो वेल्लगोन्डा के रहने वाले नहीं हैं। नहीं नाना छप्पन देशों में रहते हैं। न ही आज के पृथ्वीसेट्टि का ही नाम जानते हैं। अब जो अपना नाम बतलाने की तुम्हारी मर्जी हो तो ठीक, वरना, हम यहाँ आगे बढ़ते हैं।"

"नहीं, नहीं, तुम चले मत जाना! मेरा नाम अपरिचित नहीं है। मेरा नाम—वरजांग सेठ—पृथ्वीसेट्टि वायीजन का मैं भांजा हूँ और भांजे के अतिरिक्त उसका जामाता हूँ और आगामी कल का पृथ्वीसेट्टि हूँ! अगर 'आगामी कल' सचमुच आया!"

"अरे ओ बहादुर! तुझे घाव लगता है या नहीं लगता है; तू पृथ्वीसेट्टि बनता है या नहीं बनता है, चाहे जो हो, परन्तु आगामी कल तो जरूर आने वाला है।"

सोमसामी ने पूछा—"वायीजन सेठ का नाम तो जगत्प्रसिद्ध है। उसकी कौन सी कन्या के तुम प्राणनाथ हो?"

"वायीजन के मात्र एक पुत्री है और उसका नाम है—गोमती। हमारी दाक्षिणात्य परम्परा के अनुसार वह मुझ से विवाह करने को बाध्य है। सिर्फ़ मेरी माता के, मेरे मामा और भावी ससुर को, संकेत देने मात्र की देरी है! बहन अपने भाई से उसकी पुत्री की माँग—अपने पुत्र के लिए जब करती है, तब भाई मना कर ही नहीं सकता—यह है हमारी परम्परा!"

यह सुनकर बिबोया ने जोर से निःश्वास लिया। सोमसामी ने बात आगे बढ़ाई—"यह है तुम्हारी परंपरा! अच्छा! तुमने इसके व्यवहार और आदेश अच्छी तरह कंठस्थ कर लिए हैं! इस विवाह के विषय में गोमती अम्मा भी तैयार होंगी, क्यों है न?"

"वाह, वह क्यों नाराज़ होने लगी, भला? और परंपरा के पालन में राज़ी-नाराजी का प्रश्न ही कहाँ उठता है?"

"परन्तु" सोमसामी ने कहा—"इस समय यह परंपरा संकटग्रस्त है, क्या

यह सच नहीं ? परम्परा के अनुसार तो होलेय....क्या समझे ?...अभी ही तुमने बतलाया है कि द्रोह जैसा कोई काम किया है ।"

"हाँ. यह सच बात है । अरे, सभी होलेय और सभी पालेर उठ खड़े हुए हैं । टोटी आया था गोमती अम्मा के पास । और उसे गोमती जी ने मोहलत दी । टोटी रायरेखा के प्रमाणानुसार परचेरी के अधिकार माँगता था । गोमती बोली—यहाँ कैसा राय और कौन-सी रेखा ! तुझे जाना हो तो यहाँ से लम्बा बन ! एक प्रहर के वाद तू जहाँ होगा, वहाँ मैं तुझे पकड़ लूँगी और जीवित ही तेरी चमड़ी उतार लूँगी ।"

"किसी होलेय की चमड़ी उतारनी हो तो उतार लेनी चाहिए, उसमें भला एक प्रहर की मोहलत की क्या ज़रूरत ?" सोमसामी ने पूछा ।

'वह तो....वह....क्या नाम है उसके राज्य का....कुछ अजय....विजय-जैसा...वही उसका महामंडलेश्वर आया था....टोटी-बोटी का पक्ष लेकर !"

"कौन ? रायहरिहर स्वयं वहाँ आए थे ?"

"हाँ, आए थे हम वीर वणिकों को समझाने के लिए । परन्तु हम वीर वणिक क्या मंडलेश्वर् के कहने भर से अपनी परम्परा छोड़ दें ? न छोड़ दें फिर भी वह महामंडलेश्वर तो रहा न ? अतएव, गोमती ने उन्हें एक प्रहर की मोहलत देकर कहा कि बेलगोला छोड़ दें । और अपने होलेयों को समझा-बुझाकर वापस काम पर लगा देने के लिए—टोटी को भी एक प्रहर की मोहलत दी !"

"फिर ?"

"फिर एक प्रहर पश्चात् टोटी को पकड़ लेने के लिए और राय हरिहर यदि बेलगोला की हद में हों तो, उनका वध करने के लिए स्वयं तैयार हुई । उसने वीरवणिकों की सेना सज्जित की और मुझे उस सेना का नायक बनाया ! लेकिन सेना ने तो कूच करने से साफ इंकार कर दिया ! वह तो उल्टी, बिगड़ चली !"

"ऐसा, कैसे हुआ !"

"अरे भावजी ! वीर वणिकों की सेना भी तो होलेयों और पालेरों से बनी है ! इसलिए, कूच का हुक्म पाकर, कूच करने के बजाय वह तो बिफर

कर वीर वणिकों पर ही टूट पड़ी ! फिर तो दूसरे होलेय पालेर भी उसमें आ मिले !...फिर टोटी उनका अगुआ बना और आगे बढ़ा ! फिर...आप वह देखिए, वह रही आग ! आग ! होलेय हमारे भांडारों और गोदामों में आग लगा रहे हैं ! उन्होंने हमारे खेत, खलिहान और भवन, प्रांगण जला दिए हैं !"

"यह सारा उत्पात वेलगोला में ही हो रहा होगा ?"

"हां जी, समस्त व्यापार जहाँ होता है, जहां मणिग्राम होता है, भाडार होते हैं, वहीं तो यह उत्पात हो सकता है ! आप भी कैसा सवाल पूछ रहे हैं !"

"नहीं, मै तो कहता हूँ; यहाँ कोई भांडार नहीं, मणिग्राम नहीं, फिर भी यहाँ आपका पधारना कैसे हुआ ?"

"अरे एक सौ होलेय मेरे पीछे पड़ गए थे। सभी वार्यीजन भी हवेली पर चढ़ाई करने जा रहे थे।"

"तो हवेली की ओर जाने के बजाय आप....आप तो पृथ्वी सेट्ठि के जामाता....गोमती के भावी पति...भावी पृथ्वीसेट्ठि....आपको हवेली में ही जाना चाहिए था, फिर ?"

"जाने की राह भी तो साफ हो ? हवेली बंद है और उसके चारों ओर चींटी दल की तरह होलेय और पालेर चिपटे पड़े है। इसलिए.... ।"

सोमसामी ने बिबोया और वरजांग के बीच यह प्रश्नोत्तर चलने दिए और स्वयं वह इधर-उधर देखता रहा। उसने वरजांग की बात समझने का यत्न किया—कुछ उसे अपूर्ण प्रतीत हुई। यहां कुछ लाशें भी पडी थीं। मरे हुए एक दो घोड़े भी पड़े थे। वरजांग की बात यदि सच है तो इनमें से कोई यहाँ न होना चाहिए।"

उसने वरजांग से पूछा—"परन्तु सेठ, लगता है यहाँ भी किसी वक्त बखेड़ा बना है।"

"बखेड़ा न ? मेरे आने से पहले हुआ होगा ! जब हमारे होलेय और पालेर दोरंगियों ने गोमती अम्मा का हुक्म मानने से इंकार कर दिया, तब टोटी को पकड़ लेने के लिए और राय हरिहर का काम तमाम कर देने के

लिए कुछ वीर वणिक नौजवान निकले थे ! गोमती भी उनके साथ जाने-वाली थी परन्तु ऐन वक्त पर हमारे बड़े व्यवहारी ने गोमती को रोक लिया—इस समय कुछ भी हो वह पृथ्वी सेट्ठि की मुद्रा धारण करती है और उसके आसन पर बैठती है। बड़े व्यवहारी ने कहा था कि वायीजन सेठ की स्पष्ट स्वीकृति के सिवाय गोमती को मैं नौजवान वणिक सिपाहियों के साथ नहीं जाने दूंगा। अब तो गोमती घबराई। और उन नौजवानों ने बड़े व्यवहारी की बात मान ली और वे आगे बढ़ गए।

"अच्छा फिर क्या हुआ ?"

"बाद की बात मालूम नहीं।"

"तुम उन नौजवानों के साथ नहीं ही रहे होगे ?

"नहीं जी ! पृथ्वी सेट्ठि की मुद्रा धारण करने वाला यदि युद्ध में जाने का खतरा नहीं उठा सकता तो भला भावी पृथ्वी सेट्ठि भी युद्ध में कैसे भाग ले सकता है ? इसलिए मैं घर के भीतर ही रहा !"

"बहुत अच्छा किया ! इसका अर्थ यह निकला कि तुम न तो उन सिपाहियों के साथ गए, न गोमती के पास गए। तुम सच्चे वीर हो ! वाह ! और वीर वणिकों को तुम जैसा पृथ्वीसेट्ठि कदापि नहीं मिल सकता, इसमें कोई संदेह नहीं। मगर फिर सिपाही किससे लड़े ? लड़ाई का अंजाम क्या निकला ? इसकी भी कोई खबर-वबर है ?"

"नहीं, होलेयों का उत्पात बाद में शुरू हुआ था। टोटी बचा रह गया था। क्योंकि वह तो इस उत्पात का अगुआ है। और मैंने उसे देखा भी है। बाकी दूसरे लोगों का क्या हुआ यह अर्हंत जानें, मैं नहीं जानता !"

"महामंडलेश्वर राय हरिहर तो सही-सलामत चले गए न ?"

"यह भी अर्हंत जानें, मैं नहीं जानता।"

इस आदमी से अधिक बात करने में कोई लाभ नहीं है—यह सोचकर बिबोया ने कहा—"सोम भावजी, चलें हम !"

"अरे, मुझे यों अकेला छोड़कर आप कहाँ जा रहे हैं ?"

"तुम्हें कहाँ जाना है ?"

"मुझे बस बेलगोला की सीमा से बाहर रख दो।"

"मगर तुम बेलगोला की सीमा से बाहर नहीं जा सकते। तुम्हें जाना हो तो यह रहा रास्ता।"

"लेकिन कुछ दूर तो मुझे पहुँचा दो, फिर मदुरा तक मुझे कोई कुछ न कह सकेगा।"

"यों करो, तुम कुछ देर खड़े रहो। हम ज़रा आपस में सलाह कर लें।"

"ज़रूर! मैं यहीं खड़ा रहता हूँ।"

बिबोया और सोमस्वामी तनिक दूर जाकर खड़े हो गए।! सोमस्वामी ने कहा—

"भावजी! रायहरिहर का क्या हुआ होगा?"

"महामंडलेश्वर तो गए थे मदुरा—राजसन्यासी का मस्तक लाने के लिए। मस्तक को सुलतान ने भाले पर चढ़ाकर रखा है। फिर मदुरा से मंडलेश्वर यहाँ कैसे आ गए? क्यों आए?...कुछ समझ में नहीं आता।"

"क्यों आए, यह तो वे खुद ही जानें और सोनैया नायक कर्णाधिप जानें। हमें यह सब जानकर क्या करना है? हमारा तो एक ही काम है: वे यहाँ से कहाँ गए? गए या नहीं गए?' बिबोया ने कहा।

"हाँ, तुम्हारी यह बात सच है। और एक दूसरी बात भी तुम्हारी समझ में आई या नहीं?"

"कौन सी दूसरी बात?"

"यह वरजांग सेठ मदुरा जा रहा है।"

"इसमें हमें क्या लेना देना?"

"तुम समझे नहीं!"

"नहीं?"

"यह मदुरा के सुलतान से सहायता माँगने के लिए जा रहा है।"

"ऐं!...अरे...यह...यह....यह क्या सच है!"

"यों करें—इस कायर को पकड़कर—यह अगर समझाने-बुझाने पर सीधे रास्ते पर न आए तो जबरन्—वापस इसे बेलगोला ले जाएँ। वहाँ टोटी से हम मिलें।"

"क्यों?"

"एक तो तुम्हारी अपनी राज्य-सेवा। दूसरी तुम्हारी अपनी शर्त—दोनों को ही क्या तुम भूल गए ?"

"नहीं भूला ! परंतु तुम्हारा मतलब क्या है ?"

"यदि मदुरा के सुलतान को वीरवणिकों की ओर से आमंत्रण मिलता है तो वह हमारे विजय धर्म राज्य के लिए संकटपूर्ण होगा ! मदुरा के सुलतान को, कावेरी के इस पार और द्वारसमुद्र के सन्निकट, अपने पैर टिकाने का मौका मिल जाएगा तो खतरा बढ़ जाएगा। इस काम में वीर वणिकों का धन उसका मददगार बनेगा ! अतएव इस संकट को जड़मूल से ही रोक देना होगा। दूसरी बात यह है कि टोटी से मिलने पर राय हरिहर के कुशल-समाचार भी ज्ञात हो जाएँगे। होलयों का समाधान कर देंगे तो गोमती अम्मा भी...समझे सालुवा माँगी वाली बात ?..."

"हाँ, समझ...गया ! समझ गया ! तो हम वरजांग को पकड़ चलें ?"

"पकड़ना ही नहीं, ले चलना है इसे।"

"यों सही।"

"गोमती और सरकारी सेवा दोनों कामों की कर्त्तव्य-पूर्ति का यह अच्छा अवसर प्रतीत होता है !"

"शायद, परन्तु महामंडलेश्वर....।'

"महामंडलेश्वर का काम सबसे पहले। यदि राय को कुछ हो गया है, और हम उनके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं तो, हमें उनके उपयोग में आना चाहिए। और यदि न होने योग्य कोई अघटित घटना घटी है तो सबसे पहले हमें महाकर्णाधिप को यथाशीघ्र सूचना देनी चाहिए। तुम तो जानते हो कि हमारे यहाँ रहते, यदि महाकर्णाधिप इस तरह अजान रहें तो, तुम्हें तो ठीक पर मुझे कभी क्षमा नहीं करें !"

दादैया सोमैया का प्रेम अपार है, परंतु उनका विकराल कोप भी कुछ कम नहीं है। वह भी उतना ही अनन्त है। तब तो, हम बेलगोला की ओर ही बढ़ें—'

जहाँ वरजांग उनकी राह देखता खड़ा था, दोनों वहाँ गए !

दूर पर कोलाहल गरज रहा था ! और तेजी से आग के गोले उठ रहे थे।

वरजांग लौटकर वेलगोला नहीं ही जाना चाहता था। उसकी आँखें मदुरा पर ही लगी थीं। परन्तु उसे रजामंद कर देने के प्रयत्न विवोय को व्यर्थ ही प्रतीत हुए!

अतः वरजांग का एक हाथ सोमसामी ने पकड़ा। दूसरा हाथ विवेग्दा ने थाम लिया और यों वरजांग को लेकर वे वेलगोला की ओर बढ़ गए!

'आग, ज्वाला और कोलाहल तो अब भी बढ़ते जा रहे थे!

मानो कि कालनेमि की कालरात्रि में मसान जग गए हैं और नाचने के लिए भूतों की टोलियाँ बाहर निकल आई हैं, इस तरह, अन्धकार की काली छाया में सुलगती हुई ज्वालाओं के आसपास आधे वस्त्र पहने और आधे नंगे लोगों की भीड़ें नाच रही थीं! पल-पल पर भयंकर विस्फोट हो रहे थे। वीरवणिकों के व्यापार-वनज के लिए तरह-तरह के सरंजाम भंडारों में भरे थे, इस समय वे विशाल भंडार धक्-धक् जल रहे थे। उनमें से कई रंगों के धुएँ उठ रहे थे! तरह-तरह की सुगन्धियाँ और तरह-तरह की हवाएँ उड़ रही थीं। इन हवाओं के कारण लोग छींक रहे थे, उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे और वे बुरी तरह जल रही थीं!

आग और ज्वाला का निचला भाग सुघर पतले आकार और हल्के रंग का था, और ऊपर रंग-बिरंगे धुएँ लहरा रहे थे—मानो विनाश का मेघ-धनुष धरती से आकाश की ओर बढ़ा है, चढ़ा है!

चारों ओर हज़ारों होलेय और पालेर—नर और नारी, मानो पागल बन गए थे! उनका क्लेश और रोष आज भड़क उठा था! पीढ़ी-दर पीढ़ी से उनकी पीठ पर जो चाबुक पड़ते रहे थे, उनका सबका एकत्रित प्रतिशोध आज लिया जा रहा था!

एक हज़ार साल में—हज़ारों हज़ार सालों में, समर्थ और स्वायत्त माने जाने वाले और अपने व्यवहार और अपने सामर्थ्य से नाना छप्पन देशों को प्रभावित करनेवाले वीरवणिकों के संगठन की कड़ी निर्बल पड़ गई थी और आज वह इस अग्निज्वाला के प्रकाश में जगत भर को दृष्टिगोचर हो रहा थी!

वीरवणिक काफिले रखते, हाथी रखते, घोड़े रखते, सेना रखते और इस समस्त समुदाय और सम्प्रदाय का अनन्त भार होलेयों पर था !

और वही होलेय आज बिफर उठे थे !

परचेरी का बलवा, परचेरी की बग़ावत आज फूट निकली थी !

प्रत्येक प्राणी और व्यक्ति को उसके पद और स्थान के अनुसार, उसके व्यवसाय के अनुकूल, मनुष्यता के व्यवहार-संबन्धों के अधिकार अवश्य प्राप्त होने चाहिए और शेष दूसरे लोगों के अधिकारों का सम्मान करना चाहिए—अर्थात् व्यक्ति को अपना जीवन अपनी इच्छा के अनुरूप बिताने का अधिकार है और दूसरों को भी अपने व्यवहार और व्यवसाय के अनुकूल जीवन जीने का अधिकार है और परस्पर हस्तक्षेप न करने का उत्तरदायित्व भी उन पर है !

और इन उत्तरदायित्वों और अधिकार भावनाओं से सम्पन्न मर्यादा से राजा भी बँधा था। राजा भी पूर्वदा से परे नहीं जा सकता था और पूर्वदा का निर्णय करनेवाले थे राजगुरु। राजगुरु किसी को किसी की मर्ज़ी पर नहीं बनाया जा सकता था ! चारों समय के धर्माचार्यों में जो सबसे वयोवृद्ध होता, वही राजगुरु बनता ! कर और महसूल के सम्बंध में सरकार पूर्व परम्परा से बाध्य थी, वह अपनी इच्छानुसार कर नहीं लगा सकती थी !

राज्य की आय का साधन था—'तेरीग व्यवहार'। प्रतिवर्ष नये वर्ष के दिवस पर—अर्थात् महानवमी के दूसरे दिन, दशहरे के दिन—महामात्य राज्य के आय-व्यय का हिसाब महासमिति के सम्मुख प्रस्तुत करते ! इस महासमिति में राजगुरु, दण्डनायक, वयोवृद्ध-दुर्गपाल, पृथ्वीसेट्ठि और कुंभकारसेट्ठि—यों, पाँच पंच सदस्य होते। प्रत्येक व्यक्ति से, विभिन्न कर और महसूल मिलाकर कुल आय का अधिक से अधिक तीसवाँ भाग लिया जाता था ! इसी व्यवस्था को 'तेरीग' कहते थे। प्रत्येक ग्राम में राज्याज्ञा की घोषणा—उस ग्राम विशेष के इदांगी और वालांगी के संयुक्त ग्राम-महाजन अथवा नगरजन के द्वारा ही होती थी !

और धर्मसभा न्यायदान* देती ! न्याय कार्य निमित्त सर्वाधिकारी थे राजगुरु। मुख्य नियामक था दण्डनायक। प्रत्येक मंडल और 'नाडु' के लिए 'अधिकारिक' का निर्वाचन होता। वे ब्राह्मण, वणिक और बेसवागों की सहायता से न्यायदान देते !

और परचेरी के अधिकार भी दिए गए थे। होलेयों और पालेरों को पर—'गुलामी' का कोई बन्धन न था। 'होल' का कोई चिह्न उन पर न था। वे सिर्फ श्रमिक ही थे। उन्हें कहीं बेचा नहीं जा सकता था। उनके बच्चों और पत्नी पर मालिकों का कोई हक़ नहीं था। होलेयों को पढ़ने-पढ़ने का अधिकार प्राप्त था। निवास का हक़ था। और अपनी मजदूरी आप खुद ठहराने का हक़ हासिल था।

परचेरी की एक विशेषता थी : मजदूरी के दर, सिर्फ एक साल के लिए ही ठहराए जाते थे। इस अवधि में मालिक उन पर किसी प्रकार के अत्याचार नहीं कर सकता था—चाबुक या कशा का उपयोग नहीं कर सकता था !

—ये थे परचेरी के अधिकार !

विजयधर्म-राज्य के महामंडलेश्वर जहाँ-जहाँ रायरेखा के प्रचार के

---

*दक्षिणापथ में न्यायप्रणाली स्पष्ट थी। न्याय का प्रत्येक कार्य न्यायाधीश विशेष करता। न्यायाधीश की सहायता के लिए ब्राह्मणों, वणिकों, और बेसवागों के महाजनों के प्रमुख उपस्थित रहते। इन सदस्यों का काम था हकीकत सुनना और पाना और न्यायाधीश का काम था दंड देना। इस विषयक अधिक जानकारी के लिए 'मृच्छकटिक' नाटक में 'चारुदत्त' पर हत्या के आरोप और उसकी कार्यवाही का परिच्छेद पढ़ना चाहिए। विजयनगर राज्य में न्यायप्रणाली का प्रबन्ध अत्यन्त स्पष्ट और लोकविदित था। तत्कालीन भारत में विजयनगर जैसी न्याय-व्यवस्था कहीं नहीं मिलती ! यद्यपि अन्यान्य राज्यों में भी न्यायदान की समुचित व्यवस्था थी, परन्तु उसके नियमोपनियमों का लिखित विधान-'रायरेखा' में जिसप्रकार विवरणपूर्वक दिया गया है, उस प्रकार कहीं नहीं दिया गया !

लिए जाते; वहाँ-वहाँ के लोगों के समक्ष होलेयों और पालेरों के इन अधिकारों का स्पष्टीकरण करते! मालिकों को समझा-बुझाकर अधिकारों के विषय में स्वीकृति लेते और आगे बढ़ जाते! इसका उद्देश्य था—होलेय और पालेर भी महान विजयधर्म राज्य की रक्षा के निमित्त तुरुष्कों के विरुद्ध जूझने के जोश में भर कर, जागकर, खड़े हो जाए!

और होलेय और पालेर मात्र ने विजयधर्म साम्राज्य की इस बात को अपने मन में जगह दी। हजार साल के बाद एक धर्मगुरु और एक महामण्डलेश्वर उनकी ओर से पैदा हुआ। वे लोग उसके लिए प्राण देने को तत्पर हो गए। गाँव-गाँव से होलेय और पालेर उसकी सेना में भर्ती होने के लिए निकल पड़े।

बेलगोला के वीरवणिक स्वायत्त थे। सैकड़ों वर्षों से गोमटेश्वर की प्रतिमा के जहाँ तक दर्शन होते हैं वहाँ तक की परिधि में उनके सिवाय, दूसरे किसी का शासन नहीं था।

होलेय और पालेर के आधार पर चलने वाला वीरवणिकों का व्यवहार आज तक सबल था। परन्तु जब परचेरी की हवा बही, तब उनके लिए विपदा के दिन आए! यद्यपि उनका व्यवहार उनकी आन और उनका ईमान नाना छप्पन देशों में मशहूर था और उनकी जाहो-जलाली जगत् में जाहिर थी। पर उनकी यह समस्त शान-शौकत गुलामों की गुलामी पर आधारित थी।

परिणामतया बेलगोला में आग और ज्वाला का ताण्डव फूट निकला। जिस जगह रायहरिहर स्वयं चलकर आए, गोमती अम्मा ने वहाँ से उन्हें निकाल दिया। इतना ही नहीं, उसने तो राय के वध की इच्छा भी घोषित की! परचेरी के अधिकारों का महान् द्रष्टा रायहरिहर, और उसके लिए, परचेरी के लिए जूझने वाला होलेय-नेता टोटी—इन दोनों को दी गई गोमती की धमकी की बात सुनकर बेलगोला के होलेय मानों क्रोध से पागल हो गए।

गोमती रायहरिहर का पीछा करने वाली थी और वह टोटी की खाल

उतारने वाली थी परन्तु उसके ख़याल में एक बात न आई कि उसके ये कार्य सिर्फ होलेयों की सहायता से ही हो सकते थे।

होलेय बिगड़ बैठे। उनके हाथ में कोई हथियार न था सिर्फ़ आग थी। यही आग जल उठी और वीरवणिकों के सात सागरों में रात दिन दौड़ने वाले जहाजों के अनन्त भंडार एक-एक कर इस आग में भस्म होने लगे!

और अब वीरवणिकों के पक्ष में मदुरा के सुल्तान की सहायता माँगने के लिए वरजांग रवाना हुआ था—सोमदत्त के जाने या अनजाने यह नहीं कहा जा सकता, लेकिन बेचारा बीच में ही विठोबा और सोमसामी के पाले पड़ गया! बड़ी आनाकानी करने वाले वरजांग को लेकर विठोबा और सोमसामी आगे बढ़े। आग अधिक और अधिक निकट आ रही थी और कोलाहल बढ़ता जा रहा था।

इस रीति से वे वार्याजन की हवेली पर पहुँचे। चारों ओर आग जल रही थी और चारों ओर होलेय पागल हाथी की तरह घूम रहे थे।

वार्याजन की हवेली के द्वार बंद थे। उसके चारों ओर होलेय घिरे हुए थे और उन सब के बीच में टोटी घूम रहा था।

हवेली के चारों ओर तेल में डुबोये हुए कपड़े, जो किसी वक्त चीनांशुक और मिस्री मलमल थे, होलेयों के हाथ सुलग रहे थे। जब वे खूब सुलग जाते, होलेय उन्हें हवेली पर फेंक देते।

और तनिक पीछे हटकर, हवेली के चारों ओर दो-तीन सौ पालेर गुलेल से गोल-गोल पत्थर हवेली की ओर चला रहे थे।

: १२ : ये निर्बल-निस्सहाय !

गोमती की मनोदशा का पार पाना सरल न था।

उसके माथे से मानो छत्र उड़ गया था। और मानो उसके पैरों तले की धरती खिसक गई थी। उसकी विचार-धारा अथवा उसके जीवन-दर्शन को कहीं पैर टिकाने की जगह नहीं थी।

भूकम्प होने पर दृष्टि में जल की जगह थल और थल की जगह जल जिस तरह हो जाता है उस तरह बेलगोला की दशा विचित्र थी। हजार साल से यावच्चद्रदिवाकरौ मानी जाने वाली पृथ्वीसेट्ठि की परम्परा जैसे आमूल नष्ट हो गई थी। मध्य समुद्र में तैरते जहाज का तल जैसे अचानक ओझल हो गया था। और उस तरह होलेय और पालेर के मनों से आदर उड़ गया था। कशा लाचार पड़ी थी और कशा उठाकर चलने वाले, कशा बनाने वाले, कशा छोड़कर इस वक्त होलेयों से मिल गए थे और इस समय गुलेल चला चला रहे थे और आग के गोले लेकर घूम रहे थे।

जिन विलास-कक्षों में अगरुचंदन के धूम उड़ते थे आज वहाँ आग और धुएँ के भयंकर धूम आँख, नाक और कानों को परेशान कर रहे थे।

बेलगोला के वीरवणिकों में से इस समय जो नगर में उपस्थित थे, वे सब विद्रोह की पहली ही ललकार पर वायीजन की हवेली में शरणागत हुए थे।

और अब शेष नगर, संगमग्मर की भव्य इमारतों वाला दिव्य नगर, निर्जन पड़ा था। लाखों स्वर्ण वराह के सिक्कों के मूल्य के भंडारों के

मालिक इस वक्त गायब थे और प्रत्येक भांडार से उठने वाली ज्वालाएं होलेय और पालेरों के अंतर में जलनेवाली रागद्वेष की ज्वाला का परिचय और अनुमान देती थीं। अचानक धरती फट जाए और उनकी दरारों से रौरव नरक के दर्शन हों उस प्रकार वीरवणिक होलेयों के इस अकाण्ड ताण्डव को देखते थे।

और वीरवणिकों का युवा वर्ग तो नाना छप्पन देशों में काफिलों के साथ था अथवा जहाजों पर बाहर गया था और बेलगोला में रह गए थे—बालवर्ग, नारीवर्ग और वृद्धवर्ग।

आज से पहले, हजार वर्ष की मर्यादा पृथ्वीसेट्टि की हवेली की रक्षा में तत्पर खड़ी रहती थी। नाना छप्पन देशों और विदेशों में भी पृथ्वीसेट्टि का सम्मान था और लोग उनके अदब करते थे। उनके अधिकार स्वीकृत थे और उनकी शक्ति, लोक-कथा के समान, ज्यों-ज्यों दूर जाते, त्यों-त्यों अधिक गहरी बनती जाती थी।

और आज लोक-कथा के मूल के अनुरूप पृथ्वीसेट्टि की पूर्तदा का मूल भी एकदम छोटा दृष्टिगोचर हो रहा था। जिस तरह हम लोक-कथा के मूल की ओर बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों उसको एकदम नन्हा और छोटा-सा और बदला हुआ पाते हैं। जिस प्रकार भगवती गंगा के मूल स्रोत के निकट जाने पर वह अत्यन्त स्वल्प दीखता है और महिमा-रहित प्रतीत होता है, उस प्रकार आज पृथ्वीसेट्टि की जगप्रसिद्ध और आदरणीय शक्ति को होलेयों ने ललकारा और उनकी चुनौती के सामने शक्ति वह कच्चे पाये की तरह पहले ही धक्के से ढह गई।

वीरवणिकों का व्यवहार, व्यवसाय और शक्ति का आधार होलेय। वे ही उनके मजदूर और कार्यकर्ता। वे ही उनके पहरुए और चौकीदार। वे ही उनके सिपाही। वे ही भूखे रहकर अपने स्वामियो के लिए अथक परिश्रम करनेवाले और हथेली पर सिर धर कर उनके लिए लड़नेवाले !

नपुंसक रोष तो सब में था। और वह तीव्र भी बहुत था। होलेय और पालेरों को परचेरी के अधिकार देने-जैसे भूत की कल्पना सबसे पहले यदि किसी ने की तो वह विजयधर्म राज्य के महामण्डलेश्वर राय हरिहर

ने। उनके ही बदन में यह भूत चढ़ा था ! उनसे पूर्व, आज तक किसी ने होलेय और पालेर जैसे गुलामों को परचेरी के अधिकार देने की बात तक न सोची थी। इसके विषय में बात भी हो सकती है, यह सोचना भी सम्भव न था और यों तो कोई पागल आदमी हाथी और घोड़े, गाय और बैलों को अधिकार देने की बात कर सकता है !

भला, कोई यह तो कहे कि होलेय और पालेरों को खिलाने-पिलाने और शरण देने के लिए सेठ लोग न हों तो बेचारे वे कहाँ जाएंगे ? आखिर उन्हें आता ही क्या है ? फिर वे क्या करेंगे ? भूखों ही मरेंगे, और क्या हो सकता है ? लेकिन यह छोटी-सी साफ सीधी बात कोई समझता क्यों नहीं ?

ये बात नहीं समझी गई...नहीं समझी गई और अब इसे समझा देने का कोई लाभ नहीं। पहला और मुख्य सवाल तो होलेय और पालेरों को वशीभूत करने का है—लेकिन यह किया कैसे जाए ?

वायीजन की उच्च अट्टालिका से गोमती नीचे मानो सात पाताल की किसी नारकीय दृश्यावली को देख रही है, इस तरह अनिमेष, होलेयों का उत्पात देख रही थी।

उसकी आँखें सूखी थीं। रात का अंधकार जगह-जगह पर सुलग रहा था। स्थल-स्थल पर आग के उठते हुए शोले अँधेरे के सीने में मानों कटार भोंक रहे थे !

लाखों वराह का माल-असबाब भस्मसात् हो रहा था। जहाँ लाखों-करोड़ों वराहों के भांडार थे, कोष थे, हिसाब-किताबों के बहीखाते थे; पेढ़ियाँ थीं—वह मणिग्राम साँय-साँय जल रहा था। और उसके हिसाब-किताब, जमा-खर्च, हुण्डियाँ और कौल, 'भरती', और 'हवाले' आग में राख बन रहे थे।

निकट ही वायीजन की हवेली के आसपास होलेयों का एक दल हवेली पर कब्जा करने के लिए प्रयत्न कर रहा था और अन्दर घुसने के लिए उसका शोरगुल बढ़ रहा था। हवेली की मोटी दीवारों को तोड़ने के लिए बड़े-बडे लठ्ठ और भाले काम में लाए जा रहे थे : हवेली के चन्दन के दर-

वाजों को जलाने के लिए उस पर आग के गोले फेंकते थे। हवेली के अंदर रहनेवालों के मनमानस को निर्बल करने के लिए चारों ओर से पत्थरों की वर्षा हो रही थी।

अंदर घुसकर होलेय क्या करना चाहते थे ?

सैकड़ों बरसों के मगरमच्छ की पूँछ से बने चाबुक की मार खा-खाकर अब उनके चेहरे भी मगरमच्छ के जबड़े जैसे बन गए थे और उनके दिल-दिमाग भी वैसे ही हठीले हो गए थे !

हवेली के भीतर वृद्ध थे और बालक थे। कुमारी कन्याएं थीं और परिणीता स्त्रियाँ थीं। विधवाएं थीं और सधवाएं थीं।

बालक काली, चीख़-पुकार मचा रहे थे; स्त्रियाँ कल्पांत कर रही थीं। वृद्ध 'अरहन्त-अरहन्त' रट रहे थे। और इतना ही विकट और विकराल कोलाहल बाहर गूंज रहा था। बाहर मानो कोलाहल का सागर सीमाएं तोड़कर गर्जन-तर्जन कर रहा था। तूफानी सागर से भी अधिक भयंकर ललकार विद्रोहिणी जनता की होती है। आज गोमती ने पहली ही बार जनता और उसकी ललकार को देखा-सुना है।

और गोमती के मन में पहली ही बार निराशा उपजी और रोष उपजा। उसे लगा कि यह तूफ़ान, यह वात्याचक्र देर-अबेर हवेली में जरूर प्रविष्ट होगा, परन्तु प्रविष्ट होकर करेगा क्या ?

गोमती के आसपास छेड़े हुए भौंरों की तरह पत्थर उड़ रहे थे !... किंतु गोमती तो पत्थर की प्रतिमा की तरह निस्पंद बैठी, नीचे देख रही थी। चारों ओर फैली-फैली ज्वाला का लाल तेज, सैकड़ों मशालों का पीला प्रकाश, सुलगाकर फेंके गए गोलों का, लाल रंग का प्रकाश....और उस प्रकाश में नाचते-कूदते-झूमते हॉलेय !...

एक पत्थर गोमती के कपाल पर लगा। क्षण भर के लिए उसका सिर चकराया और वह नीचे गिरते-गिरते बची। और तुरन्त सावधान होकर अपने कपाल के घाव को एक हाथ से दबा कर बैठी रही !

"अम्मा," सावनी ने दरवाजे की ओर से पुकारा—'अम्मा, अन्दर

आओ। ये मुर्दे इस वक्त पागल हो रहे हैं, नाहक तुम्हें चोट लग जाएगी। जल्दी से अन्दर आ जाइए!"

"अरे, तू ज़रा बाहर आकर तो देख! वह टोटी—देख तो सही, मानो अपनी लगन में मगन है! और उसकी पीठ पर तो इस समय भी मेरी कशा के घाव पड़े हुए हैं।"

"घाव की बात को वह इस समय भूल गया है, अम्मा! आप भी इस बात को भूल जाइए।"

"भूल जाऊँ? अरी पगली, इस घटना को तो मैं आजीवन अपने मन में सहेज कर रखूँगी।"—गोमती ने कहा—"उस टोटी को एक दिन मालूम हो जाएगा। अम्मा की स्मरण शक्ति बहुत तीव्र है।"

भौंरों के गुंजार की तरह सन्न सन्न् करते पत्थर उड रहे थे।

सावनी ने कहा—"अम्मा, ये मूए सब पागल बन गए हैं, परन्तु आप पागल न बनिए। अंदर आइए।"

"नहीं सावनी देख, वह रहा, टोटी नज़र आ रहा है.. आग के गोले लेकर वह दरवाज़ा जलाने के लिए आगे बढ़ रहा है। जरा देख उसका घना काला शरीर...उसके काले घुंघराले बाल...देख तो सही, होलियों के अग्रणी ने कैसा स्वांग बनाया है। और कैसा वह सजा है...देख सावनी देख...फिर फिर यह दृश्य देखना नसीब न होगा।

बड़े व्यवहारी ने सावनी के पीछे सिर बाहर निकाल कर कहा—अम्मा, अभी भी अवसर है कि कोई मध्यम मार्ग निकल आए। यह बखेड़ा आगे बढ़ जाए तो बताओ इसमें लाभ किसका होगा? चाहे जिसे हो, हमारी तो हानि ही होगी। क्षण-क्षण पर लाख-लाख बराह का माल भस्म हो रहा है। हम तो आखिर बनिए हैं, वीरवणिक कहलाते हैं। हमारी नीति है—समय पर सावधान या हानि बटोरना हमारी शक्ति के बाहर है। और इस वक्त हमारी जाति के लोग ही बाहर गए हुए है। हमारे काफिले लौटकर आएँ तब तक तो....गोमती अम्मा...किसी समाधान की...!"

गोमती एकदम तडप उठी—"समाधान? समाधान कैसा? मैं इस वक्त किसी तरह के समाधान का विचार ही नहीं कर सकती, करूँगी भी नहीं...

मैं तो य.ी देखना चहती हूँ कि होलेय ि तनी हद तक हमारे खिलाफ खड़े होते हैं !"

"परन्तु यह हानि..."

"हानि...किसकी ?

"हमारा माल...हिसाब...किताब...."

"घबराते है क्यों, बड़े व्यव.ारी ? वीरवणिकों की रीति जानते हैं ? वह यह कि हानि की पूर्ति करना और इस व्यवहार का पूर्णरूपेण पालन करना और दूसरों से भी करवाना। और इस सब हानि का जिम्मे-दार यदि कोई है तो वह है उस साम्राज्य का मह मडलेश्वर राय हरिहर। वही इस हानि की क्षति-पूर्ति करेगा। मेरा विश्वास है कि सचमुच हमारी हानि तनिक भी नहीं हो रही है ? आ। तो यही मान लीजिए कि हमने यह तमाम माल-असबाब राय हरिहर को बेच दिया है।"

"लेकिन...लेकिन..."

क्षण भर के लिए बडे व्यवहारी को यह न सूझा कि वह क्या कहे,...." लेकिन ये पागल होलेय यदि हवेली में प्रविष्ट हो जाएँगे तो क्या हममें से किसी के भी प्राण का मूल्य एक जीतल जितना भी है ?"

"हज़ार साल पुरानी हमारी पूर्वदा का लोप हो रहा है। वह टूकड़े-टूकड़े हो रही है ! फिर भी यदि हम जीते हैं तो हमें धिक्कार है। और फिर भी आप हमारे प्राणों का मूल्य, एक जीतल के मोल का, लगा रहे हैं ! हज़ार सालों से जिन वीरवणिको ने नाना छप्पन देशों के राजाओं और प्रजाजनों को, अन्न, वस्त्र, और साख दी है, उन राजाओं और देशो की युद्ध और दुष्काल के समय सहायता की है। उनके व्यवहारों का रक्षण किया है। उन्ही के विषय में आज मैं यह देखना चाहती हूँ कि क्या वे हमारी तरह व्यवहार का पालन करते हैं या नही ? हमारी सहायता, सुरक्षा का ध्यान उन्हें है या नही ? हमने तुरुष्कों को व्यावहारिक जन जान कर उनकी साख रखी है। आज मैं यह भी देख लेना चाहती हूँ कि इस समय जब हम वीर वणिकों पर उस तथाकथित विजय धर्म साम्राज्य के महामंडलेश्वर ने अपमान का भार लाद दिया है, तब क्या हमार मित्र तुरुष्को को हमारे

व्यवहार का खयाल आता है या नहीं ? साथ ही मैं नाना छप्पन देशों का मानस भी देख लेना चाहती हूँ। अतएव बड़े व्यवहारी जी, इस विषय में किसी प्रकार का समाधान नहीं हो सकता और नहीं ही हो सकता ! हजार साल की पूर्वंदा का अंत मैं अपने हाथों कर दूँ, इससे पहले तो मैं अपना अपने पिता का और इन समस्त वीर वणिकों का खात्मा कर दूँगी !"

सबसे मानो वह विलग है, सबसे जैसे वह दूर है—इस तरह गोमती एक अकेली अपनी अट्टालिका के झरोखे में खड़ी थी ! उसके आसपास, गुलेल से उड़ने वाले पत्थर भयंकर सनसनाहट पैदा कर रहे थे ! एक पत्थर उसे लगा और उसके भाल से रक्त बहने लगा परन्तु वह तो वहीं खड़ी रही, जहाँ खड़ी थी—अडिग और अचल !

बड़े व्यवहारी और अन्यान्य वृद्ध वीर वणिक अब चले वायीजन के पास। वायीजन को चैत्य से हवेली में लाया गया था ! वायीजन की तैयारी थी कि यदि होलेय जिनालय को जला दें तो वह स्वयं भी उसमें जल मरेगा ! परन्तु दूसरे वणिकों ने इस बात पर ध्यान न दिया था। सबकी नौकाएँ डग-मगा रही थीं और ऐसे अवसर पर उनके लिए पतवार कहिए तो पतवार और लंगर कहिये तो लंगर—सिर्फ़ वायीजन था। वह पृथ्वीसेट्ठि था। राजा, महाराजा, मंडलेश्वर, दुर्गपाल, मलिक, अमीर और अन्य अधिकारियों से बातचीत करने में वह कुशल था। अनुभवी था। इसलिए, डूबते-उतराते वणिक समाज के जलयान के इस मल्लाह को कोई भी छोड़ना नहीं चाहता था ! वृद्धजन एक पालकी में डाल कर वायीजन को हवेली में ले आए थे ! और यह दृश्य ऐसा था कि आज तक किसी ने इसकी कल्पना न की थी, न किसी ने इसे कभी देखा ही था ! होलेयों को यह दृश्य इतना विस्मय-जनक और कौतूहलपूर्ण प्रतीत हुआ कि उन्हें इसी में अपनी विजय दृष्टि-गोचर हुई ! चार वृद्ध वणिक, जिनके काफिले और व्यापार दूर तक जाते थे और दूर तक फैले थे, जिनके घरों में हाथी झूमते थे, घोड़े हिनहिनाते थे, वही आज अपने कमजोर कंधों पर एक पालकी का भार उठाए, पसीने से लथ-पथ, लगभग दौड़ते-से आ रहे थे !

इस प्रकार वायीजन की अनिच्छा रहने पर भी, वृद्धजन उसे उसकी हवेली में उठा ले आए थे !

और अब कुछ लोग वायीजन से प्रार्थना कर रहे थे, बड़े व्यवहारी भी इन लोगों में से एक था—"सेठ, कोई-एक उपाय ढूँढिए ! कोई राह निकालिए ! हम तो वणिक कहलाते है ! हम तो अंततया व्यवहार का मूल्य समझाने वाले हैं और व्यवहार आँकने वाले हैं ! जहाँ तक होलेय हम में से किसी की जान लेने पर उतारू नहीं हुए हैं, वहाँ तक कोई रास्ता निकालिए ! इस समय सिर्फ़ इक्के-दुक्के लोग मर रहे हैं ! राह बतलाइए और आप गोमती को समझाइए !"

और गोमती को बुलाने के लिए एक-एक कर कई आदमी भेजे गए पर वह नहीं आई । उसकी अभिमानी आत्मा आज अत्यंत उत्तेजित थी !

"आप सब यदि जाना चाहते हों तो, जाइए ! नाना छप्पन देशों के राजा और अमात्य, सुलतान और वज़ीर, मलिक और दुर्गपाल— आदि से ऊँचे मुँह बात करने वाले—तुम लोग....तुम लोग अगर जाना चाहते हो तो चले जाओ । अपना सिर झुकाकर जा सकते हो, मैं किसी की राह नहीं रोकूँगी ! किंतु चाहे जो हो जाए, मैं तो अपना सिर न झुकाऊँगी ! और अगर तुम लोग यहाँ रहना चाहते हो तो मेरी हवेली बड़ी है और मजबूत भी है। नाना छप्पन देश के राजाओं के समान पद और आसन पर बैठकर वार्ता करनेवाली मैं होलेयों के सामने नीचा देखू ? उनसे दब जाऊँ ? यह नहीं हो सकता,......नहीं हो सकता !......मैं यह नही कर सकती, कहनेवाले कुछ भी कहते रहें ! ...."

बाहर कोलाहल गरज रहा था ! रात घहरा रही थी । भयंकर कोलाहल वातावरण में भय का संचरण कर रहा था ! रात्रि अधिक भीषण बनती जा रही थी ! आग के गोले आकाश की ओर उड़ रहे थे और सर्वत्र धू-धू कर आग जल रही थी !

निर्बल, निस्सहाय लोगों से कभी वैर नहीं रखना चाहिए कि एक नन्हीं चिउँटी भी हाथी के प्राणों का हरण कर लेती है ! इस कथन का सनातन सत्य आज सबके हृदयों में शूल की भाँति चुभ रहा था । अभी तक भी किसी

को यह जानकारी नहीं थी कि यह भूकम्प कैसे आया ? कहाँ से आया ? क्यों आया ? विगत कल तक असम्भव होनेवाली बात आज संभव ही नहीं दृष्टि-गोचर हो रही थी, वरन् एक हकीकत की शक्ल में धू-धू जलती सामने खड़ी थी ! कि अरे ओ आततायिओ ! आँखें खोलकर देखो !...और एक बार इस दृश्य को सम्मुख देखकर वे सोचने लगे कि क्या कारण है कि आज से पहले यह बात हमारे ध्यान में न आई ? यह विस्मय की बात थी ! किसी ने क्यों कभी नहीं सोचा कि यदि होले र भान भूल कर, एकत्र होकर, संगठित होकर सिर उठाएं तो क्या होगा ? प्रत्येक छोटी से छोटी चीज़ या बात को भी हज़ार हज़ार बार देख-परखकर, जाँच पड़ताल कर छूने वाले बनिए-वणिक, इस प्रकट सत्य को कैसे न देख सके ! ....ये तो प्रत्येक संभवा-संभव के सौ-सौ करण ढूँढ़नेवाले लोग ठहरे !......

—इस प्रकार के कड़ुए विचारों को बार-बार अपने मन-मस्तिष्क में घहराते वणिक-वृद्ध नीचे बैठे थे और गोल-गोल घूम-फिर कर, एक ही बात और विषय अनेक बार उनके सामने आता था !

और ऊपर झरोखे में अडोल, मूर्तिवत् खड़ी गोमती नीचे का दृश्य देख रही थी ! धरती मे छिपी असंख्य चिउटियो के दल को छेड़ने पर जैसी भीड़ दिखाई देती है, वैसी ही भीड़—होलेयों की भारी भीड़ अकांड ताण्डव का सर्जन कर रही थी !

इतने में एकाएक सावनी चीख उठी—

"अम्मा, देखिए तो .... देखिए तो .... देखिए तो ...."

सावनी—वायीजन सेठ के एक रंक आश्रित की बेटी, गोमती के साथ, उसके पास रहती थी । और उसकी आँखों के इशारे पर नाचती थी । और उँगली पकड़ कर चलती थी । वीरवणिकों की पूर्वंदा का सम्पर्क उसे विशेष न मिला था । इसलिए पूर्वंदा उसके लि ए किसी बड़े हित अथवा जीवन-सिद्धात, या जीवन-व्यवहार का आधार न बनी थी । इसलिए पूर्वंदा का विचार उसके लिए गोमती के अनुरूप शक्ति-दाता न बन सका । और इसी तरह वह पूवंदा के लि —उसे जीवन-मरण का आग्रह मानकर, अडिग और आग्रही न बन सकी ।

सावनी ने एक नया दृश्य देखा और चीत्कार में कहा—"देखिए, देखिए—" और पल भर के लिए तो वह अपनी सुरक्षा का भय भी भूल गई और छत के किनारे तक दौड़ी। और नीचे देखकर बोली—

"गोमती अम्मा ! देखिए, देखिए !"

"गोमती ने नीचे देखा और उसकी भावहीन, सूखी आँखों में पलभर में चमक आ गई !

नीचे एक विचित्र दृश्य की भूमिका की रचना हो रही थी—

आधे अँधेरे और आधे उजियाले में, लाल रंग के अंधेरे में धूमिल रंग का मत्त सांड़ जैसा देहधारी होलेयों की भीड़ को चीरता हुआ चला आ रहा था। अपना रास्ता बनाने के लिए वह होलेयों को ठेलता हुआ, उन्हें पकड़-पकड़ कर उछालता हुआ, दूर फेंकता हुआ आ रहा था। उससे जो होलेय चिपट गए थे उन्हें वह इस तरह झकझोर रहा था कि जैसे मद-झरता हाथी अपनी प्रचण्ड देह पर लिपटी हुई धूल को झकझोर देता है। वह खींचकर गुलेलों को तोड़ देता था और पत्थर के ढेरों से पत्थर उठाकर होलेयों पर फेंकता था। तेल के डिब्बे होलेयों पर उड़ेलता हुआ आगे बढ़ रहा था।

और इस तरह, खेत को रौंदने वाले बिगड़े हुए साँड़ की तरह वह हवेली की ओर आगे बढ़ रहा था। उसके पीछे-पीछे एक और आदमी चल रहा था। और...और...और...वह आदमी वरजांग को घसीट कर ला रहा था। क्या वरजांग कोई मदद लेकर आ रहा था ? क्या बात है...क्या ...क्या...क्या ?

दूर से उस कमबख्त टोटी ने आवाज़ दी और पचास के करीब होलेय उस साँड़-व्यक्ति से चिपट गए। अब उस व्यक्ति की कठिनाई बढ़ गई। उसे न केवल अपना ही वरन् अपने साथियों का भी संरक्षण करना था। गोमती की साँस मानो रुक गई।

गुड़ के ढेले पर जिस प्रकार चिउँटियाँ चिपट जाती है, उस प्रकार होलेय उस साँड़ से चिपट गए थे। लेकिन वह आदमी जमीन पर गिरता-उठता, उछलता-कूदता—होलेयों को हटाता हुआ आगे और आगे बढ़ रहा था।

होलेयों के विरुद्ध छोटा सा यह जंग पहली ही बार शुरू हुआ था। ज्यों-ज्यों पुकार उठी, वणिक लोग अपनी अपनी अटारियों पर यह दृश्य देखने के लिए आते जा रहे थे।

शोर-पुकार बढ़ गई। बीच-बीच में दुःख के बोल भी सुनाई दिये और होलेयों की संख्या बढ़ती ही गई।...अंत में एक भयंकर चीख उठी और पल भर के लिए सभी स्थिर रह गए...ज्वाला भी मानो क्षण भर के लिए अपना ताण्डव थाम कर खड़ी रही !

और उसके मध्य से, वप्रक्रीड़ा कर अपने सींगों से उछाली मिट्टी के ढेर में से साँड़ जिस प्रकार खड़ा होता है, उस प्रकार वह व्यक्ति खड़ा हो गया। उसके एक-एक हाथ में—एक-एक होलेय था। उनको, उनके सिर के बालों से उसने पकड़ रखा था।

एक होलेय को उसने हवा में उछाला। उनके मुँह से भयंकर चिल्लाहट निकली। जब वह नीचे गिरा तब उस साड़-जैसे आदमी ने उसका पैर पकड़ लिया। दूसरी बार, दूसरे होलेय को भी इसी प्रकार हवा में उछाल कर उसका भी पैर पकड़ लिया....

और बाद में दोनो होलेयों को गोल चक्र में फिराने लगा! उनकी चिल्लाहट के साथ-साथ, दूसरों की भी भयंकर चिल्लाहटें उठीं। किसी को होलेय के सिरकी चोट लगी तो, किसी को उसके दूसरे अंग की। और देखते ही देखते, इसी प्रकार घुमाते हुए होलेयों के आसपास का मैदान खाली हो गया। बीच में एक व्यक्ति दो होलेयों को ठोकर मारता हुआ आगे बढ़ रहा था। थोड़ी देर बाद वह हवेली के प्रमुख द्वार के पास आकर खड़ा हो गया। दरवाज़े के समीप का मैदान—सूना था।

"सावनी ! सावनी !" गोमती का कंठ काँपने लगा—"जा, जल्दी जाकर, दरवाज़ा खोल दे। आने वाला चाहे, जो हो, होलेयों का सामना कर सकने वाला ही कोई व्यक्ति है। उसे जल्द ही अन्दर आने दे !"

टोटी ने अपने होलेयों को तनिक हटाया। और वहाँ से अधिक गहरे चक्कर में पड़ने पर उस व्यक्ति पर आग के गोले और पत्थरों की भारी

वर्षा होने लगी। होलेयों ने रक्त की गंध सूंघी। और अब लहू चखने की उसकी भूख बढ़ी!

थोड़े पत्थर उस व्यक्ति को लगे! आग के कुछ गोले उसके साथी पर और उस पर गिरे। उनके कपड़े जलने लगे। उन्हें बुझाने की तैयारी वे करने लगे कि होलेयों ने सामना करना शुरू किया। उनके हाथों में पत्थर थे।

व्यक्ति वह, दो कदम आगे आया। उसने अपने हाथ में पकड़े हुए होलेयों को सामने से आते हुए समूह पर फेंका। चारों ओर से भयार्त्त चीखें हवा में गूँजने लगीं। और यह जीवित 'गोफरण' भीड़ के बीच में पड़कर भीड़ को अस्तव्यस्त और अस्वस्थ बनाने लगी।

और इसी समय हवेली का विशाल द्वार हिला। उसकी खिडकी खुली। किसी कोमल हाथ ने उस साँड जैसे व्यक्ति को अंदर खींच लिया। वह व्यक्ति अंदर घुस गया! उसके साथ हीं उसका साथी भी अंदर चला गया! और होलेयों की नज़र जाए, इससे पहले दरवाज़ा फिर से बद हो गया!

होलेयों की भीषण किलकारियों और चीत्कारों को मानो किसी छुरी ने काट दिया है, ऐसा मौन छा गया, परन्तु हवेली में बाहर की अपेक्षा अधिक शांति थी, परन्तु स्वस्थता न थी। चैन न था!

चार-चार सीढ़ियाँ लाँघकर आती हुई गोमती ने उस अलमस्त व्यक्ति को, हवेली के मैदान में खड़े देखा। उसका कद लम्बा था। सचमुच वह नरवृषभ था। उसे देखते ही गोमती को किसी साँड़ का ध्यान आया!

जब-जब किसी व्यक्ति को प्रथम बार देखते हैं, किसी-न-किसी पशु का ध्यान आ ही जाता है: किसी व्यक्ति की आकृति सियार और खरगोश जैसी होती है, तो किसी की कुत्ते-बिल्ली जैसी! कोई काले नाग-जैसा और कोई बाघ-जैसा लगता है!

यह व्यक्ति रामधरण के खूँट-सा लगता था!

बेलगोला यानी जैनों का धाम! इतने पर भी जैन-शासन का शासन के रूप में प्रमुख महत्त्व था। किसी भी तीर्थस्थान के समान यहाँ भी व्यापार, व्यवसाय इत्यादि व्यवसायों का प्रबंध था। इनमें जिन के

जहाज़ हों या अपना व्यापार हो वे 'वीरवणिक' कहलाए। इन्हें बगुले के पंखे का बना ध्वज रखने का अधिकार था !

वीरवणिकों का व्यवहार-स्थान बेलगोला। वीरवणिकों का नाना छप्पन देशों में, जो कुछ थोड़ा-बहुत व्यवहार था, उनका यह प्रमुख धाम !

अतः बेलगोला में धर्म का अधिक सम्मान नहीं है। "तंग गली में सामने आता हुआ हाथी यदि मिल जाए, तो भी, जैन मंदिर का आश्रय नहीं लेना"—यह भागवतों का कथन है। और जैनों का कहना है "भागवतों के हाथ का पानी पीने से अच्छा है ज़हर पीना"—

परन्तु ऐसा तो नहीं था कि आचार्य भद्रबाहु और उनके मूलसंघ के संस्कार बेलगोला से तिरोहित हो गए थे। इसलिए, ग्वाल जन—गायों को पालने वाले, साँड़ों को मुक्त छोड़ देते थे !

और प्राणि-विज्ञान के किसी अगोचर नियम के आधार पर बेलगोला का रामधण नख से सिर तक सफेद था। वहाँ यदाकदा गाड़ी में जोतने के योग्य साँड़ भी होते।

ऐसे साँड़ बड़े विचित्र होते थे। वे किसी भारवाही साँड़ को देखकर सहन नहीं कर सकते थे ! यदि किसी बैल को गाड़ी में जुता हुआ अथवा वजन उठाकर ढोता हुआ देखते तो तत्काल उस पर आक्रमण कर देते। तब उस वज़न के नीचे वह बैल भाग्य से ही बच पाता। ऐसे साँड बड़े-बड़े काफिलों में बड़े कष्टकर साबित होते हैं। उन्हें नियन्त्रित रखने के लिए अथवा उनके क्षेत्रों में से गुज़रते वक्त वीरवणिक मदमत्त हाथियों को अपने साथ रखते !

गोमती को भी इस आगन्तुक व्यक्ति को देखकर साँड़ का विचार आया ! और क्षण भर के लिए, जैसे, उसके नाक में साँड़ की सुगन्ध भर गई !

गोमती आकर खड़ी रह गई ! उसने देखा—एक अलमस्त आदमी—काले शीशम का बना-सा चमक रहा है। और उसमें से मानो आग की लपटें निकल रही हैं। उसके हाथ और चेहरे पर रक्त के दाग़ थे।

बाहर से आते पत्थरों के प्रहारों से हवेली के दरवाजे नगारे-जैसे बजते थे। गर्जन कर रहे थे, मानो उनके खंड-खंड होने में विलम्ब नहीं है।

—ऐसे भयावह संयोगों में गोमती ने उस व्यक्ति को देखा। और क्षण भर जैसे वह उसकी कद्दावर काया को अपनी नज़रों से पीती रही।

तभी, उसके पीछे वाला व्यक्ति आगे आकर बोला—"नमस्कार गोमती अम्मा! नमस्कार!"

"तुम कौन हो?" गोमती ने पूछा।

अब वरजांग आगे आया—"अरे गोमती अम्मा! इन होलेयों ने यह तूफ़ान खड़ा किया है, इसलिए जाकर मैं इन्हें अपनी मदद के लिए बुला लाया हूँ! ये दो आदमी हैं।"

"नमस्कारम्!" दूसरे व्यक्ति ने कहा। कद्दावर व्यक्ति की तुलना में यह कुछ दुबला-पतला लगता था। और बाहर के संघर्ष में इसका उल्लेखनीय भाग न था!

"तुम कौन?" गोमती ने पूछा।

"मैं आपका ऋणी! गोमती अम्मा! मेरा नाम सोमसामी। आपके पास एक होलेय थी, न—बोमाया नामक। आपने ही मुझे दान में दी थी—उसे, मेरी घरवाली बनाने के लिए।"

"अच्छा! बोमाया सानन्द तो है? और ये भावजी कौन है?"

"यह...यह...मेरा दोस्त है। इसका नाम है बिबोया भालारी।"

"तुम उचित अवसर पर आए हो। तुम पर यदि मेरा ऋण हो तो, तुम या तुम्हारे ये जवांमर्द मित्र अदा कर सकते हैं। क्या तुम यही करोगे?"

"यदि न करूँ तो, अम्मा घर पर बोमाया मेरी जान ही ले ले!"

"अच्छा! तब तो एक होलेय ऐसी भी है, जो गोमती को याद करती है।"

"हम अपने चर्म के कपड़े सिलाकर, आपको पहनाएं। तब भी कम है। और इसीलिए तो, मैं यहाँ की खबर सुनते ही, अपने मित्र को लेकर तत्काल यहाँ आया हूँ।"

"होलेय बहुत शैतानी कर रहे हैं। क्यों और किसलिए?—इसकी चर्चा तो बाद में हो सकेगी। इस समय तो उनका तूफ़ान दबा देना है। तुम क्या उसमें मेरी सहायता कर सकोगे? यदि सहायक बन सको तो यहीं

रहो, अन्यथा खुशी से तुम वापस जा सकते हो। लड़ाई हमारी है और उसमें यदि तुम्हारी इच्छा न हो तो तुम्हें बीच में आने की आवश्यकता नहीं।"

बिबोया ने कहा—"मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूं, इसके पहले; तुम्हें मेरे प्रश्न का उत्तर देना होगा।"

"यह तो तुम्हारा प्रश्न सुनने के पश्चात् ही कह सकूंगी। तुम मेरी सहायता के लिए बाध्य नहीं हो ! और मुझे जो पसंद न आएं, ऐसे प्रश्न पूछने की मैं तुम्हें आज्ञा भी नहीं देती।"

"मैं नहीं जानता कि वह प्रश्न आपको पसन्द आवेगा या नहीं ? लेकिन मैं आपकी मदद के लिए प्रस्तुत होऊं, उसके पहले, मेरे प्रश्न का उत्तर मिलना ही चाहिए।"

"तुम्हारा प्रश्न ?"

बिबोया ने वरजांग की गर्दन पकड़कर, उसे आगे धकेलते हुए कहा—"इस भावजी ने कहा है कि यह आपकी मदद के लिए हमें यहाँ बुला लाया है—लेकिन बात यह गलत है। हकीकत तो यह है कि हम ही इसे पकड़ कर, आपके रूबरू लाए हैं, ताकि कुछ बातों का स्पष्टीकरण हो सके।"

"क्यों ?"

"ऐसा करने का जो कारण है, वही मेरा प्रश्न है। यह जवान जैसा जवान इसलिए कि कुछ होलेयों के सिर फिर गये थे, मदुरा के सुलतान की मदद माँगने के लिए जा रहा था ! इसका दुरुद्देश्य था कि कावेरी के उस पार रहने वाले तुरुष्कों को इस पार लाकर बसाना ! मेरा सवाल यह है कि क्या आप लोग इतने पामर और शक्तिहीन हो गए है कि अपने होलेयों को अपने वश में नहीं रख सकते ? होलेयों को भी आज्ञाकारी बनाने के लिए, क्या तुरुष्कों की सहायता लेनी उचित है ? यह वरजांग मदुरा के सुरत्राण की मदद लेने जा रहा था। क्या आप ने इसे इस काम के लिए भेजा था ? क्या बेलगोला के पृथ्वीसेट्टि या उसके वारिस तुर्कों की मदद लेना चाहते हैं ? क्या यह बात सत्य है ?"

"वरजांग, यह...क्या है ? गोमती ने होंठ काटते हुए पूछा ?

"यह...तो....मुझे लगा कि...लगा कि..."

"समझ गई, चुप रहो और मेरी दृष्टि से दूर चले जाओ !....और भालारी, तुम्हारा प्रश्न मुझे नापसन्द नहीं। उसका उत्तर है—वीरवणिक नाना छप्पन देश के राजाओं के सुरत्राणों के साथ माल का व्यापार और व्यवसाय का लेन देन और व्यवहार रखते हैं और भविष्य में भी रखेंगे। परन्तु वे किसी राजा या किसी तुरुष्क सुरत्राण की कोई सहायता नहीं चाहते, फिर चाहे स्वयं विनष्ट भी हो जाएं।"

"तो ठीक ! यह सोमसामी कहता है कि आपके पास—बाजू में रहने से मेरे इस मित्र का जो ऋण मुझ पर है, वह उतर जायगा और इस पर आपका जो ऋण है उससे यह उऋण हो जाएगा।

और उसी वक्त बड़े जोर की आवाज के साथ, दरवाजे में एक बड़ा-सा पत्थर गिरा।

: १३ : तुम्हारी धर्मपत्नी!

"तुम अब ऊपर चली जाओ ।" बिबोया ने कहा—"अब यहाँ तुम्हारा काम नहीं है ।"

"मैं अकेली नहीं हूँ । मैं यहीं रहूँगी, और होलेयों की हिम्मत देखूँगी कि किस प्रकार वे आगे बढ़ते हैं ।"

बिबोया एक शब्द भी नहीं बोला । उसने गोमती को उठा लिया । आश्चर्यपूर्वक मूढ़ बनी गोमती ने कहा—

"अब तुम ऊपर जाओ । अब कोई आगे बढ़ेगा ही नहीं ।"

फिर बिबोया एक शब्द भी बोले-बिना, ऊपर चला गया । गोमती ने बंधन से मुक्त होने के लिए कितने ही प्रयत्न किये परन्तु व्यर्थ ।

ऊपर सावनी खड़ी-खड़ी नीचे की ओर देख रही थी । उससे बिबोया ने कहा—"तुम भी नीचे न आओगी और हमें भी नीचे न आने दोगी ।"

इतना कहकर गोमती को नीचे छोड़ सीढ़ी के दरवाजे की साँकल बन्द कर, वह नीचे उतर गया ।

अब दरवाज़े में दूसरा पत्थर भी गिरता हुआ दिखाई दे रहा था । बाहर कोलाहल बढ़ता ही जा रहा था ।

सोमसामी ने बिबोया से कहा—"दरवाजा खोल डालो !"

"परन्तु..."

"सोमसामी, मानो, एक पागल हाथी आए तो बाहर समूह में एकत्रित लोग क्या करें ?"

"क्या कर ? भागने लगें।"

"तो ऐसे पागल आदमी का सामना मैं करता हूँ। दरवाज़ा खोल डालो।"

सौमनामी ने दरवाज़े पर ज़ोर का धक्का लगाया और बाहर के भार से दरवाज़ा खुल गया।

बिबोया ने प्रचंड आवाज़ में कहा—"सुनो ! तुम्हें मस्ती जितनी करनी हो, उतनी करो। परन्तु अब तो, मैं यहाँ हूँ—यह भूलो मत। और मैं कौन हूँ—यह भी जान लो।"

और वह धीरे-धीरे आगे बढ़ा।

द्वार की काष्ठ-अर्गला उसने दोनों हाथों से पकड़ ली—'देखो !' उसने सत्तामय स्वर में कहा। सबकी दृष्टि उसकी ओर गई, तब तक उसने इस अर्गला को पतले तिनके की तरह मोड़ कर दो टूक कर दिया ! फिर इन टुकड़ों को भीड़ पर फेंकते हुए कहा—"यह हूँ मैं ! देख लो मुझे !"

शक्ति का यह प्रदर्शन देख होलेय रुक गए।

"अब मेरी बात सुनो ! तुम सब जहाँ से आए हो वहीं जाकर रहो !"

"परन्तु हमें तो परचेरी चाहिए !" समूह में से किसीने कहा !

"यह सब मैं कुछ नहीं समझा। तुम लोगों को यदि कोई बात कहनी हो तो, अपने बाड़े में से ही करना। अधिकार माँगने का तरीका अच्छा नहीं है और मैं यह सहन भी करने वाला नहीं।"

टोटी पीछे था। आगे आया।

"तुम वीरवणिक हो ?" टोटी ने पूछा।

"नहीं। क्यों ?"

"तुम बनाजा हो ?"

"नहीं। क्यों ?"

"तुम वायीजन श्रेष्ठी या उनकी पुत्री के कोई सगे-संबंधी हो ?"

"नहीं। क्यों ?"

"तो तुम जाओ ! तुम किसलिए पराए पचड़े में पड़ते हो ?"

"यह तो भावजी ! पूछने में तुम्हें थोड़ी देर हो गई ! मैंने तो यह पचड़ा—यह बखेड़ा स्वयं उछल कर लिया है !

टोटी ने कहा—"वणिक लोग बाहर से सहायता मँगाते हैं, बाहर से उनकी मदद के लिए लोग आते हैं, परन्तु यह खेल—एक ही नहीं, दोनों ही पक्ष खेल सकते हैं।

"मारामारी करना, आग लगाना, पत्थर फेंकना या दरवाज़े तोड़ना—ये सब करने के बजाय, तुम मुझसे बातचीत कर रहे हो—यह मुझे बहुत पसंद आया। शेष तुम्हारी सभी बातों में से एक अक्षर भी मैं नहीं समझता !"

"तुम हमारी बातें समझो, या न समझो, इसकी मुझे तनिक भी चिंता नहीं। हमें तो यह देखना है कि इस देश में न्याय है या नहीं ! हमारी बात वीरवणिक समझें—यही बहुत है। तुम्हारे साथ हमारा कोई संबंध नहीं है और न कोई राग और न कोई ईर्ष्या ही है। तुम्हीं ने अन्याय का पक्ष लिया है !"

"यह तो भावजी !—तुम होलेय हो तो भी, तुम्हें मैं भावजी कहता हूँ।"

"जो अन्याय का पक्ष लेते हैं, उन्हें अपनी शक्ति के अतिरिक्त, किसी दूसरे का ध्यान ही नहीं रहता है। परन्तु भावजी ! तुम एक बात ख़याल में रखना। हम होलेयों ने हज़ारों वर्षों में आज ही जाना है कि भगवान जैसी कोई चीज़ भी है। और एक बार जो परमात्मा को पहचान लेता है उसे वह देर अबेर न्याय दान देता ही है !"

"यह तो ज्ञान की बातें हुईं। और ज्ञान की बातें करने या सुनने की मुझे फ़ुरसत नहीं। भगवान् की बात अच्छी है और हम भी भगवान् को मानते हैं। और तुमने यह किस प्रकार जाना कि हमारा भगवान् हमारी मदद नहीं करता है ? ठीक तो यह है कि यदि हमारे भगवान् हमारी सहायता करें तो तुम्हारे भगवान् तुम्हें मदद करेंगे। चाहे इस प्रकार हो और चाहे दोनों के भगवान् अन्दर-ही-अन्दर झगड़ लें और इनमें से कौन अधिक शक्तिशाली है यह भी निश्चय कर लें ! वहाँ तक भावजी तुम मेरी बात समझ लो। इस जगत में भगवान् की बात अलग रख लें तो, शक्ति के अतिरिक्त कोई दूसरा अधिकार नहीं। बस, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई

न्याय नहीं। तुम्हारे पास कितने और कैसे हथियार हैं, यह मैंने देख लिया। और मुझे विश्वास है कि मैं इन्हें लांघ सकता हूँ। मुझे अपनी ताकत का भरपूर भरोसा है!"

"हमारी तकरार वीरवणिकों से है, तुम्हारे साथ नहीं। और तुम्हें इस कलह में शामिल होने की ज़रूरत नहीं और वैसा कोई कारण भी नहीं। इतने पर भी, तुम यदि इस पराए कलह में शामिल होते हो तो, हमें ज्ञात है कि न्याय कहाँ और कैसे करना!"

"तुम्हारी बात अब पूरी हो गई है या और कुछ बाकी है!" बिबोया ने पूछा—"यदि पूरी हो गई हो तो ठीक और यदि न हुई हो तो, मैं तुम्हें कह देता हूँ – किसी भी होलेय की कोई बात सुनने की आदत मेरी नहीं है, समझे, भावजी? मेरी बात, सुनो, तुम सब सुन लो—एक-एक होलेय लौट जाए, अपने-अपने बाड़े में जाकर काम करने लग जाए। कल सुबह मैं बाहर निकलूँगा। उस समय यदि मुझे कोई अपने बाड़े से बाहर नज़र आएगा तो उसके मैं प्राण ले लूँगा! होलेय का काम है अपने वीरवणिक् का काम करना। जाओ, मेरी बात पूरी हो गई, मैं जानता हूँ कि तुम कौन हो। और मैं कौन हूँ—यह तुमने पहचान लिया है। मैं कौन हूँ यह और भी अच्छी तरह कल मालूम हो जाएगा। इस देश में एक हनुमान हो गए हैं और उनके बाद दूसरा मैं हूँ! जाओ!"

"तुम्हारा उत्तर हमने जान लिया, भावजी! अब वीरवणिक हमें क्या जवाब देते हैं।" टोटी ने कहा—"वे हमें परचेरी के अधिकार देते हैं या नहीं—यह हमें उनके मुंह से सुनना है—तुम्हारे मुख से नहीं।"

"वह उत्तर मैं दूँ?" ओट से बाहर आकर गोमती बोली—"इस वीर नर की सहायता के पूर्व भी मैंने जो जवाब तुम्हें दिया था—क्या वह याद है तुम्हें? मैंने कहा था—जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक मैं किसी होलेय को किसी भी प्रकार के अधिकार देकर मैं वीरवणिकों की हज़ारों वर्षों की परम्परा से द्रोह करना नहीं चाहती। जब तुम आग लगा रहे थे और पत्थर फेंक रहे थे तब भी मैंने तुम्हें यही उत्तर दिया था। वीरवणिकों के पृथ्वी-सेट्टि के आसन पर से मैं तुम्हें कहती हूँ कि तुम जाओ, अपना काम करो.

नहो तो कल सुबह...कल सुबह...क्या होने वाला है—यह सब तुम्हें इस वीर मददगार ने बतला दिया है। और यदि इसे तुम पर दया भी आएगी तो मैं तुम्हें छोड़ने वाली नहीं, तुम्हारी खाल उतरवा ली जाएगी। जाओ ?"

एक क्षण टोटी खड़ा रहा। दूसरे ही क्षण वह एक शब्द बोले-बिना पीठ फेरकर चला गया।

"चलो।" उसने अपने होलेयों से कहा।

"और मुझे क्या जवाब देते हो ?" गोमती ने पूछा।

"तुमने हमें सुबह तक का समय दिया है, न ! तब तक तुम्हें हमारा जवाब मिल जाएगा।" उसने बिबोया या गोमती की ओर बिना-देखे कहा और बाद में दोनों हाथ ऊपर उठाकर होलेयों से कहा—"चलो, चलो, यहाँ अपना काम नहीं है !"

भागते हुए भूतों की भीड़ के समान होलेय वहाँ से चले गए। कुछ देर बाद उनकी भीड़ नज़र न आने लगी। उनके पीछे मात्र विध्वंस रह गया !

"सोमसामी !" बिबोया ने कहा—"ये तूफ़ानी फिर से कोई तूफ़ान न मचा दें अतः हवेली के दरवाज़े फिर से बंद कर दो। मैं यहीं सारा रात चौकीदारी करूँगा। सब लोग आपस में बातें करते रहेंगे। और सुबह तुम सब-कुछ ठीक देखोगे।"

"इतने हठीले, उत्तेजित, तूफ़ानी लोग—क्या फिर से अपना काम करने लगेंगे ?" सोमसामी ने कहा।

"क्या इसमें तुम्हें संदेह है ? चौदहवाँ रत्न तो तूफ़ान के भयावह सागर को भी रोक देता है, तो फिर बेचारे इन होलेयों की क्या गिनती ? कल सुबह सभी की उपस्थिति में टोटी को ज़रा सीधा करना होगा।"

"अभी ही करना था न ?" गोमती ने पूछा।

"ऐसे कार्य तो अम्मा, सुबह में सूर्य के प्रकाश में करने चाहिए—ताकि हम भी देख सकें और दूसरे भी देख सके।"

"हाँ, यह बात सत्य है। देखो, सर्वत्र शांति छा गई है—तुम्हारे आने के बाद ! तुम जो हो, वह हो, पर तुम मेरे लिए तो तारनहार के समान हो'—गोमती ने कहा—"अब मैं तुम्हारे लिए सब-कुछ, प्रबंध करती हूँ।"

"अरे अम्मा, हम तो भटकने वाले मुसाफिर हैं। हमारे लिए कैसे प्रवंध ?"

"हमारा आतिथ्य तो स्वीकार करोगे, न ?" गोमती ने कहा—"परंतु तुम्हारे लिए पूरे प्रबंध की व्यवस्था की जाए इसके पहले कुछ देर तुम ऊपर चलो।"

"ऊपर ? क्या काम है ?"

"वहाँ हमारे सभी वणिक एकत्र हुए हैं। वे सब और हमारे बड़े व्यवहारी कहते हैं कि होलेयों को दबाना चाहिए। मुझे उनको बतलाना है कि गोमती होलेयों से दब कर वीरवणिक और बेलगोला की सहस्र वर्षीय परम्परा के विपरीत द्रोह नहीं करना चाहती थी। मैं हमेशा उनसे कहना चाहती हूँ कि मेरे पिता और सभी सूरीश्वर मुझे एक ही बात कहते रहे हैं: पूर्वदा की तुम रक्षा करना ! पूर्वदा तुम्हारी रक्षा करेगी।"

गोमती ने पुकारा—"अरे वरजांग ! अरे सावनी ! इन मेहमानों के लिए भोजन का तत्काल प्रबंध करो और इनकी शय्या की व्यवस्था भी !"

वरजांग के मुख पर तनिक असंतोष झलका। परन्तु गोमती ने उस पर ध्यान न दिया और बिबोया का हाथ पकड़कर मानो उसे खींचकर अपने साथ ऊपर ले गई !

"मैं तो भूल गई। क्षमा करना ! तुम्हारा नाम भी मुझे स्मरण नहीं !"

"मेरा नाम—बिबोया...झालारी बिबोया !"

'सचमुच ! कर्नाटकवासी कितने विचित्र नाम रखते हैं ! जैसे किसी बेसवागा या विनोदी का नाम हो। लेकिन मेरी भूल है, आपने हमारे सब के नाम और नाक के लिए इतना बड़ा बखेड़ा मोल लिया तो भला मैं आप के नाम की टीका करने वाली होती कौन हूँ ?"

ऊपर हवेली की पहली मंजिल के दीवानखाने में बेलगोला के वीर-वणिकों का वृद्ध जन-समूह बैठा था। वे सब आपस में उच्चस्वर में वार्तालाप विनिमय कर रहे थे। बड़ा व्यवहारी अकेला कुछ कह रहा था और शेष सब उससे प्रश्न पर प्रश्न पूछ रहे थे कि इतने में गोमती वहाँ आकर

खड़ी हो गई और उसके पीछे, गोमती के दाएँ हाथ में थमा हुआ विब्रोया था। और सब से पीछे कुतूहल से प्रेरित सोनसानी था !

"गोमती !"—एक वृद्धजन ने गोमती को देखकर पूछा—"क्या समाचार है ? होलेय कहाँ तक झुके ?"

"समाचार...यह है !" गोमती ने विब्रोया को पेश किया : और होलेय भी इससे आगे न बढ़ सकेंगे।"

"यानी ?"

"यानी पूर्वदा ने हमारी रक्षा के लिए परम विकट अवसर देखकर, स्वर्गीय इस सहायक को भेजा है !"

"यह भावजी कौन है ?"

"यह आकाश का भेजा देवदूत सहायक है ! इस अकेले ने ही सभी होलेयों को वशीभूत-पराभूत किया है। मेरे माननीय गुरुजनो, वृद्धजनो, बेलगोला—मणिग्राम के वणिको ! कल सुबह सभी होलेय फिर से अपने अपने काम में लग जाएंगे।"

"अर्थात्...अर्थात्...तुमने उन्हें परचेरी के अधिकार दे दिए ?" वृद्ध ने पूछा।

"जी नहीं ! ये अधिकार हमने दिए नहीं और देने वाले भी नहीं ! जब तक गोमती जीवित है तब तक तो नहीं दिए जाएँगे।"

"मैं कहता हूँ कि हमें किसी प्रकार का जोखिम नहीं लेना चाहिए। न किसी का विश्वास ही करना चाहिए।"

"इसीलिए तो यह सहायक आया है। इसने होलेयों को जो बात समझाई है, उसे वे कभी भूलेंगे नहीं।" गोमती ने कहा।

"फिर भी, मेरी बात सुनो, गोमती अम्मा ! होलेय हमारी कमज़ोरी जान गए हैं। और अपनी कमज़ोरी को शक्तिशाली बनाने का हमारे पास कोई साधन नहीं है—सचमुच कुछ नहीं है ! हम तो हैं व्यापारी बनिए ! हमें तो सौदा करना आता है। आखिर हमें लुटेरों का भय भी है। अपनी इस कमज़ोरी को हमने परखा है और होलेयों ने भी देख लिया है। अब तीसरा इसे जान जाए, इसके पहले हमें होलेयों के साथ मेल और समझौता

अन्त न होगा, तब तक, मैं इस सहायक को जाने दूंगी नहीं। इसे यहाँ रोके रखने के लिए मुझे इससे विवाह करना होगा, घर-संसार बसाना होगा—यह सब मैं करने को तैयार हूँ। हजारों वर्षों की वीरवणिकों की पूर्वदा परम्परा के समक्ष गोमती की यह शपथ है! और इस शपथ को पालन करने की शक्ति मुझे शासन भगवान देंगे—यह मेरी श्रद्धाकामना है।"

बड़े व्यवहारी धीरे-धीरे नीचे बैठ गए—'अब मुझे और कुछ नहीं कहना है!" उन्होंने धीमे से कहा।

"परन्तु मुझे थोड़ा कुछ कहना है।" बिबोया ने कहा।

"तुम्हें जो कुछ कहना है, वह मुझे कहना!" गोमती ने गौरवपूर्वक कहा—"साथी और सखाजन अपने अंतरंग की बातें प्रकट लोक में नहीं करते! और करें भी, तो...तो पति और पत्नी तो अपने अंतरंग के द्वार लोक-समूह के सम्मुख नहीं ही खोलते!"

"परन्तु तुम तो..."

"तुम सुनो और सभी सुनें। तुम साथी बनकर रहना चाहते हो तो साथी के समान रखूँगी। सखा कहोगे तो, सखा-सहेली के समान रखूँगी। इन दोनों में से यदि एक भी नहीं होगा तो मैं अग्नि की साक्षी में तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगी। परन्तु मैं तुम्हे यहाँ से किसी भी भाँति जाने नहीं दूंगी। पूछो इन सबसे—गोमती के बोल में, उस बोल को सुनने वाले के लिए, या तो आश्वासन है या आदेश है, तीसरा कोई मर्म उसकी बोली में कदापि नहीं है।"

: १४ : सिंहनी का कराल कोप

गोमती हिंडोले पर बैठी थी और सामने हीरों-जड़े पलंग पर बिबोया बैठा था। बिबोया के मन में जो विचित्र और परस्पर विरोधी मंथन चल रहा था—वह उसके चेहरे पर, स्पष्ट दिखलाई दे रहा था।

और मानो सर्वथा चिंतामुक्त हो—बाहर और भीतर से प्रसन्नचित्त हो—इस प्रकार गोमती झूल रही थी।

किसी-किसी समय बिबोया के मुख पर उषा की बदली-सी चमक झलकती थी। वह गोमती के प्राप्त करने में सफल हुआ था !

किसी-किसी समय गोमती के मुख पर श्यामल लहरी छा जाती। उसे अपने पिता की गद्दी सुरक्षित रखनी थी। उसे पृथ्वीसेट्ठि की मुद्रा की शान रखनी थी। उसने हज़ार वर्षों की पूर्वदा को जाना-पहचाना था। वह भयंकर और अकल्प्य कठिनाई के झंझा में से निकली थी और उसने वेल-गोला को भी उबारा था !

परन्तु इन सभी के लिए जो मोल उसे चुकाना पड़ा था—क्या वह मोल उचित था !

बड़ी देर तक हिंडोले पर झूल लेती रही और बिबोया उसका मुख निरखता रहा। उसका फैला हुआ विशाल कपाल, कमर तक लम्बे उसके बाल, उसकी बड़ी-बड़ी और काली आँखें, उसका लम्बा-सा पतला और सीधा नाक, एकदम पतला ऊपरी होंठ और मोटा अधर मन को आकर्षित करते थे !

कर लेना चाहिए। गोमती अम्मा ! मैं इन सेठों को यही कहता था और तुम्हें भी यही कहता हूँ : होलेयों ने इतने तूफ़ान मचाए, परन्तु व्यर्थ। आज अवसर है। यदि वणिक् का लड़का यह अवसर चूक गया तो फिर यह अवसर इस संसार में दूसरा कौन पा सकेगा ? इसलिए मेरा सुझाव स्वीकार कर लीजिए गोमती अम्मा ! तुम्हारे हाथ में पृथ्वीसेट्ठि की मुद्रा है। होलेयों के प्रति तुम्हारे मन में स्नेहभाव है, इसलिए, आज मेलमिलाप कर लीजिए !"

"जिन लोगों को कोई धंधा करना नहीं आता, जिनकी कोई परम्परा नहीं, जिन्हें धर्म के विषय में कुछ भी मालूम नहीं उन्हें यदि स्वच्छंद छोड़ दिया जाए तो, वे सब भूखों ही मरने वाले हैं ! उनकी देखभाल करने का काम इस समय मुझे दिया गया है। ऐसे पशुतुल्य व्यक्तियों के जड़ श्रम का संगठन कर वीरवणिकों की बस्ती का संरक्षण करने का काम, परम्परा ने मुझे सौंपा है—मैं इस अमानत पर पानी न फिरने दूँगी। यह बात हरगिज़ नहीं हो सकती ! यदि आप लोग मेरा प्रस्ताव नहीं मानते, तो आप सब मिलकर दूसरा कोई पृथ्वीसेट्ठि चुन लीजिए।"

"गोमती अम्मा ! तुम तो मेरी बेटी-जैसी हो और मैं तुम्हारे पिता-जैसा हूँ। परन्तु तुम्हारे मस्तक पर जो मुद्रा है, उसके सम्मुख मैं सिर झुकाता हूँ। तुम्हें यह भी मालूम है कि टोटी को समझाकर होलेयों को लज्जित करने में कोई कसर बाकी न रखी थी। टोटी को, लाख वराह की कणिका देने का प्रस्ताव रखा था, किंतु उसने साफ इंकार कर दिया और अपने जातिबंधुओं से गद्दारी करना स्वीकार न किया !"

"एक लाख वराह !...तो भी वह नहीं माना ?"

"नहीं माना। मैंने तो उसे एक स्वतंत्र जहाज़ के नेतृत्व का और मणिग्राम में स्थान देने का भी प्रलोभन दिया था। इतने पर भी वह न माना।"

"परम्परानुसार जिसके जो कर्त्तव्य हैं, वे उन्हें करते आए हैं और करते रहेंगे। इसमें प्रलोभनों का क्या काम ?"

बड़े व्यवहारी ने गोमती से नज़र हटाकर वीरवणिकों पर डालते हुए कहा—"तुम सब मणिग्राम के सेठ हो। तुम सब वायीजन सेट्ठि को तो बुलवाओ; उनका भी मत ले लो; आखिर हमारे पृथ्वीसेट्ठि तो वे ही हैं !

उन्होंने अपनी मुद्रा गोमती को सौंप दी है और पूर्वदा की रीति है कि व्यवसाय और व्यवसाय के अतिरिक्त सभी बातें पृथ्वीसेट्ठि के मतानुसार होती रहें। आज वायीजन सेट्ठि को अध्यक्ष के स्थान पर बुलवाइए। हम उनसे एक बात चाहते हैं—एक ही बात—या तो आप स्वयं पृथ्वीसेट्ठि की मुद्रा सँभालिए या मणिग्राम को लौटा दीजिए।"

तभी एक वृद्ध व्यक्ति ने कहा—"हमें यह क्लेश ज्यादा बढ़ाना इष्ट नहीं है। अब भी यदि होलेय शांत नहीं हुए होते, लौट न गए होते, हवेली के ऊपर आक्रमण करते होते—तो मणिग्राम तुम्हारी सूचना का स्वागत करता; संसार और जीवन से विरक्त हुए वायीजन सेट्ठि को वापस लाया जाता। परन्तु होलेय शांत हो गए हैं; फिर से लौट गए हैं, और कल वे अपने काम पर लग जाएँगे। फिर भला हमारे करने के लिए बाकी क्या रह गया है ? हम तो वयोवृद्ध अनुभववृद्ध हैं और गोमती तो अभी भी बालिका है। तो भी आज तक जो बात सत्य थी—उसे हमने स्वीकार कर लिया है। होलेयों के साथ मित्रता करने की नहीं, परन्तु...परन्तु....बखेड़ा या तूफ़ान करेंगे तो, कुछ न कुछ ज़रूर मिलेगा, ऐसा यदि होलेयों का विचार हो तो, आज जैसी आपत्ति बार-बार आए। परन्तु आज तो होलेयों को काम करने दो, बाद में सारी समस्या पर विचार किया जाएगा।"

"परन्तु वृद्धजनो ! मेरी एक अंतिम बात अंतिम बार सुनेंगे ?"

"कौन-सी बात ?"

"वीरवणिकों के सामने आज कौन-सी बाहरी शक्ति है, यह तुम जानते हो। ये बंधु जो यहाँ आए हैं, इन्होंने हमें मदद दी है; हम इनकी ऋणी हैं। परन्तु इस परदेशी मुसाफिर को, कितने दिनों तक, रोका जा सकता है ? उड़ते पंछी के समान यह आया है और जैसे यह आया है वैसे ही चला जाएगा। और इसकी धाक की छाया में होलेयों की शांति, भला कितने दिन टिक सकती है ?"

इस बात का जवाब, आप कोई न दे सकेंगे। मेरे बाप-दादाओं की परम्परा को रक्षित रखने के लिए जो कुछ करना होगा, वह, मैं हँसते-मुख करूँगी। यह मैं शपथ खाकर कहती हूँ। जब तक होलेयों के इस प्रकरण का

"क्यों, क्या विचार कर रहे हो ?" गोमती ने पूछा।

"यह तो मुझे भी मालूम नहीं पड़ रहा है। बगीचे में जिस प्रकार भाँति-भाँति के पक्षी उड़ते हैं, उस प्रकार आज मेरे मन में भी कई विचार उड़ रहे हैं।"

"जितना सोच-विचार करना है उतना कर लो—विचार करने की तुम्हें इजाज़त है—परन्तु एक विचार तुम कभी मत करना—यहाँ से लौटने का।"

"और दुर्भाग्यवश मैं यही सोच रहा हूँ।"

"वही एक रास्ता बंद है, मैंने सभी के बीच जो बात कही थी, क्या तुमने नहीं सुनी ?"

"सुनी है। इसीलिए तो मुझे जाना पड़ेगा !"

"ऐसा क्यों ?"

"क्योंकि, तुम्हारे मत में तो यह बात हो नहीं सकती।"

"क्यों नहीं हो सकती है ? मैं वीरवणिक की पुत्री, व्यवहार को समझ कर ही बोलती हूँ। क्या तुम्हें ऐसा लगता है कि जो कुछ मैंने कहा है वह बिना सोचे-विचारे कहा है ?"

"सचमुच मुझे ऐसा ही लगा है।" बिबोया ने कहा, "मेरी बात छोड़ो, अपनी ही बात करो। इतने होलेयों को वश में रखने के लिए तुम्हें क्यों परवश होना चाहिए ? मैंने ऐसा सुना है—यह सच है या झूठ, यह मैं नहीं जानता। परन्तु मैंने एक बात सुनी है—कि वीरवणिकों की पुत्रियाँ स्वयं को पसन्द न आने वाले पतियों को नहीं पसंद करतीं। और यह भी सुना है कि वीरवणिकों की पुत्रियाँ विवाह हो जाने पर अपने ससुराल नहीं जातीं—बल्कि जामाता को उनके घर रहना पड़ता है। क्या यह सब सच है ?"

"यह हमारी परम्परा है। तुम यह सब क्यों पूछ रहे हो ?"

"पूछने का कारण तो इतना है—तुम्हें देखने के बाद तो ठीक, परन्तु तुम्हें देखने के पहले ही तुम्हारे नाम मात्र से ही तुम्हें देखने की इच्छा हो गई।...तुम्हें मैंने देखा—दुष्ट लोगों के बीच तुम अडिग खड़ी थीं....

तुम्हें मैं क्या कहूँ ? मैं वीरता का पुजारी हूँ। और मुझे तुम्हारे विचार अच्छे लगे। परन्तु...परन्तु...और अधिक मैं तुम्हें क्या कहूँ ?"

"जो कुछ कहना हो कहो। सारी रात अपनी ही है।"

"तुमने....तुमने भरी-सभा में कहा था कि ज़रूरत पड़ने पर, तुम मेरे साथ विवाह करोगी ! मुझे यह बात पसंद आई, परन्तु...."

"परन्तु क्या ? मैंने स्वयं ही यह बात कही थी। और ज़रूरत पड़ने पर, इसका पालन भी करूँगी। मुझे क्या करना चाहिए, इसका उत्तर आप स्वयं हैं।"

"किसी भी कुमारी लड़की को मैंने अपने विवाह की बातें स्वतंत्रतापूर्वक कहते नहीं सुना ! देखा भी नहीं"—बिबोया ने कहा—"मैं जहाँ से आया हूँ, वहाँ शादी की बातों में शर्म, और संकोच की भावनाएं छिपी रहती हैं।"

"तुम कर्नाटकी ब्राह्मण प्रतीत होते हो।" गोमती ने व्यंग्यपूर्वक कहा—"मैंने सुना है कि कर्नाटक के ब्राह्मण विवाह के प्रसंग को बहुत बढ़ा-चढ़ा देते हैं। वे लोग तो विवाह के प्रसंग को ही जिंदगी का सबसे बड़ा मामला मानते हैं और उसकी विधि में कई दिन लगा देते हैं !"

"यद्यपि मैं कर्नाटकवासी हूँ, परन्तु ब्राह्मण नहीं। वहाँ के ब्राह्मणों के आचार-विचार मैं जानता हूँ। तुम कहती हो, यह बात सच है। परन्तु मैं तुम्हें पूछता हूँ कि जीवन में विवाह ही महत्त्वपूर्ण विषय न हो, तो दूसरा महत्त्व का विषय क्या रह जाएगा ?"

"हज़ारों वर्षों से मानव-समूह जिस रीति से ज़िंदा है और जीता आया है, उसकी पूर्वदा ही महत्त्वपूर्ण है, दूसरी कोई बात, इससे अधिक महत्त्व नहीं रखती। पूर्वदा ही मानव मात्र का सच्चा देवता, यही शासन, यही समय, यही सम्प्रदाय है। इस पूर्वदा की रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। हम इस विवाह को इस रीति का मानते हैं, इससे पूर्वदा दृढ़ होनी चाहिए—टूटनी नहीं चाहिए।"

"परन्तु, मानो कि एक दूसरे के अनुकूल न हो तो ?"......

"अनुकूल किसलिए न हो ? जो लोग विवाह में वासना को

मानते हैं वे ही अनुकूलता का विचार करते हैं। आज इससे अधिक मैं तुम्हें क्या समझाऊँ ?"

"तुम कुछ न कहो, यही ठीक है। हमारे यहाँ ऐसी चर्चाएं कुमारी कन्याओं के साथ नहीं की जातीं।"

"क्यों नहीं करते ?" प्रकृति का क्रम है कि नारी और नर को, जिस प्रकार स्वाभाविक भूख लगती है, उस प्रकार वासना-संतुष्टि की भी भूख लगती है। हमारे यहाँ हम विवाह को अधिक ऊँचा स्थान नहीं देते।"

"तुमने यह अपने मन में सोच लिया है कि तुम मेरे साथ विवाह करोगी—विवाह की बात करोगी—इसलिए मैं स्वीकार करूँगा।"

गोमती खाट से खड़ी हो गई। धीरे-धीरे वह आगे आई, उसकी आँखों में जैसे तूफ़ान था। और उसके होठों पर मंद-मंद मुसकराहट थी। मानो कामदेव पुष्पधनुष चढ़ाकर सामने आ रहे हैं।

बिबोया के सामने खड़ी रहकर गोमती ने पूछा—

"तो क्या तुम मुझे स्वीकार नहीं करोगे ?"

इस सरल प्रश्न को सुनकर बिबोया एक कदम पीछे हट गया—

"तुम...तुम...तुम....परन्तु मैंने मना कब किया ?"

बिबोया का हाथ पकड़कर गोमती उसे धीरे-धीरे अपने पलंग की ओर खींचकर ले गई। उसने कहा—"यह तो मैं जानती ही थी।"

"तुम....तुम...तुम...जानती ही थी ? मुझे एक प्रश्न भी पूछे बिना ?"

"कोई लड़की इक्कीस-बाईस वर्ष की हो जाए, वहाँ तक भी वह यदि सामने के आदमी की आँख या चाल न पहचान सके, तो उसकी जिंदगी ढोर के समान बीतेगी। क्या तुम्हें एक बात मालूम है ?"

"कौन-सी ?"

"बेलगोला में मैं ही एक तरुणी कुलकन्या हूँ। मैं सुन्दर नहीं यह तो तुम भी नहीं कह सकते। और मेरे पिता धनवान हैं। हमारे यहाँ के युवकों की महत्वाकांक्षा ही किसी श्रीमंत का जमाई बनने की होती है। पत्नी मिले, धन मिले, व्यवहार मिले। इसलिए नाना छप्पन देशों में आते-जाते युवक जब भी बेलगोला में आते हैं तो घर को घेर लेते हैं। और तुमने देखा

ही है कि वरजांग यहाँ से खिसकने का नाम भी नहीं लेता। हमारे यहाँ एक पुरानी रूढ़ि चलती आई है कि यदि भाई की लड़की हो, और बहन यदि अपने लड़के के लिए उसको चाहती हो तो, कोई मना नहीं कर सकता।"

"तुम....तुम...अपने विवाह के लिए इतने सीधे स्पष्ट ढंग से बात कर रही हो, सुनकर मुझे तो कँपकँपी आ जाती है।"

"हमारा संवनन ही ठंडा है।"

"हाँ, जैसे तुम हिमालय पर बैठी हो वैसे बात कर रही हो।"

"इसका कारण कहूँ ?"

"कहो न ?"

"सत्य-सत्य कहूँ ?"

"हाँ।"

"तुम्हें मैं हिमालय जैसी ठन्डी लगती हूँ इसका कारण है—मेरे हृदय में आग भरी है।"

"आग ?"

"हाँ, सैकड़ों सैकड़ों मनुष्यों के बीच में से जब तुम अपना मार्ग ढूंढते आए हो, और तुमने टोटी को सब कुछ साफ-साफ सुना दिया, जब तुम होलेयों को लेकर घूमे—तब इस जगत् में तुम्हारे अतिरिक्त मेरे लिए कोई नहीं था। मानो अनन्तकाल से मैं जिसकी राह देख रही थी वही तुम आ पहुँचे हो। मेरे नाथ ! जिसे मैंने अपना धर्म माना है—उसे मैं छोड़ूंगी नहीं।"

"यह सब तुम किससे कहती हो ? मुझसे ? तुम जानती हो, मैं कौन हूँ ?"

"हमारे वीरवणिकों में नर और नारी की एक ही जाति होती है—पुरुष और स्त्री की—हम और कोई भेद-भाव नहीं मानते। तुम आए। मेरा धर्म जैसे बढ़कर ऊँचा हो गया—नारी का मेरा कर्त्तव्य, और वीरवणिकों के लिए मेरा कर्त्तव्य—फिर मुझे यह जानकर करना ही क्या है कि तुम कौन हो ? तुम तो जो हो, वही हो। बस, तुम होलेय तो नहीं हो न ?"

"नहीं, वह तो नहीं !"

"तो ठीक। दूसरी सब बातें हम शांति से करेंगे। ज़िंदगी भर साथ ही रहना है, तो सभी बातें इसी समय नहीं कर डालनी हैं। मैं तुम्हारा कुल नहीं पूछती, मैं तुम्हारा निवास-स्थान भी नहीं पूछती। मैं तुम्हारी वफ़ादारी भी नहीं पूछती, क्योंकि उसे तो मैंने अपनी आँखों देखा है।"

एकाएक बाहर कोलाहल हुआ।

वरजांग लाल-पीला होकर अंदर घुस आया।

"वरजांग!" गोमती ने पूछा—"यह क्या?"

"यह क्या? तुम अधिकार लेकर पृथ्वीसेट्ठि के आसन पर बैठी हो। एक पुरुष के पद को तुम स्त्री होकर दबाए बैठी हो। और अपने से अच्छे व्यक्ति के लिए तुम यह जगह खाली नहीं करती। बाहर क्या हो रहा है, यह तुम जानती हो?"

"नहीं। मैं नहीं मानती कि बाहर कुछ हो रहा है। और यदि हो भी रहा है तो उसको ठीक कर देने वाला पुरुष यहाँ बैठा है। क्या हो रहा है, बाहर?"

"बाहर दूसरा कुछ नहीं हो रहा है, सिर्फ यही कि सभी होलेय और पालेर बेलगोला छोड़कर चले गए हैं।"

"क्या?"

"हाँ। यदि विश्वास न हो तो इस ऊँची हवेली की चाँदनी पर जाकर एक नज़र डालो। तुम यहाँ से भी देख सकोगी।"

गोमती थोड़ी देर बाद ही ऊपर चली गई। और उसके पीछे वरजांग दौड़ा।

ऊँची हवेली से दूर, मशालों का जैसे जंगल बन गया था। मशालों के प्रकाश में होलेयों और पालेरों का एक बड़ा समूह, निरंतर गति से जाता हुआ, दीख रहा था!

गोमती उन्हें देखती रही...देखती रही—

बेलगोला के होलेय और पालेर सभी चले जा रहे थे। वे शहर की हवेलियों और तंग गलियों में से बाहर मैदान में खड़े थे। और उनकी तैयारी भी ऐसी थी कि कोई व्यक्ति—चाहे वह बलवान हो तो भी—उन्हें डरा या दबा न सके।

निश्चय ही इन पशुओं को किसी ने बुद्धि दी थी। गाय, भैंस या बैलों को क्यों न ऐसी बात सूझती है? और होलेयों को भी आज तक क्यों न सूझी थी? भय का सामना करने पर कुछ नहीं बाकी रहता, यह इन्हें किसने समझाया है?

उस टोटी ने...और टोटी को किसने समझाया?....राय रेखा....राय हरिहर....उसी ने....उसी ने।

वह दौड़ती हुई नीचे आई। वह बिबोया का हाथ खींचते हुए बोली—"देखो, सभी होलेय और पालेर चले जा रहे हैं। सभी के हाथ में हथियार वगैरह हैं। सभी खुले मैदान में हैं। यदि उनका कोई सामना कर सकता है तो वह केवल आप हैं। तुम जाओ.. .जाओ!...."

और गोमती बिबोया को बाहर धकेलने लगी—"तुम जाओ!...जल्दी जाओ!"

तभी तिरस्कार और आत्मसन्तोष से भरा हास्य वहाँ सुनाई दिया। दरवाज़े के बीच खड़ा वरजांग अट्टहास कर रहा था—

"अरे गोमती, अरे अम्मा! अरे, अपने आपको समझदार मानने वाली बेवकूफ लड़की! क्या यह आदमी होलेयों और पालेरों को रोकने जानेवाला है? अरे, यह तो तेरी आबादी और तेरी आबरू, दोनों लेने के लिए आया है। जानती है, यह कौन है?"

"नहीं, मैं तो एक ही बात जानती हूँ कि...."

"अरे, चुप रह मूर्ख, चुप रह! यदि एक शब्द भी आगे बोलेगी तो तेरी जीभ गिर जाएगी। अरे गँवार! अरे, यही तो है होलेयों का आक्रमण कराने वाला! यह तो तेरे होलेयों को ले जाने के लिए आया है! यह है राय हरिहर का सिपाही! राय हरिहर का जासूस! इसका नाम है बिबोया और यह तो है राय हरिहर की हस्तिसेना का नायक!"

स्तब्ध गोमती वरजांग और बिबोया के सामने बारी-बारी से देखने लगी।

अभी वरजांग और भी कहना चाहता था। गोमती ने जिस रीति से उसका तिरस्कार किया था, उसका वैर लेने के लिए वह अड़ा था। और

किसी काले नाग के समान फन मारने का रास्ता देख रहा है, ऐसी आवाज में वह बोला—

"यह तो तुझे लेने आया है! यह तुझे मदद करने नहीं आया है—तुझसे शादी करने के लिए आया है! जुए में इसने शर्त रखी है कि यह शर्त दादैया सोमैया का आशीर्वाद है।....अब इसके लिए तुझे जो कुछ कहना हो कह।"

क्षण भर के लिए उसके सिर के बाल मानो भूरे हो गए!

गोमती ने बिबोया के चेहरे की ओर देखा। और वरजांग के इस तथ्य में उशे कोई शंका न थी। धीरे-धीरे वह पर्यंक की तरफ गई। और गद्दी के नीचे से अपना चाबुक निकाली और अच्छे शिकारी के समान वह बिबोया पर टूट पड़ी।

"यह तुम्हारे मालिक के लिए....यह तुम्हारे राय हरिहर की राय-रेखा के लिए....तुम्हारे विजयधर्म के लिए....यह तुम्हारी शर्त के लिए....यह....यह..."

मानो वहाँ चाबुक की धारा की वर्षा होती रही, और उसकी भयंकर ध्वनि मध्यरात्रि में गूँजती रही!

: १५ :

बिच्छू का डंक

जब गोमती और बिबोया दोनों दीवानखाने में पहुँचे तब मोमसार्मा हवेली के प्रधान दरवाजे के भीतरी मैदान में बैठा था।

वहीं सावनी आई और उसके सामने बैठ गई।

"अब दूसरा क्या चाहिए ? दो बिस्तर तैयार हैं। पानी भी है। रात्रि जागरण करना हो तो अल्पाहार भी है, शतरंज और चौपड़ भी हैं।"

"बाला, तुम्हें चौपड़ या शतरंज खेलना आता है ?"

"क्यों ?"

"इसलिए कि रात के जागरण में शतरंज या चौपड़ खेलती हो तो तू मेरे पास रुक सकती है। नहीं तो मैं अकेला ही रह जाऊँगा। इसमे शक नहीं।"

"क्यों, तुम्हारा वह वीर साथी है, न ? मुझे गोमती अम्मा की आज्ञा थी कि उनकी शय्या भी यहीं सजेगी। और उनकी मेहमानदारी भी यहीं होगी। होलेय फिर से यहां हमला कर दें तो ?"

"शायद अब होलेय नहीं आएंगे और मेरे बहादुर साथी को गोमती अम्मा ले गई हैं। उनका जो कुछ सत्कार करना होगा वह, तुम्हारी बाई-साहबा खुद ही करेंगी !"

सावनी के चेहरे पर एक बदली-सी आई और चली गई। परन्तु सोम-सामी ने यह सब कुछ न देखा। उसकी आँखों को (सावनी होलेय हो तो होलेय, दासी हो तो दासी) उसकी पतली छटादार देह बहुत सुन्दर लगती

थी। सोमसामी को लगा कि बोमाया सुन्दर है, चतुर है और मेहनती भी है, परन्तु सावनी उसकी अपेक्षा अधिक आकर्षक थी। (और इस अखंड जागरण की निशा में तो रात के सामीप्य के लिए वह अधिक योग्य थी, इसमें दो मत नहीं हो सकते।)

इसलिए, सावनी के चेहरे पर छाई बदली को देखने की नज़र सोमसामी के पास नहीं थीं। इस समय बोमाया सौ योजन दूर थी और उसके दिव्य चक्षु नहीं थे। सावनी नज़दीक थी और उसके दिव्य चक्षु न हों, परन्तु उसके नेत्रों में दिव्यता थी—इसी एक ख़याल से उसके नेत्र, मन, सिर, विचार सावनी में डूबे थे कि दूसरा कुछ भी देखने का अवकाश ही नहीं था!

इसलिए सावनी का चेहरा देखते रहने पर भी, उसके परिवर्तनों को वह नही देख सका, नहीं समझ सका!

पल भर के लिए सावनी जहाँ थी, वहीं खड़ी रही। फिर अपने होठों पर हास्य की रेखा झलकाकर ज़रा पास आई। सोए हुए सोमसामी के विस्तर के कोने पर बैठ गई—

"होगा! बड़े लोगों की बड़ी बातें!" सावनी ने कहा—"परन्तु गोमती अम्मा अचानक यहां आएं और मुझे यों देखें तो उनका चाबुक और मेरी देह—दोनों में से पहले कौन टूटता है, यही देखना शेष रह जाएगा।"

"अब तो गोमती अम्मा नीचे आनेवाली नहीं। अपने खंड में बिबोया के साथ उन्हें बहुत-अधिक कामकाज है। बहुत अधिक प्रश्नों पर सोचना और उनका निराकरण करना है।"

"जाओ, जाओ!" सावनी ने कहा—"तुम तो ठग हो। उस अतिथि को तो गोमती अम्मा पहचानती भी नहीं हैं। तब उनके साथ वे ज्यादा बातें क्यों करेंगी भला?"

"इस प्रकार तो हम दोनों के लिए भी क्या बातें हो सकतीं हैं? फिर भी हम बातें ही कर रहे हैं?"

"अरे, मैं तो भूल ही गई!" सावनी जल्दी से खड़ी हो गई।

"क्यों?"

"तुम थक गए होगे, इसलिए तुम्हारी थकान मिटाने के लिए सोम-

विजया तैयार कर रखी है—मसालेदार !—और मैं तुम्हारे साथ बातें करने बैठ गई !"

"हाँ ! मैंने सुना है कि बेलगोला में तुम लोग सोमवल्ली पैदा करते हो। उसके रस की हमने बहुत प्रशंसा सुनी है। परन्तु उस रस का स्वाद अब तक नहीं जाना।"

"तुम कहाँ से करो ? वल्ली तो हिमालय में हिम की गोद में ही उगती है। वहाँ से यहाँ पर गंगाजल से भरे पात्र में डुबोकर लाई जाती है। श्रीमंत सेठ लोग ही इसका रसास्वादन कर सकते हैं।"

"ऐसा ? तो लाओ, आज चखें तो सही, तुम्हारे हाथों से !"

"तुम्हारी वीरता देखकर ही तो गोमती ने आज्ञा दी है ! नहीं तो हम उसे हाथ भी नहीं लगा सकते !"

"हमें हाथ कहाँ लगाने हैं ?—होठ ही लगाने हैं।"

सावनी एक पात्र लेकर आई। सोमसामी को कनक का यह पात्र देते हुए बोली—"सामी, इसे तो सोने के या ताँबे के वर्तन में ही रखते हैं। इसे पीने से थकान साफ मिट जाती है, आँखे त्रिकालज्ञानी बन जाती हैं और मन मोर के समान नाचने लग जाता है"—

सोमसामी ने रस का पान करते हुए कहा—"सचमुच, यह तो संजीवनी है। शायद यही पुराने ज़माने की संजीवनी होगी !"

"हाँ, हाँ !" सावनी ने सोमसामी के हाथ से खाली पात्र लेकर दूसरा भरा वर्तन देते हुए कहा—

"वैसे तो मुझे विजया पसंद नहीं।...."

"बहादुर होकर तुम्हें विजया अच्छी नहीं लगती ? बेलगोला में सोमवल्ली ऐसे-वैसे को नहीं मिलती है। वीरवणिक लोग तो इसे विदेश में भेजते भी नहीं हैं। लो यह दूसरा पात्र, फिर ऐसा वक्त नहीं आएगा।"

"यह दूसरा पात्र किस लिए था ?"

"यह तुम्हारे वीर साथी के लिए था। तुम कहते हो वह यहाँ नहीं हैं, इसलिए अब यह तुम्हें ही पीना पड़ेगा।"

"नहीं....नहीं...नहीं।"

"तो क्या, इस अमूल्य तरल द्रव को फेंक देना है ?"

"तुम भी एक घूंट लो, न ?"

"नहीं। गोमती अम्मा को यदि मालूम पड़ जाए तो फिर मुझे संजीवनी भारी पड़ जाएगी। उनके एक ही कशा की मार से मूर्च्छा आ जाएगी।"

"परन्तु तुम होलेय तो नहीं हो ?"

"हमारी गोमती अम्मा की नजर में, जो आए, वही होलेय है। यों तो मैं वीरवणिक की पुत्री हूँ।"

"ऐसा लगता ही है।" सोमसामी पर सोम और विजया का असर चढ़ता जा रहा था।"

"ऐसा क्यों ?"

"तुम तो होलेयों जैसी नहीं हो।"

सावनी हँसी—"यह तो अच्छा है कि बोमाया सौ योजन दूर है, यदि तुम्हें वह ऐसा कहते हुए सुने तो ?"

"तो क्या बोमाया को पहचानती हो ? कैसे ?"

"नहीं, नहीं। मैंने तो केवल उसका नाम ही सुना है। मुझे तो टोटी ने कहा है कि बोमाया ने विवाह कर गृहस्थी बसाई है—उसी का नाम है, सोमसामी।"

"तो तुम टोटी को भी पहचानती हो, कैसे ?"

"टोटी को कौन नहीं पहचानता ? वह यहीं के होलेयों में से एक था। और उसके ऊपर गोमती अम्मा का अधिकार था।"

"अच्छा !" गोमती को यदि अधिक समय मिलता तो वह अपना पूर्ण अधिकार रख लेतीं। क्यों, ठीक है न ?"

"भावजी! बड़े लोगो की बातें बड़े लोग ही जानते है। मैं इसे कैसे जान सकती हूँ ?"

"यह भी ठीक है। बड़े लोगों के साथ पहचान हो या न हो, तो भी छोटे तो छोटे ही कहलाते है !" सोमसामी ने कहा।

सोमसामी पर विजया का असर चढ़ गया था। सोमसामी ने कहा—

"छोटे लोगों के साथ छोटों की पहचान अच्छी होती है। बड़े लोग तो छोटों को दबाते रहते हैं।"

"इसमें कौन-सी बड़ी बात है? यह देखो न, तुम्हारे साथ जो व्यक्ति था, वही तुम्हें अकेला छोड़कर चला गया? क्या नाम था उसका?"

"अब तो वह बड़ा आदमी बन गया है। पहले तो वह चोलेत्री में पड़ा रहता था। और अब...अब.... तेरी बात सच्ची है सावनी—मुझे अकेला छोड़कर चला गया! मैं अकेला!..."

"अकेल क्यों? मैं हूँ, न?—मेरा ध्यान है तुम्हें या नहीं?"

"अरे पगली, ऐसा कभी हो सकता है...?"

"बोमाया से पूछना है।"

"अरे, रख बोमाया को! बोमाया अपनी जगह ठीक है।"

"और मैं अपनी जगह पर ठीक हूँ, क्यों?"

"तुम्हारी तो बात ही दूसरी है।"

"तुम्हारे तो भावजी, जगह-जगह पर दूसरी, दूसरी बातें होती रहती हैं! ठीक है, न?"

"नहीं।"

"यह तो तुम और तुम्हारे साथी....पुरुष का क्या! क्या छोटे और क्या बड़े?"

"मैं तो मानता हूँ कि बिबोया ऐसा नहीं है।"

"हाँ, उसी का नाम है भालारी बिबोया। भगवान कालमुख विद्याशंकर का शिष्य है।"

"ऐसा?"

"हाँ।" अब सोमसामी पर विजया का प्रभाव पूर्ण रूप से चढ़ गया था—"और तुम्हें मालूम है?...किसी से कहना नहीं, यह तो केवल तुम्हें अपनी मानकर कह रहा हूँ: वह तो बड़ा अमलदार है। तिरंगी मुद्रा धारण करता है!"

"तिरंगी मुद्रा....तब तो किसी सेना का अमलदार होगा?"

"हाँ। राय हरिहर का नाम सुना है कभी!"

"हाँ," सावनी का सीना धड़कने लगा। बेलगोला में राय हरिहर का नाम कौन नहीं जानता ?....कौन भूल सकता है उन्हें ?—

"हाँ, नाम तो सुना है। क्या वह बड़ा सेनापति है ?"

"अरे पगली ! वह तो तुंगभद्रा से रामेश्वर तक के दक्षिणापथ में विजयधर्म के महामंडलेश्वर हैं !"

"तब तो राजा...होगा...अरे बाप !!"

"अरे राजा नहीं, पगली, राजाओं का राजा। काम्पिली उनके शासन के अन्तर्गत है। वारंगल, उदयगिरि, होनावर, चन्द्रगुट्टी और द्वारसमुद्र जैसे बावन दुर्गों के दुर्गपाल उनके शासन में हैं। वह राजा नहीं, राजाओं का राजेश्वर है...इसलिए कि भगवान् कालमुख राजराजेश्वर हैं और राय हरिहर महामंडलेश्वर हैं। मदुरा का सुलतान एहसानशाह भी उससे डरता है !"

"हाँ !...तो बहुत बड़े आदमी कहलाते हैं ?"

"हाँ, और इतने बड़े आदमी का दायाँ हाथ मेरा दोस्त है। जानती हो, बिबोया कौन है ? अरे, वह तो राय हरिहर की हस्तिसेना का दण्डनायक है।"

"अरे !...मुझ भोली लड़की को गँवार मानकर ऐसी डींगें क्यों हांक रहे हो ?"

"डींग ?"

"तब क्या ? कुछ दिन पहले हमारे यहाँ एक व्यक्ति आया था। नाम था...क्या...क्या...मँगी...जँगी..."

"सालुवा मांगी ?

"हाँ, बस वही सालुवा मांगी। वह गोमती से विवाह करने आया था। तब वह कहता था कि वह हाथीसेना का दण्डनायक है।"

"यह तो तब था...अब उसकी जगह भालारी बिबोया आया है। बेचारा सालुवा मांगी रह गया है !"

एकाएक सोमसामी हँस पड़ा—"अरे, यह तो एक मजाक है, मजाक !"

"क्या मजाक ?"

"यही की सालुवा मांगी गोमती अम्मा से शादी करने आया था। परन्तु उस बेचारे को निराश हो जाना पड़ा।"

"उसे देखते ही यह मालूम होता था। परन्तु इसमें इतनी हँसी की क्या बात ?"

"अरे, हँसने जैसी ही तो है। मेरी चोलेत्री में सालुवा मांगी और बिबोया के बीच शर्त्त थी। बिबोया ने कहा कि जो तू न कर सका वह मैं कर बताऊँगा—एक महीने में गोमती से विवाह कर आऊँगा। यदि मैं उससे विवाह कर आऊँ तो तेरा सब धन मेरा और यदि विवाह न हुआ तो मेरा सब धन तेरा। ऐसी शर्त्त थी उन दोनों के बीच ! अब इस पर हँसना न आए तो क्या ?"

"अरे वाह !" सावनी ने कहा—"तुम्हारे विजयधर्म राज्य के अमलदार काम तो ठीक करते हैं, न !"

"इसमें कामगिरी का प्रश्न नहीं। यह तो, बात ही बात में लग गई शर्त्त !"

"ऐसा ? तो आप इसीलिए आए थे ?"

"निकल गए हम दोनों। बेलगोला में पैर रखते ही अच्छे शकुन हुए। वह वरजांग है न, वह तुर्कों की मदद माँगने जा रहा था। फिर देखा कि गोमती अम्मा की हवेली होलेयों से घिरी थी..."

"इसलिए पहचानने का अच्छा अवसर मिल गया, क्यों ?"

"हाँ, सावनी ! इन होलेयों ने बखेड़ा मचाया तो हमारे काल का सुअवसर आज आया। मेरे साथी को गोमती मिली और मुझे.. तू...मिली।"

"हाँ, भगवान की दया अपार है, क्या ?" और सोमसामी ढल पड़ा।

जिस प्रकार कोई छोटा बच्चा माँ की गोद में बैठ जाता है तो वह अभय अनुभव करता है। उसी प्रकार इस समय विजया की गोद में बैठने पर उसे अभयदान मिला था। यदि उसे यह निर्भयता न मिली होती तो उसका शरीर काँप-काँप जाता।

बेचारे सोमसामी ने बोमाया के अतिरिक्त कोई दूसरी स्त्री देखी न थी।

बेचारा ब्राह्मण....कल तक वह अग्रहार में देव-पूजा करता था, जिसे

दूसरे लोग वेद का मंत्र मानते थे। उसे किसी दिन इस मंदिर के क्षेत्र से बाहर जाने की जरूरत नहीं पड़ी।

इस तरह बोमाया से उसकी भेंट हुई। बोमाया थी होलेय। शरीर स्वस्थ था और मुखमंडल मध्य वर्ण का था। भोला ब्राह्मण इस परिश्रमी होलेय के पैरों में बिछ गया।

सोमसामी का नारी का अभ्यास यहाँ से आरम्भ हुआ और यहीं समाप्त भी हुआ। बोमाया के चेहरे से शुरू हुआ उसका स्वाध्याय बोमाया के पैरों में पूरा हो गया। ब्राह्मण को नारी के हृदयतंत्र के टेढ़े-मेढ़े मार्गों का कुछ भी पता न था। और कई पुरुषों के लिए कठोर परिश्रम करने की अपेक्षा मात्र एक पुरुष के लिए परिश्रम करके उस पर अधिकार स्थापित करके उससे अधिक टेढ़ी-मेढ़ी राह बेचारी बोमाया ने कभी ग्रहण न की। सोमसामी के प्रति बोमाया के मन में जो अनन्य वफादारी थी उसके मूल में अपने मालिकों की आज्ञा का पूर्णतया पालन करने का होलेय के रूप में बोमाया का अभ्यास क्रियान्वित था। इसी अभ्यास की प्रशंसा युग-युगों में धर्म और सम्प्रदाय मात्र के अनेक द्रष्टाओं और पण्डितों, ऋषियों और मुनियों, भक्तों और अनुयायियों—सब ने एक स्वर से युगान्तरों के, आर्य नारी मात्र के आदर्श के रूप में सराहना की थी। और यों सत्कार प्राप्त सत्यत्व की भावना उसके मूल में थी। बोमाया ने किसी दिन इसके विषय में कुछ सोचा न था और न सोमसामी ने ही कुछ विचार किया था। अतएव कभी-कभी तो, जहाँ से वाणी भी वापस लौट आती है, इस प्रकार के नारी-स्वभाव और नारी के हृदय तन्त्र की टेढ़ी-मेढ़ी राहों की भूल-भुलैयों को बेचारा सोमसामी कैसे समझ सकता है ?

और उस पर भी इस समय वह सोमरस में घुटी हुई विजया की प्यारी गोद में बेभान पड़ा था। उसकी आँखो के सम्मुख जो परम दिव्य कल्पना-सृष्टि खड़ी हो रही थी उसमें सावनी के समान तुच्छ प्रतीत होनेवाली तरुणी के चेहरे को देखने का समय उसके पास नहीं था। अन्यथा, सोमसामी वहाँ से मुट्ठियाँ बाँधकर भाग खड़ा होता और बोमाया के पैरों-निकट तक पहुँचने तक यह एक साँस भी लेने के लिए मार्ग में नहीं रुकता।

दक्षिण में एक सर्पाकार जन्तु होता है। उसका आकार-प्रकार यद्यपि साँप के समान होता है तथापि वह विषमय नहीं होता। और वह न तो काट ही सकता है और न फन ही मारना उसे आता है। यदि कोई उसे छूता है तो वह गोलाकार कुंडली मारकर बैठ जाता है और अपने मुँह को छिपाकर अपनी रक्षा करता है। मच्छर, पतंग और कीड़ों पर वह अपना जीवन-निर्वाह करता है।

दक्षिणी पर्वतों की गहराइयों और पत्थरों के तलों में तथा घने वनों में किरात नामक भयंकर सर्प रहता है। उसकी एक ही फूंक से गाय और बैल जैसे प्राणी भी तत्काल मर जाते हैं। उसकी फुफकार सुनकर सिंह और हाथी भी भाग जाते हैं। इस किरात सर्प के सिर पर एक बिच्छू रहता है। वह किरात के कालकूट जहर पर ही जीवित रहता है। यह कालकूट-भक्षी बिच्छू जब तब अपना आसन छोड़कर, सैर के लिए निकल पड़ता है। उस समय वह जिसे डंक मार देता है उसका श्वास रुद्ध होकर, जीभ फट जाती है। और वह तत्क्षण मर जाता है। हाथी और बाघ जैसे प्राणी भी इसके काटने पर पल भर में मर जाते हैं।

ऐसा बिच्छू जब उस सर्पाकार निर्विष जन्तु को डंक मारता है तब वह जन्तु दो-तीन दिन तक निरंतर तड़पता रहता है। इसके बाद भयंकर नाग बन जाता है। उसी प्रकार अब सावनी भी एक भयंकर नागिन बन गई थी—। वह बेचारी अपनी आशा के मीनार खड़े किए बैठा थी। अपने हृदय को नंदनवन बनाकर आशा की खुमारियों में नाचती थी।

बिबोया के पर्वताकार स्वरूप की शरण में उसका हृदय समर्पित हो गया था। उसने गोमती की अनन्य सेवा की थी। वह तो थी मध्य समुद्र में डूबे हुए किसी वणिक जहाज़ी की बेटी। वह गोमती की छाया में बड़ी हुई थी और इसलिए गोमती अम्मा उसका सर्वस्व थीं।

बोमाया की जाति से वह परिचित थी। और गोमती अम्मा के उदार हृदय से जो साक्षी प्रकट हुई थी उसके कारण उसके मन में उल्लास भरा था। बिबोया जैसे एक अपरिचित राहगीर ने, एक पहलवान ने गोमती अम्मा की सेवा और सहायता की थी। उनकी लाज रखी थी। सो ऐसे

पहलवान को गोमती अम्मा सावनी का दान देने में आनाकानी न करेंगी, इस आशय की मधुर-मधुर कल्पनाएँ सावनी के मन के नन्दनवन को खिला रही थीं।

सावनी को न कहने योग्य बातें भी सोमसामी ने विजया के नशे में प्रमत्त होकर कह दीं और सावनी के हृदय में मानो कालकूट बिच्छू का डंक लग गया।

और हलाहल ज़हर उसके अंग अंग में सिंचित हुआ। उसकी दृष्टि को जो पसंद आ जाए उसी को प्राणहारी डंक मारने का उन्माद मानो उसके अंग-अंग में धक-धक जलती अग्नि के रस के समान फैल गया।

प्राचीन ग्रंथों में प्रसिद्ध विषकन्या से भी अधिक भयंकर यह कन्या सोमसामी को वहीं छोड़कर अपना जहरीला डंक मारने के लिए दूसरे शिकार की तलाश में—मानो विषयात्रा के लिए निकल पड़ी। और उसने देखा वरजांग को।

माँओं द्वारा लालित-पालित बिगड़ैल बेटों की तरह वरजांग भी बिगड़ैल और रंगीला बेटा था। माता की संपदा और माता की पहुँच और माता के भाई के बैभव पर उसकी दृष्टि थी। इसलिए इस समय इस नौजवान के दिल दिमाग में पारावार का क्रोध भरा था। और उद्वेग भी पारावार का जगा था। परन्तु दुर्भाग्य ऐसा था कि इस समय उसके क्रोध की किसी को परवाह न थी। गोमती वणिकों की परम्परा की हिमायती थी। फिर भी गोमती के व्यवहार में परम्परा के अनुसार जो अधिकाधिक महत्त्वशाली होना चाहिए वह इस समय सर्वथा निरुपयोगी दृष्टिगोचर हो रहा था। और वह नौजवान परम्परा के विरुद्ध जानेवाली गोमती से प्रतिशोध लेने के लिए तड़प रहा था। परन्तु अभाग्यवश प्रतिशोध-पूर्ति का उसके पास कोई साधन न था।

साधारणतया गोमती के आसपास के नारी समाज के मध्य वरजांग को मुक्त प्रवेश और मुक्त व्यवहार प्राप्त था। और सामान्यतः सावनी उससे यथासम्भव काफी दूर रहती थी।

लेकिन नारी से पलटकर नागिन बनी सावनी इस समय वरजांग के

पास गई। हँसकर उसके सामने खड़ी रही। विषकन्या की हँसी हमेशा मादक और मीठी ही होती है। और वरजांग उसके सामने बाड़ बाँधकर बैठा रहनेवाला नहीं था। सावनी सामने खड़ी थी, फिर पास में आकर बैठ गई। पास में बैठी थी सो बगल में लिपटकर वैठ गई। लिपटकर बैठी थी सो वरजांग को बाँहों में भरकर बैठी रही!

और इसके बाद उसने वरजांग से कहा—

"आज मैं तुम्हारे पास आई तो शायद तुम्हें कुछ विशेषता प्रतीत होती होगी कि किसी दिन नहीं और आज ही सावनी को यह क्या हो गया?"

"नहीं, री," वरजांग ने अनायास प्राप्त रस अवसर का सम्पूर्ण लाभ लेते हुए कहा—"नारीमात्र की देह में यौवन होता है और यह यौवन देर या अबेर आमंत्रण देगा और अवश्य देगा। इसलिए आज तुम्हारा आगमन मेरे लिए विस्मयकारी नहीं है।"

"वाह! तुम तो मानो कामदेव के ही अवतार हो कि कोई नारी स्वयं चलकर तुम्हारे पास आ जाए?"

"यह तो राम जाने, लेकिन जब वह आती है तब ज्योतिषी को मुहूर्त पूछने के लिए रुकती नहीं।"

"गोमती अम्मा की तरह, सच है न?"

वरजांग का वदन तनिक व्यग्र प्रतीत हुआ परन्तु वह कुछ न बोला।

"तुम तो वीर वणिकों के पृथ्वीसेट्ठि बनने के योग्य हो।"

"बनने के योग्य वस्तुएँ, सभी बनती ही हैं—यह हमेशा नहीं होता!"

"बात ठीक है परन्तु होना चाहिए।"

"यह तो मैं भी कहता हूँ।"

"इसी हेतु मैं तुम्हारे पास आई हूँ। दूसरे किस व्यक्ति के पास जाती?"

"इस समय तो बेलगोला में जाने आने की जगह बहुत कम है। साफ क्यों नहीं कहती कि मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं। तू आई तो अच्छा हुआ।"

सावनी हँसकर बोली—"यों तो मैं आने वाली नहीं, लेकिन जब आ गई तो भला, स्वामी को सेविका क्या कह सकती है? और मैं तो तुम्हारे पास आई हूँ, क्योंकि मुझे डर लग रहा है।"

"डर ? कैसा डर ? किसका डर ? गोमती का !"

"गोमती अम्मा तो इस समय बड़े काम में व्यस्त हैं, उनका डर नहीं लगता। परन्तु वीर वणिकों की परम्परा से डरती हूँ।"

"परम्परा से ? परम्परा को अचल रखने के लिए ही तो इस गोमती ने होलेयों का यह बवंडर बुलाया है—गोमती तो परम्परा को सहेज कर रखने वाली है !"

"यदि गोमती अम्मा परम्परा की पालनहार होतीं, तो क्या इस समय उनके समीप, तुम्हारे बजाय वह परदेशी मुसाफिर होता ?"

"सावनी, अब तू इस बात को बंद कर दे।"

"नहीं, आप ज़रा देखिए, गोमती अम्मा तो मानो अंधी हो गई हैं, इसलिए परम्परा को सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी क्या तुम्हारी नहीं है ?"

"लेकिन क्या करें ? और तू इस वक्त परम्परा के घोड़े पर कैसे बैठी है ?"

"मैं भी वीर वणिकों की बेटी हूँ—फिर चाहे तुम्हारे ससुर श्रीमंत हों और मेरे बाप गरीब !"

"तो क्या तू यह कहना चाहती है कि मैं तुझसे शादी कर लूँ ?"

"शादी की बात छोड़ो। दासी तो दासी ही है। चाहे वह वणिक जाति की क्यों न हो !—वाह, उसे विवाह करने की क्या ज़रूरत ? ऐसा होता तो तुम्हें आज तक कितनी दासियों से ब्याह करना पड़ता। मैं तो उसकी बात कर रही हूँ जिसके साथ तुम्हें शादी करनी चाहिए—करनी पड़ेगी।"

"तुम गोमती की बात कर रही हो ?"

"हाँ, मुझे उस बेचारी पर दया आती है।"

"दया ? गोमती पर ? यदि गोमती को मालूम हो जाए कि कोई उस पर दया रखता है तो वह उसकी पीठ सलामत न रखे ! क्या तू यह जानती है ?"

"मार खा लूँगी। परन्तु नमक तो हलाल होगा, न !"

"तुम्हें उसकी इतनी चिंता क्यों ? और तुम्हारे मुख से और कुछ नहीं, यह नमक नाम कैसे निकल गया ?"

"राय हरिहर का दण्डनायक ? यह जंगली भैंसे जैसा आदमी ? तुझे कैसे मालूम हुआ ?"

"उसके नौकर या उसके साथी सोमसामी ने मुझसे कहा था।"

"तब तो सच है, सोने के वराह जैसा सच ! परन्तु...परन्तु...थोड़ी रुक जा, मुझे विचार करने दे।"

वरजांग थोड़ी देर चुप रहा। फिर बोला—

"होलेयों को राय-रेखा के नाम पर आगे बढ़ानेवाला है वह टोटी। वह टोटी राय हरिहर का जासूस है। राय हरिहर का दण्डनायक बिबोया होलेयों के बखेड़े और तूफान के अवसर पर ही यहाँ आया था...उसने होलेयों को रोका, और होलेय यहाँ से चले गए। और...और....परन्तु सावनी, एक बात समझ में नहीं आती—वह गोमती के पास गया किसलिए ?"

"होलेयों की तरह ही यदि वह गोमती अम्मा को भी उड़ा ले जाए तो अलाया, तुम हाथ मलते रह जाओगे।"

"ऐसा ?...." वरजांग उछल पड़ा और दौड़ती हुई चाल से वह चलता बना !

गोमती के कमरे में वह गया। वरजांग की बात सुनकर गोमती चौंक उठी। अग्नि जैसी प्रज्वलिता हो उठी !

अपना प्राणहारी दुश्मन....बेलगोला की जान लेनेवाला राय-रेखा... बिबोया कोई जादूगर न था ! वह तो शत्रु का जासूस था ! पृथ्वीसेट्टि गोमती का उसने अपमान किया और अब नारी गोमती का अपमान करने आया था !

होंठ काट कर उसने कशा हाथ में ली। और अपनी कशा के प्रहार अंधाधुंध उस पर बरसाने लगी !

सावनी गोमती को एकटक देखती रह गई ! मानो अपनी आँखें ठण्डी कर रही है। वरजांग के प्रति उसका कोई विचार या विकार नहीं था। वह देखती रही गोमती के चाबुक को। बिच्छू के डंक की तरह बार बार वह उठ रहा था। बिबोया लहु-लुहान था।

गोमती की कशा की मार पर भी बिबोया का कुछ न बिगड़ा। हाथ

या पैर या गर्दन के किसी खुले भाग पर जब कशा का वार होता तो, रक्त से भरपूर कशा फिर से उठती तब भी बिबोया होंठ काटकर अदब से खड़ा ही रहा।

इस दृश्य से आत्मप्रसन्न सावनी का सिर चकरा गया ! वह बिबोया की ओर दौड़ी। वरजांग उसकी राह में आया। उसे धक्का देकर वह दौड़ी.... और बिबोया के सामने ओट बनाकर अपनी देह धर दी !

"अम्मा ! अम्मा !" वह चीखी—"मुझे न किसी ने कहा था न किसी को मैंने कहा था। मैं झूठ बोली थी। मेरे झूठ की सज़ा इसे मत दो, मुझे दो !"

तत्काल गोमती का हाथ रुक गया ! और उसने बिबोया की ओर देखा। यह दृष्टि विचित्र थी। इस दृष्टि में मानो पाषाण की काया चीरकर उसका हृदय पालने की शक्ति थी ! आकुलता थी !

"सावनी !"

"सावनी, तुम भी..." वरजांग कहने जा रहा था।

बिबोया ने एक हाथ से सावनी को दूर कर दिया।

"तुम चली जाओ !" बिबोया ने सावनी से कहा—"यह तुम्हारा काम नहीं है।" फिर गोमती की ओर देखकर उसने कहा—"यह सच है कि मैं राय हरिहर का दण्डनायक हूँ और उनका ईमानदार सिपाही भी हूँ।"

गोमती ने होंठ काटा, आँखें अधखुली मींचीं—मानो शेरनी अपने शिकार पर झपटने के लिए तरस रही है !

"बिबोया ! तेरा ही नाम बिबोया है, न ? तब तो वरजांग की बात सच है कि तू जासूस है !"

"उसकी यह बात ग़लत है।"

जैसे गोमती ने बिबोया की बात सुनी ही न हो, उस तरह कहा—"जासूसों को चुप करने का एक इलाज मेरे पास है। वह क्या है, मैं बतलाती हूँ। वरजांग ! सावनी को ले जाओ ! नीचे से जलती सिगड़ी यहाँ ले आओ !"

"नहीं....नहीं...नहीं....नहीं" सावनी ने चिल्लाकर कहा—"नहीं...

नहीं...नहीं...गोमती अम्मा...दया ! दया !..."

उत्तर में जैसे गोमती की आँखों से सिंदूर का धुआँ निकला ! गोमती ने कशा ऊपर उठाई, और, सावनी की पीठ पर कशा के काँटें लगे—इसके पहले ही बिबोया ने उसके हाथ से उसे खींच लिया। गोमती विस्मयपूर्वक अपनी खाली हथेलियों को देखती रह गई ! खींची गई कशा के ऊपरी काँटे उन हथेलियों के बीच रक्त की लकीरें खींच गए थे।

बिबोया ने अपने अँगूठे और उँगली के बीच रखकर कशा को दबाया और उसके दो टुकड़े कर दिए। आज तक ऐसा व्यक्ति गोमती की नज़र में नहीं आया था। ऐसे व्यक्ति ने आज तक इस पृथ्वी पर जन्म नहीं लिया था—गोमती की इस मान्यता को बिबोया ने भ्रम साबित कर दिया।

फिर बिबोया ने कहा—"जुए की शर्त्त की बात सत्य है। शर्त्त यह है कि या तो मैं तुम्हें प्राप्त करूँ या तुम जो सजा दो उसे मैं भोगूँ। परन्तु सावनी की—तुम्हारी दासी की—बात झूठी है। उस पर मैं तुम्हारा हाथ नहीं उठने दूंगा।"

"मुझे मना करने वाले तुम कौन होते हो ? यह मेरी दासी है। मैं जो चाहूँ उसका कर सकती हूँ। मेरी राह में आओगे तो, मैं जीवित ही उसकी खाल उतार लूंगी। वरजांग, दूसरी कशा ढूंढ़ कर लाओ।"

बिबोया हँसा। लहू से भरे उसके चेहरे की हँसी गोमती को भयंकर लगी। वह कहने लगा—"मैं पहले यह न जानता था कि राय-रेखा क्या है ? तुमने मुझे एक ही पल में बतला दिया। वरजांग ! गोमती ! तुम दोनों सुनो—मेरा तुम लोग चाहे जो कर सकते हो परन्तु मेरे देखते, तुम लोग, अपनी किसी दासी की खाल नहीं उतार सकते।"

"तुम....तुम...चलो ! हम यहाँ से चले जाएं। तुम्हारा रास्ता कोई नहीं रोक सकता ! ऐसा आदमी मैंने नहीं देखा यहाँ !"—सावनी ने कहा। "चलो, चलें !"

"शर्त्त खोना मैंने सीखा ही नहीं है"—बिबोया ने कहा। "तुम्हें जाना हो तो, चली जाओ। मेरी उपस्थिति में तुम्हारा रास्ता कोई नहीं रोक सकेगा। और अगर तुम्हें रहना हो तो रहो, मैं राय-रेखा की शपथ लेकर

कहता हूँ कि मेरे देखते तुम्हारी जीवित खाल कोई नहीं उतार सकता !"

"बेटा गोमती !" अत्याचार और घृणा से भरे उस कमरे में अत्यन्त शांत और स्वस्थ एक स्वर सुनाई दिया !

सभी ने इस स्वर की ओर ध्यान दिया ! "गोमती !" फिर से वही आवाज़ सुनाई दी। कमरे में उपस्थित व्यक्तियों का ध्यान उसी आवाज़ की ओर गया ! दीवानखाने का दरवाजा बिना आवाज़ के खुल गया था और दोनों किवाड़ों के बीच एक वृद्ध व्यक्ति खड़ा था !

वृद्ध के केश 'लोचन' किए हुए थे। उसकी आँखों पर सफ़ेद वालों के भँवर थे। कपाल पर तीन अखंड रेखाएँ थीं। आँखें सर्वथा स्वस्थ और शांत थीं। चेहरे पर अपार्थिव दीप्ति छाई थी। शरीर पर उसने चीनांशुक ओढ़ रखा था। नाना छप्पन देशों के अनेक छोटे-बड़े चित्रकारों ने जिसके चित्र प्रसिद्ध कर दिए थे, ऐसे, इस वृद्ध व्यक्ति को देख कर, चकित गोमती बोल उठी—"बापू ! बापू !"

यह व्यक्ति था वायाजन, गोमती का पिता ! जो अपनी पुत्री को अपनी मुद्रा का अधिकार और आसन देकर चैत्य में प्रायोपदेश की भावना लेकर निश्चित बैठ गया था ! यह था बेलगोला का प्रभु ! वीर वणिकों का पृथ्वी सेट्ठि, वायीजन ! धरती की पीठ पर कहीं से भी उसकी हुंडी खाली लौट कर नहीं आती थी !

"बापू ! आप ! यहाँ ? इस समय ?"

"हाँ, आचार्य पंडित आर्यभद्र पधारे हैं। इसलिए, अब हमें तयारी करनी है।"

: १६ :

वसंत पंचमी कब आती है?

मरणाभिमुख और जीवन के जंजालमात्र से विमुख जो श्रेष्ठि नगर जिनालय के चैत्य में प्रायोपदेश के लिए बैठ गया था, उसे यों अचानक इस खंड में आया देखकर, सबके चित्त क्षुब्ध हो गए।

और उस खंड में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति तीर्थंकरों के उस धाम में हिमानी पवन से मुरझाया-सा ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो किसी समर्थ शिल्पकार ने विश्व-वासनाओं की मूर्त्तियाँ गढ़ी हों! निरंकुश रोष की प्रतिमा गोमती। निरंकुश पश्चात्ताप, पिछली बुद्धि का पश्चात्ताप, वैर और विषाद की प्रतिमावत् सावनी। आस-पास के लोगों के कष्टों से आनन्द प्राप्त करने वाला, परपीड़क वरजांग। ग्लानि, पराजय, विषाद और स्वाभिमान की चित्र-विचित्र वासनाओं की मूर्त्ति के समान बिबोया!.......

और इस समस्त के बीच में हिमाचल का पवन मानो मानव देह धारण कर आया है ऐसा वायीजन!....

क्षण भर के लिए सब लोग इस प्रकार मूक और मूढ़ बने से खड़े रह गए मानो बर्फ़ के नीचे दब गए हैं!

और सबसे पहले बोली गोमती—विचित्र विस्मय को वाचा देते हुए कहने लगी—"बापू! आप, आप! चैत्य से लौट आए?"

"बेटा, आचार्यश्री की आज्ञा है! अब तैयारी करो!"

किंतु इस निर्लिप्त वाणी से गोमती का विस्मय भंग न हुआ।

उसने पूछा—"कैसी तैयारी ? आचार्यश्री की आज्ञा ? कैसी आज्ञा ? मैं कुछ भी नहीं समझ रही हूँ।"

"समझ की अवधि पूर्ण हो गई है बेटी ! अब तो समझदार अथवा नासमझ रहकर भी आचार व्यवहार का समय आ गया है ! संसार के जितने व्यवहार और राग-द्वेष जो निश्शेष हों, सबको छोड़कर, तैयार हो जा !"

"किस लिए ? बाबू कैसी तैयारी ?"

जिस प्रकार भयभीत खरगोश, इस भ्रम में कि कोई शिकारी पशु उसके आस-पास घूम रहा है, अपने अगले पैरों के बीच में मुंह दबाकर, आँखें मूंद लेता है और अंत में जब उसे विश्वास हो जाता है कि उसके पास में कोई शिकारी पशु नहीं है तब अपने पैरों के बीच से वह अपना सिर धीरे-धीरे ऊँचा उठाता है और इधर उधर भयभीत दृष्टि डालता है, उस प्रकार, वर-जांग ने धीमे-धीमे अपनी बंद आँखें खोलीं और चारों ओर देखा ! सहसा उसे मदद मिल गई थी और इस बलकी प्राप्ति से उसका चेहरा चमक उठा था। वरजांग बोला—

"तैयारी किस चीज़ की होगी, भला ? लड़की होकर इतना भी नहीं जानती ? तेरी हठ के कारण तो बापू को चैत्य का अपना योग छोड़ना पड़ा, फिर भी पूछ रही है ? तैयारी दूसरी किस बात की ? विवाह की !"

"विवाह ! किसका विवाह ? कैसा विवाह !"

"विवाह—दूसरे किसका ? इस आयु में पिताजी तो दूसरा विवाह नहीं कर सकते ! और ऐसे-वैसे विवाह के लिए जिनालय को छोड़कर बाहर नहीं आएंगे ! इसलिए विवाह है तेरा-मेरा ! वीर वणिकों की सदियों की परंपरा ने जिस विवाह संबंध का निर्माण किया है और जो सिर्फ़ तेरे हठ के कारण ही आज तक रुकता आया है, वही अब कार्यान्वित होगा ! अंत में बापू का तपोभंग करके ही तुझे चैन मिला ! अब तू अपने पिता की आज्ञा नहीं टाल सकती।"

"बापू !" गोमती ने पूछा—"वरजांग जो कुछ कहता है, सच है क्या ? इसीलिए क्या आपने अपने महातप का त्याग किया है ? सांसारिक राग

की इतनी बड़ी लिप्सा से लिप्त कर्म क्या आपको अब भी मोहित कर सकता है ?"

वार्यीजन ने सिर हिलाया ।

"फिर ? आचार्य प्रभु किसलिए पधारे ? किसने उन्हें बुलाया ? क्या आपने उन्हें संदेश भेजवाया था ? आमंत्रण यदि भेजा गया तो क्योंकर मुझसे छिपा कर रखा गया ?"

"तू कई बातों में बहुत उतावली है बेटा ! संसार के कई रागद्वेष तुझ में भरे हैं। इसी लिए तू मुझसे यह प्रश्न पूछ रही है। अब तनिक ध्यान पूर्वक मेरी बात सुनना : आचार्य प्रभु से मैंने निवेदन नहीं किया है कि वे यहाँ पधारें। आचार्य प्रभु यहाँ पधार कर इस भूमि को पवित्र करें इससे और अच्छी बात दूसरी क्या हो सकती है ? फिर भी मैंने या दूसरे किसी व्यक्ति ने उन्हें आमंत्रण नहीं दिया है। इस समय आचार्यप्रभु स्वयंभू प्रेरणा से ही यहां पधारे हैं। और आदेश भी उन्हीं का है। मैं तो मात्र उनका संदेशवाहक हूँ।"

"संसार से विरक्त होकर प्रायोपदेश करके, देहत्याग करने के लिए मरणोन्मुख व्यक्ति जिस आदेश को सुनकर, अपनी अन्तिम, महान तपस्या भी भंग करने को तत्पर हो जाए, वह आदेश क्या हो सकता हैं ? और उसके लिए क्या तैयारियाँ होनी चाहिए ?"

"हमें तैयारी करनी है भगवान बाहुबलीनाथ केवली प्रभु भगवान गोमटेश्वर के कनकाभिषेक की !"

"गोमटाभिषेक का ?"

"हाँ, पिछला अभिषेक आचार्य नागदेव के आदेश पर किया गया था। तब से आजतक आचार्यों की आठ पीढ़ियाँ गुज़र चुकी हैं। जब आचार्य नागकीर्तिदेव अपनी जीवनलीला समाप्त कर बिदा हुए, तब वे अपने उत्तराधिकारी आचार्यप्रभु पण्डित आर्यभद्रदेव को आदेश देकर गए थे। इसीलिए आचार्यजी इस समय यहाँ पधारे हैं। अब तू समझी ? अब सर्वशेष—राग-द्वेष, माया, मोह, सभी छोड़कर गोमटाभिषेक की तैयारी शुरू करो। वसंत पंचमी का मुहूर्त्त आचार्यप्रभु ने निश्चित किया है।"

"गोमटाभिषेक की ? लेकिन यह अकेले बेलगोला के वीर वणिकों का अवसर नहीं है। यह तो समस्त छप्पन देशों का सुअवसर है। वसन्त पंचमी के आगमन में अब एक महीना भी बाकी नहीं है। नाना छप्पन देशों को कुंकुम पत्रिका भेजी जानी चाहिए। और...और अभिषेक की साधन-सामग्री ....यह सब, इतने थोड़े समय में पूरा कैसे होगा ?"

"गोमती ! यह कौन, गोमती बोल रही है ? वायीजन सेट्ठि की पुत्री बोल रही है ? जिसके पास पृथ्वीसेट्ठि के आसन की मुद्रा है वह बोल रही है ? होश में है या नहीं ? परम्परा आदेश की है और आदेश को अपनाने की है। जाओ, तैयारी करो !"

"परन्तु बापू...बापू...मेरी एक बात तो सुनिए।"

"कौन-सी बात ?"

"अभिषेक की पूजा की तैयारी इतनी बड़ी है कि सैकड़ों होलेय हों तो भी एक वर्ष में पूरी हो सकेगी। आचार्यश्री के लिए गोमटाभिषेक धर्मसाधन का अवसर है। परन्तु बेलगोला के लिए तो ऋद्धि-सिद्धि का अवसर है। होलेयों के बिना तो बेलगोला में ऋद्धि-सिद्धि की कोई झलक भी नहीं मिल सकती। और आज बेलगोला में एक भी होलेय नहीं है !"

"शासन देव के शासन में कोई होलेय होलेय नहीं है या सभी होलेय हैं। बेलगोला के वणिकों की परम्परा है कि आचार्यप्रभु का आदेश खाली नहीं जा सकता। यदि खाली जाए तो वणिकों की ऋद्धि-सिद्धि नहीं रहेगी। शेष संसार में कुछ भी हो, परंतु अभिषेक की विधि तो पूरी होगी और होगी ही। इतनी श्रद्धा मुझमें है। और तुझमें भी होनी चाहिए। जाओ, तैयारी करो !"

और वायीजन श्रेष्ठि जिस भाँति आया था, उसी भाँति लौट गया ! हिमानी पवन से मुरझाया क्षोभ उसके जाने के बाद, फिर से जी उठा ! पुतलियों में प्राण आए। पुतलियों के लिए निश्चित कार्यक्रम आरम्भ हुआ !

अपने पिता की पीठ जहाँ तक दृष्टिगोचर होती रही, वहाँ तक गोमती देखती रही—मानो किसी जादूगर ने किसी नागिन को नज़रबंदी द्वारा

वशीभूत कर लिया है और अचल बना दिया है ! फिर वह बिबोया की ओर देखकर रोप से लहराते विपमय स्वर में कहने लगी--

"तुम...तुम...तुम....द्रोही, जासूस, पाखंडी,....तुम्हीं इस सारे बखेड़े के जिम्मेदार हो ! ...सारे घटित अनर्थ की जड़ हो और सारे अघटित सम्भव अनर्थ की जड़ भी तुम्हीं हो !...तुम्हीं ने नाना छप्पन देशों में हमारी शान को बरबाद कर दिया है ।....हमारे...आचार्यप्रभु के सामने हमारे स्वमानभंग का कारण भी तुम्हीं हो...! ओह...! जी में आता है जीवित ही तुम्हारी चमड़ी खींच ली जाए ! ...जी भरकर तुम्हारा लहू पी जाऊँ...परंतु... परंतु...कोई बात नहीं...मेरे धर्म की आज्ञाएँ मुझे रोक रही हैं...मेरे धर्म का आदेश है मेरे लिए...आज वणिकों की परंपरा आदेश दे रही है कि— अभिषेक के आदेश से लेकर उसकी पूर्णाहुति तक इंद्रगिरि के ऊँचे आसन पर स्थित भगवान् गोमटेश्वर की प्रतिमा की दृष्टि, जहाँ तक जाती है, वहाँ तक के विस्तार में कोई और किसी प्रकार की हिंसा न हो ! किसी तरह का कलह या राग-द्वेष पैदा न हो ! किसी सांसारिक जंजाल का जाल न रहे ! जो आसन वीर वणिकों की परम्परा की शान की रक्षा करता है, वही, आज तुम्हें अपनी छाया में लेता है तुम्हारे सारे गुनाहों को भूलकर !...तुम चले जाओ....जहाँ तुम्हें जाना हो ! जाओ !..."

गोमती ने दो क़दम आगे बढ़ाए । महाप्रयास द्वारा वशीभूत रोष उसके लोचनों में ज्वालाएँ जला रहा था; उसके अंग-अंग को कँपा रहा था । वह इस देह को चकनाचूर करके मानो अभी...अभी बाहर फूट निकलेगा ! और इस विस्फोट की लालिमा से गोमती का चेहरा लाल-सुर्ख़ पड़ गया था !

असावधान सावनी की गर्दन पकड़कर गोमती ने जोर का धक्का दिया । गुलेल से निकली कंकरी की तरह पतली पुकार मचाती सावनी बिबोया से टकराई ! इस पुकार को सुनकर गोमती तिरस्कारपूर्वक मुस्कराई—"और अपनी इस वेला को भी अपने साथ लेते जाओ ।"

फिर धीमे, धीमे, एक-एक क़दम गोमती बिबोया की ओर बढ़ी और बोली—

"और सुनो ! वसंत पंचमी के सायंकाल तक तुम्हें अभयदान मिला है ।

इसके लिए तुम जिन शासन भगवान् और उनकी परम्परा और उनके आचार्यप्रभु के कृतज्ञ रहना, मेरे नहीं। अन्यथा तुम जैसे आदमी के लिए मौत ही एक इलाज है। लेकिन बसंतपंचमी की संध्या बीत जाने पर अगर मैं तुमको जीवित देख लूगी तो....तो....तो...." कहते गोमती तनिक रुक गई--

"तो होयसल राजा अपने कुटुम्बों की चमड़ी खींच लेते अगर वे 'हड़िया राया' चुकाने में चूक जाते। यदि वीर शैव भद्र किसी निगंठ को अपनी भूमि में देख लेते तो करवत से काटकर उसके दो टुकड़े कर देते। यदि कोई नायक अपनी समस्त सम्पत्ति माँगने पर तत्काल कलक्षों को सौंप न देता तो वे उसे जीवित ही जला देते। देवगिरि के सिंहण यादवराज ऐसे सभी विजातीय लोगों की आँखें निकलवा लेते, जो उनके भगवान व्यंकटनाथ की मूर्त्ति की वन्दना न करते।...यदि वसंतपंचमी की संध्या के पश्चात् मैं तुम्हें कहीं देख लूँगी तो इतनी भयंकर मृत्यु तुम्हें मिलेगी कि जिसके समक्ष दूसरी सभी मौतें फीकी पड़ जाएँगी। तुम...और तुम्हारी यह सेना। चलो, जाओ यहाँ से!" और गोमती ने जाने के लिए कदम उठाया।

"ठहरो!" बिबोया ने कहा--"और मेरी बात भी तुम सुनती जाओ। यह सच है कि मैं राय हरिहर का दण्डनायक हूँ। परन्तु मैं दण्डनायक बनकर यहाँ नहीं आया हूँ। न मुझे इस रूप में भेजा ही गया है। जिस विजय धर्म और उसके महामण्डलेश्वर की मैं सेवा करता हूँ, उसने रायरेखा को राज्यरीति के रूप में अपनाया है, यह सच है, परन्तु रायरेखा क्या है--यह, मैं नहीं जानता।

"इस समय भी नही जानता। इसका अमल करवाने के लिए भी मैं यहाँ नहीं आया हूँ। मेरी यह बात मानना हो तो मानना यदि न मानना हो तो न मानना--मैं कोई दोमार नहीं, और न ही विश्वासघाती हूँ। मैं तो इसलिए यहाँ आया हूँ कि मेरी शर्त्त मुझे यहाँ आने के लिए प्रेरित करती थी। भालारी बिबोया आज तक अपनी शर्त्त पूरी करने से पहले, कभी पीछे नहीं हटा है। और आज भी वह अपना कदम पीछे नहीं हटाएगा। वसंतपंचमी तक मैं यहीं रहूँगा और वसंतपंचमी के बाद भी यही रहूँगा। अपनी

शर्त्त पूरी करने पर ही मैं यहाँ से जीवित लौटूँगा, अन्यथा..."

रोष और तिरस्कारपूर्वक गोमती हँसी। भयानक थी उसकी हँसी—

"तुम जब विश्वासघाती थे, तब भी भयंकर थे। जब तुम नट या जासूस थे, तब भी घृणाजनक थे। यदि इन दोनों में से तुम कुछ न हो, तब भी जूए की अपनी शर्त्त के कारण तुम अधम से भी अधम साबित हुए हो।"

वरजांग ने बिबोया की ओर देखकर कहा—"अरे भाई, अब तुझे जाना हो तो जा और रहना हो तो रह। लेकिन यहाँ से अपना मुँह काला कर। तू ऐसा वनखंडी आदमी है जो अपनी बिगड़ी को नहीं सुधार सकता है, परन्तु दूसरे की बनी को बिगाड़ सकता है...यहाँ से तो तू अपना मुंह काला कर।....उबलते हुए लोगों का लहू क्योंकर अधिक उबाल रहा है ?"

गोमती की वाणी में तिरस्कार का स्वर तीव्र हुआ—"और तुम वरजांग ! तुम भी दिवा स्वप्न के लोक से तनिक नीचे उतरना। तुम जानते हो कि गोमटाभिषेक की किस किस सामग्री की हमें आवश्यकता है ?"

"पूजा के लिए बहुत से सामान की आवश्यकता है।"

"तब भी सुन लो, सबसे पहले, चंद्रगिरि और इन्द्रगिरि के बीच में जो कल्याणी सरोवर है, उसके चारों ओर घाट बनवाए जाएँगे और उन्हें पाँच-पाँच हाथ उठाया जाएगा। सरोवर के चारों ओर चीनांशुक के फूल सजाए जाएँगे और घाट पर स्थल-स्थल पर श्रुतकेवलियों, यक्षों और दिग्पालों की प्रतिमाएँ स्थापित की जाएँगी।"

"फिर तो सरोवर की शोभा और भी बढ़ जाएगी।"

"ज़रा सुनो, इस सरोवर के घाट पर जो सामग्री एकत्रित की जाएगी उसमें से कुछ इस प्रकार है—हज़ार घड़े तुंग नदी का पानी, हज़ार घड़े भद्रावती नदी का जल, हज़ार घड़े तार्षापणी का जल, हज़ार घड़े पन्नार का जल, हज़ार घड़े कावेरी का जल, हज़ार घड़े रामेश्वर का जल, और सहस्र घड़े श्वेत गौओं का दूध, सहस्र घड़े नील घनश्याम गौओं का दूध, सहस्र घड़े मक्खन, सहस्र घड़े घी, इनके अतिरिक्त एक हज़ार घड़े सोमरस के, एक हज़ार घड़े मधु के, एक हज़ार घड़े श्रीफल का जल, एक हज़ार घड़े दही, हज़ार घड़े भरकर स्वर्ण वराह, हज़ार घड़े चाँदी के जीतल, हज़ार

घड़े सोने के फूल, हजार घड़े चाँदी के फूल, इतना ही नहीं कल्याणी सरोवर से लेकर चंद्रगिरि की तलहटी तक बारह हाथ मार्ग तैयार करवाया जाएगा। यह मार्ग ईंट-पत्थर से नहीं, वरन् नारियल से बनेगा। यह सब करना होगा। और श्रीफल का यह मार्ग पाँच सौ हाथ ऊँची चन्द्रगिरि की टेकरी तक, तलहटी से शिखर तक, भगवान गोमटेश्वर के प्रांगण तक—अखण्ड और अटूट बनेगा। चन्द्रगिरि के चारों ओर दुहरा मार्ग बनाया जाएगा। प्रत्येक मार्ग दो हज़ार हाथ से भी अधिक लम्बे ढालवाला होगा। फिर इसी मार्ग से ये सभी घड़े ऊपर चढ़ाए जाएँगे। फिर भगवान गोमटेश्वर की पचास हाथ ऊँची प्रतिमा के चारों ओर मजबूत बाँस के सहारे टिके हुए श्रीफल के ढेर लगाए जाएँगे। इस प्रकार प्रतिमा के इर्द-गिर्द मंच बनाया जाएगा।"

"बाप रे..." वरजांग ने कहा—"और यह सब वसंत पंचमी से पहले...?"

"हाँ और दूसरी प्रास्ताविक सामग्री और कार्यक्रम बहुत बड़ा है, वरजांग ! बहुत है।" चिढ़, रोष, व्यंग, कटाक्ष, राग-द्वेष आदि से गोमती का सामान्यतया असुन्दर प्रतीत न होने वाला चेहरा चीनी खाने वाले चूहे-जैसा बन गया। "और भी बहुत-सा काम है वरजांग, पृथ्वीसेट्ठि का अलाया बनना है तो अलायासेट्ठि अभी बहुत बहुत शेष है—अतिथि आएंगे, आगन्तुक आएंगे, याचक आएंगे, महाराजा आएंगे, सूरि पधारेंगे, दस हजार, पचास हज़ार, लाख....बहुत बड़ी मेदिनी एकत्र होगी। एक सौ बत्तीस वर्ष के बाद यह अभिषेक होने जा रहा है। इसलिए इस अमूल्य अवसर को कौन छोड़ना चाहेगा। सारे दर्शनार्थियों और अतिथियों का स्वागत, सत्कार आतिथ्य, विश्राम और आराम का खयाल रखना पड़ेगा। और इस समग्र कार्य के लिए तैयारी के बिना कुछ हो सकता है ? वरजांग ! और वसंत पंचमी अधिक कुछ दूर नहीं है।"

"यह सब...यह सब..." वरजांग ने कहा—"यह सब करने के लिए तो हज़ारों होलेय हमें चाहिए।"

"और होलेय तो इस वक्त एक भी नहीं है !" गोमती ने निराशा में उत्तर दिया।

"तब क्या होगा।"

"यदि दूसरा कोई नहीं है तो तुम तो हो। पृथ्वीसेट्ठि के जामाता, क्या यों ही बना जा सकता है ?"

"मैं तो कार्यभार से मर ही जाऊँगा।"

"फिर भी गोमटाभिषेक, यदि होना होगा तो होगा ही, बाद में मेरा भी छुटकारा हो जाएगा।"

अब सावनी के जी में जी आया। उसने बिबोया का हाथ पकड़ा—

"चलो हम यहाँ से चले जाएं। जहाँ तुम, वहाँ मैं। जहाँ मैं, वहाँ तुम। एक ओर राग, द्वेष और रोष, और दूसरी तरफ धर्म—इन उभय के भार के नीचे जीवित ही दब कर मर जाने के लिए यहाँ रहना उचित नहीं है।"

"सावनी ! यदि तुझे मरना हो तो यहीं रुक जा, यदि जीवित रहना हो तो अन्यत्र चली जा। जैसी तेरी इच्छा हो वैसा कर। परन्तु मैं तो यहीं रहूँगा। अभी मेरी शर्त्त पूरी होने में कई दिन बाकी हैं। और संसार जानता है कि युद्ध का क्षेत्र हो चाहे शर्त्त का मैदान, भालारी बिब्रोया ने आज तक अपना क़दम किसी दिन पीछे नहीं हटाया है।"

: १७ :

विराट प्रतिमा

बेलगोला वीरवणिकों के व्यवहार और धर्म-ध्यान का केंद्र था। इस क्षेत्र को बेलगोला नाम एक सरोवर के कारण दिया गया था, जो ग्राम के मध्य में स्थित था।

बेलगोला का अर्थ है सफ़ेद सरोवर। और बेलगोला का कल्याणी सरोवर सचमुच ही धवल सरोवर के अपने प्राचीन नाम को सार्थक करता था। श्रवण शब्द मूल श्रमण का अपभ्रंश रूप है। इस तरह श्रवण बेलगोला का पूरा तात्पर्य है—साधुओं का सफेद सरोवर।

धर्मगिरि के समान दो गिरि (पर्वत)—चंद्रगिरि और इन्द्रगिरि। पर ऐसे अनेक चैत्य, 'बसादियों' और जिनालय धवल सरोवर के दो किनारों पर प्रतिष्ठित हैं, जिनका निर्माण ठेठ प्रागैतिहासिक काल में हुआ था।

इसी बेलगोला में एक धाम बना हुआ है—आचार्य भद्रबाहु का। आचार्य भद्रबाहु उज्जयिनी में अकाल का संकेत पाकर अपने समस्त शिष्यों सहित यहाँ चले आये थे। यहीं आचार्य को कैवल्य पद प्राप्त हुआ था। यहीं आचार्य भद्रबाहु के दो समर्थ शिष्य—भगवान चाणक्य और मौर्य-सम्राट चन्द्रगुप्त के धाम बने हुए हैं।

यहीं भगवान आदिनाथ का धाम बना हुआ है और यहीं पहले तीर्थंकर भगवान आदिनाथ के दूसरे पुत्र राजर्षि भरत का धाम भी है।

भगवान आदिनाथ के सबसे बड़े बेटे बाहुबली थे। बाहुबली और भरत के बीच में राज्याधिकार के हेतु कलह उत्पन्न हुआ। यह कलह महाकलह

बन गया और महायुद्ध हुआ, जिसमें बाहुबली विजयी हुआ।

परन्तु युद्ध की विजय से भी अधिक बड़ी और महान विजय उस रात बाहुबली को मिली—उनके मन में वैराग्य का उदय हुआ।

विजेता बाहुबली ने अपने छोटे भाई भरत को समस्त राज्य सौंप दिया और स्वयं रण-भूमि से वैराग्य पाकर विरक्त हो गए। यही, विरक्ति-प्राप्त बाहुबली गोभट्ट के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

समस्त संसार की शिल्प और स्थापत्य कला में जिसका कोई जोड़ नहीं मिलता ऐसी, भगवान गोमटेश्वर की विराट एक प्रतिमा एक ही पत्थर से बनी हुई इन्द्रगिरि के शिखर पर आज भी खड़ी है।

संसार भर में एक या अनेक शिलाओं से बनी किसी भी देश की किसी भी प्रतिमा की अपेक्षा यह मूर्ति सर्वाधिक ऊँची, अधिक जीवंत है और इन्द्रगिरि पर्वत के शिखर पर पूरी पचास हाथ ऊँची और लम्बी यह प्रतिमा बिना किसी आधार या अवलम्ब के, एकाकी खड़ी है। बर्फ-जैसा सफेद इसका रंग है। प्रभात, मध्याह्न और सायंकाल में, अमावास्या और पूर्णिमा की रात्रि में विभिन्न रंग, तेज और ओज धारण करने वाली यह प्रतिमा मानव जाति की श्रद्धावंत कला का विचित्र नमूना है!

लोक-श्रुति ऐसी है कि पहले इससे भी अधिक ओज और तेजवंत तथा विराटकाय एक प्रतिमा थी। वह कहाँ थीं यह कोई नहीं जानता। परन्तु मूलसंघ की परम्परा के अनुसार कहा जाता है कि वह प्रतिमा सिर्फ 'थी' ही नहीं, आज भी है। लेकिन कालान्तर में मूलसंघ में जब संशयवाद प्रविष्ट हो गया तब नाराज़ होकर यह प्रतिमा लोप हो गई!

महावीर के निर्वाण संवत् की नौवीं और दसवीं सदी के संधि काल में एक महान विजय के अभिनन्दन के निमित्त गंगाराज का दण्डनायक चामुंड-राय इस लुप्त प्रतिमा की खोज में निकला।

अपनी खोज में चामुंडराय ने अनेकानेक कष्ट उठाए। कई दुर्गम वनों को पार किया और निर्जन स्थानों में घूमा परन्तु उस अलोप प्रतिमा का दर्शन असाध्य ही रहा। अंत में थकान के अनन्त श्रम से मरणोन्मुख चामुंडराय को स्वप्न आया—"अलोप प्रतिमा का दर्शन उसके निर्माण

काल से पहले किसी को सम्भव नहीं। बड़ी भोर उठकर तू चन्द्रगिरि से एक बाण छोड़ना, वह बाण जमीन पर जिस जगह गिरे, वहीं भगवान गोमटेश्वर की दूसरी प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराना !"

चन्द्रगिरि के शिखर से इस बलवन्त योद्धा ने जो बाण चलाया वह सामने स्थित इन्द्रगिरि शिखर पर जा गिरा।

और वहीं चामुंडराय ने गोमटेश्वर की इस प्रतिमा की स्थापना की।

तब से, कम से कम अखंड चौदह सौ वर्ष व्यतीत हो गए। यह प्रतिमा आज ऐसी प्रतीत होती है मानो, अभी-अभी ही इसकी स्थापना हुई है। इतनी कांति है इसकी। इसके मुख का ओज इतना अनन्त है कि प्रतीत होता है मानो बोलने ही वाली है। प्रथम दृष्टि में ऐसी ही धारणा दर्शक के मन में उत्पन्न होती है। जगत-मात्र के शिल्प में इस प्रतिमा के समान शिल्प का दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। मिस्र विराटकाय प्रतिमाओं का आदि और मुख्य धाम है। लेकिन इतनी ऊँची प्रतिमा वहाँ भी अलभ्य है। मिस्र की सबसे ऊँची प्रतिमा भी गोमटेश्वर की प्रतिमा से दो हाथ छोटी है। जीवंत प्रतीत होने वाली प्रतिमाओं के धाम यूनान में भी ऐसी सजीव-सी प्रतिमा नहीं मिलती। सप्रमाण स्थापत्य और शिल्प के लिए प्रसिद्ध इटली देश में भी इस प्रतिमा-जितनी सुरेख और सप्रमाण प्रतिमा एक भी नहीं !

इस प्रतिमा की सन्निधि में कला का एक दूसरा भी, नन्हा-सा नमूना उपलब्ध है—यह है स्तम्भ से नीचे की ओर उतरती पाषाण-वल्लरी।

इस वल्लरी के पत्ते और पत्तों के तन्तु, फूलों के दल और पुष्पकेसर तथा पराग अत्यन्त स्पष्ट और सप्रमाण अंकित हुए हैं। और यह वल्लरी स्तम्भ से इतनी विलग है कि स्तम्भ और वल्लरी के बीच से किसी का वस्त्र निकल सकता है।

ऐसी कमनीय कलाकृति समस्त संसार में अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं।

ऐसा है यह धाम ! यह प्रतिमा मानवमात्र के मन को श्रद्धा से, विस्मय से और भक्ति से भर देती है। इस धाम के स्वामी हैं भगवान आदि-नाथ के केवलिपुत्र भगवान गोमटेश्वर !

जिसने एक बार बेलगोला को दक्षिण काशी का नाम दिलाया था;

जिसने एक बार इस नगरी को देवधाम बनवाया था; जिसने एक बार इस नगरी का देवरगोला नाम रखवाया था, ऐसे भगवान गोमटेश्वर का अभिषेक उनको शोभा देने जैसा ही था। और होना भी चाहिए था—परंपरा ही ऐसी थी। प्रणाली ही भिन्न थी।

गोमटाभिषेक निश्चित अवधि का उत्सव नहीं था, विधि नहीं था। यह वर्ष, दो वर्ष, पाँच वर्ष, या बारह वर्षों में नहीं आता था। इसकी परंपरा तो ऐसी थी कि मूलसंघ के प्रधान आचार्यो और प्रधान गुरु महाराजश्री कभी-कभी अनहद संकल्प सुनाई देने पर स्वयं केवलि भगवान की सन्निधि में आते और आदेश देते।

भगवान गोमटेश्वर के इन्द्रगिरि के शिखर पर स्थित धाम में एक विशाल आंगन है। उसके मध्य में चिउँटियों के वल्मीक के आकार-प्रकार का चित्रशिल्प बना हुआ है। इस वल्मीक में घुटने और जंघा के बीच से शुरू होने वाले प्रतिमा के पैर दबे हुए हैं। और वहाँ से, उस वल्मीक पर स्थित गगनचुम्बी, पचास हाथ ऊँची यह प्रतिमा, जो केवल केवलियों को ही प्राप्त होने वाली निर्विकार शांति और निर्लेप दृष्टि से सुशोभित है, चारों ओर के बीस-बीस योजन के अनन्त पथक को निहार रही है।

इस प्रांगण में आचार्यश्री दिगम्बर रूप में विहार करते। यहीं उनका विश्राम होता। यहीं वे बिना छत्र के, विहार करते। अपने संकल्प प्रकाशित करते। इस संकल्प के प्रकाशित होने पर अभिषेक की पूर्णाहुति हो तब तक जितना समय लगे उतने समय तक आचार्यश्री उपवास करते।

अंतिम अभिषेक जब हुआ हो तब से उस भावी अभिषेक में जितने वर्ष बीते हों उनसे दस गुने घड़े भरकर नौ रस, नौ रत्न, नौ धान, और नौ स्नेक की प्रतिमा पर अभिषेक करना चाहिए। नौ नदियों के जल से उसे स्नान करवाना चाहिए। नौ रसों से उसे सिंचित करना चाहिए, नौ रत्न उस पर से न्यौछावर करके याचकों को दान करना चाहिए। अभिषेक की पूजन-सामग्री श्रीफल के बने मार्ग पर से लानी चाहिए और इन्द्रगिरि के आंगन में प्रतिमा के चारों ओर श्रीफल का एक मंच बनाना चाहिए। आचार्य नागदेव ने जब

चामुडराय दडनायक का अन्तिम अभिषेक करवाया तब दस लाख से भी अधिक श्रीफल काम में लाए गए थे।

ऐसे विराटकाय भगवान की श्रद्धापूर्ण ऐसी विराटकाय पूजा की तैयारी दंडनायक चामुडराय की समस्त सेना और बेलगोला के समस्त वणिक-समाज और उनके समस्त होलेय समाज ने दिन-रात परिश्रम किया था तभी बड़ी कठिनाई से कई महीनो में पूरी हो सकी थी।

...तब अब ?

आज तो कोई दडनायक उनके साथ न था, कोई सेना उनकी सहायक न थी। वीरवणिकों का अधिकतर भाग नाना छद्मवेशों में काफिले लेकर घूम रहा था। बेलगोला मे इस समय तो केवल वृद्ध नर-नारी, बालक, मुनीम, महाजन और गुमास्ते ही बच रहे थे। और थोड़े युवक भी हाजिर थे।

उस समय न तो था कोई दडनायक, न थी कोई सेना और न थे कोई होलेय। ये सब परचेरी के विद्रोह की काल रात्रि मे, आग लगाकर, छोटे-बड़े महलों मे छोटी-बड़ी लूट मार कर के, कुछ-कुछ सामान बिखेर कर चले गए थे।

वह मुआ टोटी उन्हे ले गया था !

इस शापित टोटी को उस शापित महामण्डलेश्वर राय हरिहर का आश्वासन था। जिन्हे वीरवणिक या दूसरे कोई परचेरी के अधिकार न देवे, वे उनकी सेना मे भरती हो जाएँ और होलेय इस तरह बदलकर सिपाही बन जाएँ।

और यदि [illegible] मिलती हो तो, दोरंगुलु मे एकत्र होना हो तो, गाँव के समीप और गाँव के खर्च पर घूमना-फिरना और सैर करना मिलता हो तो, कधे पर हथियार लटकाकर इधर-उधर भटकने का अवसर मिलता हो तो होलेय बनकर रहना कौन पसद करेगा ? पालेर कौन रहेगा ? भला, इस तरह सेना जमा होती होगी ? इस प्रकार उस देश की सेना मे सैनिको की भर्ती होगी ?

और तथ्य यह है कि होलेय और पालेर आर्य नही थे। वे तो थे आर्येतर—गौड, बिदर, किरात, शंबूर और आदिवासी। ये लोग, आदिवासी

गाँवों से आते, कावेरी के जंगलों से आते, समुद्र-तट के मल्लाहों के गाँवों में से आते। कलभ्रों ने नष्ट हुए दक्षिणापथ में उनके जाने के बाद भूखे मरते आदिवासियों को ठिकाने लगा दिया था। इससे उनकी भूख मिटती थी। काम मिलता था और भद्र समाज को मजदूरी मिलती थी। परचेरी के अधिकारों ने इस परम्परागत सुन्दर व्यवस्था के मूल पर आघात किया था। ये अधिकार कहाँ से आए? रायरेखा में से? रायरेखा कहाँ से आई? महामंडलेश्वर राय हरिहर के यहाँ से।

इस प्रकार इन सभी अनर्थों का मूल राय हरिहर ही था, उसकी राय-रेखा थी। उसी के कारण से आज भगवान के अभिषेक का महोत्सव रुक गया था।

संकल्प के प्रकाशन पर आचार्य पंडित आर्यभद्र महाराज प्रांगण में विराजमान थे। सुबह में सर्दी पड़ती, दोपहरी में सूर्य तपता, सायं काल में शीत चढ़ आती, रात्रि में हिम गिरता, इतने पर भी आचार्य पंडित आर्यभद्र महाराज वहीं बैठे रहते—वहीं विराजमान होते।

और उनके बगल में वायीजन श्रेष्ठी बैठे रहते। आचार्यश्री ने अपना संकल्प पृथ्वीसेट्टि से कहा। पृथ्वीसेट्टि ने यह संकल्प अपनी मुद्रा से कहा। फिर सर्वथा निश्चिन्त और निर्विकार सेठ आचार्यश्री के चरणों में बैठ गए थे और आचार्यश्री की उग्र तपस्या की छाया झेल रहे थे।

और वहाँ दोनों हाथ जोड़े बड़े व्यवहारी व्यग्रता के जीवित अवतार बैठे थे। उनकी बुद्धि अविचल थी। व्यवहार को भलीभाँति निभाने का उत्तर-दायित्व उनका था। और आशा नहीं थी कि वे इस सांसारिक उत्तरदायित्व को अच्छी तरह निभा सकें।

और वहीं खड़ी थी गोमती—निष्फल रोष के अवतार के समान! यदि वहाँ विराट काया लेकर भी परमशांति प्रदर्शित करते हुए भगवान गोमटेश्वर खड़े थे तो उनके विपरीत सर्व प्रकार के राग-द्वेष और रोष से पूर्ण गोमती भी वहीं खड़ी थी, उसका चेहरा ज्वालामुखी के समान धधक रहा था!

जिस जगह वह खड़ी थी, उस जगह से कहीं आग और कहीं धुआँ दृष्टि-गोचर हो रहा था। होलेयों ने किसी चीज़ को नहीं लूटा था। अब सिर्फ़

लूट ही बाकी थी। टूटी हुई पेढ़ियो और टूटे हुए महलो का माल-असबाब सड़को पर पड़ा था। यदि किरात या गौड या बिदरो की सेना भी लूट का ही इरादा लेकर आती तो वह भी सर्वनाश की ऐसी भयकर भूख नहीं दिखलाती। इतनी बडी बरबादी नही करती। राह मे कही वस्त्र पडे थे। कही महँगे पात्र और बर्तन थे। कही व्यापार की सामग्री रखड़ रही थी। मानो कि परचेरी का प्रखर पवन भूकम्प के वेग के विनाश को लेकर बेल-गोला मे बहकर चला गया था। और अब आग को बुझाने के लिए एक भी होलेय या पालेर वहाँ नही था। थे सिर्फ सेठ-साहूकार और स्वामी, जिन्होंने कभी परिश्रम नही किया था।

अपने उच्चासन से गोमती ने कुछ लोगो को आग बुझाने का प्रयत्न करते हुए देखा।

और ये समस्त दुर्घटनाएँ तब हुई, जब कि गोमती के पास पृथ्वीश्रेष्ठि की मुद्रा थी। और अब भी जो कुछ होगा, वह उसके पदासीन रहते हुए होगा—इस विचार पर जो विषाद उत्पन्न हुआ, वह गोमती के अंतर को कीटक की तरह काटने लगा!

होंठ काटकर उसने बिबोदा को देखा, राय हरिहर का वह नट जासूस! राय हरिहर का यह चर!...रायरेखा का यह दडनायक! सारे बखेड़े की जड़ यही है, दूसरा कोई नही है!

परचेरी की बला को लानेवाला यही है। यह न लाया तो दूसरा कौन ला सकता है? टोटी की हिम्मत ही क्या? टोटी तो होलेय हैं। उसकी दृष्टि ही कितनी? उसमे बुद्धि ही कितनी? यद्यपि टोटी की ही आवाज पर होलेय उद्दंड बने है फिर भी उसके पीछे तो बुद्धि और वाणी राय हरिहर के इस जासूस की ही है!

और....और...यह जो कहता था, सच ही होगा? यदि वह सच निकला तो? सोचकर, गोमती के माथे पर मानो अपमान का एक तेज डंक लगा! यदि यह सच निकला तो.. तो....तो ..गोमती तो दो जुआरियो के बीच का एक दाँव बनी है!...वही गोमती, जिसका नाम नाना छप्पन देशो मे पृथ्वीश्रेष्ठि की मुद्रा की अधिकारिणी के रूप मे गर्जन करता रहा है!

...नाना छप्पन देशों में से कहीं से भी उसका बोल खाली लौटकर नहीं आता...कहीं से भी उसकी हुंडी वापस वहीं आती...वह है वायीजन की दुहिता...वीर वणिकों के पृथ्वीसेट्ठि की बेटी...उसके नाम से बड़े-बड़े व्यापार चलते हैं और उसके एक संकेत पर नाना छप्पन देशों के व्यवहार रुक जाते हैं, वही क्या जुआरियों के बीच एक दाँवमात्र बनकर रह जाएगी ? ...जुआरियों के बीच का दाँव यानी—पाँच निष्क, दस निष्क, पाँच वराह, दस वराह, दो घोड़े...वीर वणिक भी तो जुआ खेलते हैं ? और क्या जुआरियों के कई बखेड़े स्वयं उसने नहीं निपटाए हैं ?...क्या उसका मूल्य पाँच-दस वराह अथवा दो घोड़े जितना ही है ? दूर देश के दो जुआरी उसको लेकर शर्तिया दाँव लगाएँ, क्या उसकी इतनी ही इज़्ज़त है ? क्या वह कोई वेला है ? होलेय है ? किसी अग्रहार की देवदासी है ? उसके लिए दाँव ?

गोमती के लिए दाँव लगता है, यह विचारमात्र ही सिर चकरा देने के लिए काफी और अपमानजनक है। नहीं, यह सच नहीं है। सच नहीं ही हो सकता।...यह बात झूठ है।...विबोया के जासूसी काम पर ढँके हुए आवरण की तरह।

उसकी प्रतिष्ठा विश्व में प्रसिद्ध थी। उसका स्वभाव, उसका कुल, परिवार भी संसार में विख्यात था। और होलेय जैसे एक मामूली बेसवागा भालारी की यह हिम्मत कि उसके सामने स्वप्न में भी आँख उठाए ? उसके नाम से जूए का दाँव भी लगाए ? अरे, उसकी साख ऐसी है कि यदि कोई सिर्फ़ गोमती नाम लेकर पाँसा फेंके तो पाँसा ही भय से फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाए !...सचमुच शर्त की बात ही झूठ है। जूए की बात झूठ है ! सावनी...सावनी...हाँ सावनी...उस लड़की ने ही यह बात शुरू की है... उस लड़की ने ही बिबोया के शरीर पर अपना दिल न्यौछावर किया है। और गोमती...और....बिबोया की....हा हंत...अपमानपूर्ण उस रात्रि की स्मृति, शर्म से भरी...उस रात की याद !...उस लड़की ने ही इस जुए का ...पाखंड...फैलाया है...और नट का काम भूलकर गोमती के पीछे...।

मस्तिष्क के मौन एकान्त में जिसकी आयोजना सम्भव है, ऐसी वह

याद, और जहाँ विचार के लिए भी जगह है...स्वय उसने क्या कहा था ? ...कैसा आचरण किया था ?...भगवान शामननाथ ने उसे बचा लिया, नही तो... नही तो . वीर वणिको की बेटी का मानभग हो जाए और एक बेसवागा...बेसवागा ..हा हत...वह याद...वह याद.. अपमान के शरम की वह याद...

सावनी... हाँ... सावनी...वह न होती तो गोमती का अपमान न होता· उसके होने से ही गोमती की बेइज्जती हुई...वह कम्बख्त अभागिन लड़की ...बिबोया के इश्क मे बेवकूफ बनी हुई वह मूर्ख लडकी...वही . .!

सच्चा रहस्य क्या है, सावनी जानती होगी ' यदि उसे प्रोत्साहन दिया जाए तो क्या करेगी ? यदि उसे धमकी दी जाए तो क्या वह सच-सच बता देगी ? उसकी चमडी खीच ली जाए तो...

आँगन मे लगे हुए सफेद झडे को गोमती ने देखा । अभिषेक का यह झडा अभिषेक पूरा होने पर ही उतरेगा ।...झंडा जब तक लहराएगा तब तक, कोई हिसापूर्ण आचरण नही किया जा सकता । हिंसक व्यवहार नही हो सकता । हिसा की गंध से पूर्ण चर्चा भी नही हो सकती...

गोमती ने सोचा—सावनी को धमकी न दूँ, प्रोत्साहन न दूँ, उसकी चमड़ी भी न उतरवाऊँ....लेकिन बुलाकर जरा पूछूँ ?

सावनी का पिता सागर मे डूब गया था और उसकी नौजवान माँ दो वर्ष की उसे छोड़कर भाग गई थी । तब से गोमती ने इस सावनी को अपनी सखी और अपनी दासी के रूप मे रखा । लालन-पालन कर....बडा किया...इतने बरसों के व्यवहार...वर्षो के माया-मोह....इतने सालो के अन्न-पान की भी क्या इसे शरम नही है ?

किकर्त्तव्यविमूढ-सा वरजांग दूर खडा था । गोमती की आँख मे वह खटकने लगा । वैसे तो और भी कई लोग किकर्त्तव्यविमूढ थे । स्वय बड़े व्यवहारी, जो अपने बड़े दिमाग मे कई किस्म के हिसाब-किताब, कई व्यापार-व्यवहार और ईरान से चीन तक का सारा लेन-देन रखते थे, जबानी याद रख सकते थे, वे ही आज किकर्त्तव्यविमूढ थे ! इतने दिनो के पश्चात् सवा सौ वर्ष के उपरात भगवान के अभिषेक का अवसर प्रसन्नतापूर्वक पूर्ण

करने में वीरवणिकों की असमर्थता इतनी स्पष्ट थी कि आदमी यदि किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाए तो आश्चर्य नहीं ! इसलिए वरजांग अगर किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा खड़ा हो तो बड़ी बात नहीं थी। फिर भी गोमती को उसका स्वरूप अटपटा लगा। उसने जोर से पुकारा—

"वरजांग,"

आवाज़ सुनकर वरजांग निकट आया। पहले तो वह गोमती की आवाज़ सुनकर इस प्रकार दौड़कर आता, जिस प्रकार पालतू कुत्ता दौड़ता है। लेकिन आज उसकी चाल या उसके चेहरे पर उमंग न थी, लालसा भी न थी। वह पैर घसीटता हुआ आया और आने पर कुछ सुनने की राह न देखकर स्वयं ही बोला—"हो चुका।"

"क्या हो चुका ?"

"रास्ता।"

"किसका रास्ता ?"

"मानो तुम कुछ जानती ही नहीं ? तुम्हें पृथ्वीसेट्ठि की मुद्रा बहुत प्यारी लगती थी, सो अपने बाप की पगड़ी में से उसे निकाल कर अपने सिर के बालों पर सजा लिया। लेकिन अब मालूम पड़ जाएगा।"

"तू क्या कहता है ? कोई, नशा तो नहीं करता ?"

"अरे, लगता है नशा करके दो-चार दिन बेहोश पड़ा रहूँ, तो भी अच्छा है। लेकिन अब तुझे यह मालूम हो जाएगा कि आदमी के काम आदमी ही कर सकते हैं। और औरतों के काम औरतें ही करती हैं। जिस दिन वायीजन बापू नगर के जिनालय में 'संथारा' करने के लिए गए, उसी दिन अगर उनकी मुद्रा मुझे मिल जाती, तो न तो तेरा अपमान ही होता, और न मेरी नाक ही कटती।"

"तेरी नाक कट गई ? कब ? किससे ?"

"औरत की अक्ल पर पानी ! जानती नहीं कि अभिषेक का अवसर है ! इसका संकल्प हो चुका है। इसकी अवधि जाहिर हो चुकी है। और पूर्ण संभावना है कि यह काम पूरा नहीं होगा। ऊपर से नीचे पछाड़ खाने पर भी पूरा नहीं होगा। ऐसी हालत में तेरे लिए तो छुटकारा है कि अंततया

औरत की जात कहला कर छूट जाएगी, लेकिन मेरी तो नाक जरूर कट जाएगी ?"

"तेरी नाक किसलिए कट जाएगी ?"

"सभी कहेंगे कि अलायाश्रेष्ठि (जमाई राज) ने बेलगोला की नाक कटवा दी और उसे नरक में धकेल दिया। जानती है, यदि अभिषेक निश्चित अवधि में पूरा न हुआ तो क्या होगा ? आचार्यजी यहीं और वहीं प्रायोपदेश करेंगे...और उनका कर्म बँध जाएगा...इहलोक और परलोक में तेरे नाम की धज्जियाँ उड़ जाएँगी !"

"अगर तेरे पास मुद्रा होती तो तू क्या करता ?"

"मैं ? मैं परचेरी के अधिकार देकर, सभी होलेयों को रख लेता !"

"वीरवणिकों की परम्परा को तोड़कर तू होलेयों को परचेरी के अधिकार दे देता ? यही न ? तू ? अच्छा हुआ कि मुद्रा तेरे पास न रही। वरजांग, तू मेरे बाप का जमाई बनने के लिए तो निकला है लेकिन, लगता है अभी तूने इस गोमती को नहीं देखा है ! चाहे मैं भगवान गोमटेश्वर की प्रतिमा से नीचे कूद कर अपनी देह और हड्डियों का चूरा बना दूँ, फिर भी मैं वीरवणिकों की परम्परा से द्रोह नहीं कर सकती। अवसर चाहे जैसा है, उत्सव चाहे जैसा हो, वह पूरा हो चाहे अधूरा रहे, लेकिन मेरे सुनते कोई परचेरी की बात नहीं कर सकता। कोई परचेरी की सिफारिश भी नहीं कर सकता।"

"तेरे हठ के कारण ही बेलगोला को शाप मिलेगा। इसकी बरबादी होगी....और त्रियाहठ...और हठ और बुद्धि के बीच बारह गांवों की दूरी है।...फिर ऊपर से तू औरत की जात...इसलिए....और उस पर भी तू गोमती...अतएव सवा सत्यानाश..."

"जो कुछ तुझे कहना था, कह दिया ? अब तू जाकर सावनी को ले आ !"

"सावनी को ? सावनी नहीं है।" वरजांग ने कहा।

"सावनी नहीं, इसका क्या मतलब है ?"

"नहीं है—इसका भला, दूसरा क्या मतलब हो सकता है। नहीं यानी सावनी यहाँ है ही नहीं।"

"कहाँ मर गई है, वह ?"

"उसकी अक्ल ठिकाने पर है, इसलिए वह यहाँ से चली गई है !"

"चली गई है ? वीरवणिक की बेटी होकर भी अभिषेक के संकल्प के उपरांत भी चली गई ?"

"हाँ, क्योंकि उसे अभिषेक के संकल्प छूटने के पाप की इतनी चिंता नहीं है जितनी गोमती के कराल क्रोध की।"

"यानी ?"

"यदि सावनी की जगह मैं होऊँ, सो मैं भी चला जाऊँ ! क्या तू ने दर्पण में अपनी आँखें देखी हैं ? मानो शिकार के जुनून से बेकल बाघिन खड़ी है !"

"अच्छा ?"

"हाँ।"

"सावनी के बारे में तुझे कैसे मालूम हुआ ? जाँच के बिना ही उड़ाऊ जवाब दे रहा है ?"

"मैंने पूछताछ की थी। वह नहीं है।"

"ठीक है।"

वरजांग चला गया। गोमती के इस वक्त के बिगड़े हुए मिजाज़ को देखते हुए भी, अकारण वह खड़ा रहे, इतना बेवकूफ वह नहीं है।

गोमती ने आस-पास देखा—

कल्याणी सरोवर की पाल पर, घाट बनाते हुए एक आदमी को उसने देखा।

समस्त इन्द्रगिरि पर्वत को खोद कर फेंक देने के लिए सिर्फ़ एक आदमी को कुदाली देकर खड़ा कर दिया हो, उस तरह गोमटाभिषेक के पूर्व की तैयारी में तल्लीन एक मात्र व्यक्ति को देखकर उसके चेहरे पर तिरस्कार-मिश्रित उपहास छाया और आश्चर्य-मिश्रित कौतूहल आया ! आज बेलगोला मतिमूढ़ बना था। आज वह एक मास पश्चात्, अवश्य ही होने वाले—एक गुरु महाराज के प्रायोपदेश के विषय में भयभीत चित्त लेकर बैठा था ! संकल्प की सिद्धि के अभाव में होने वाले इस देहोत्सर्ग का क्या परिणाम प्रकट होगा, इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था।

अब तक कही-कही आग जल रही थी और उसे बुझाने के लिए कुछ वृद्ध और बालको के बिना कोई वहां नहीं था। कहीं-कहीं साधन-सामग्री, चीजें रास्ते पर इधर-उधर बिखरी थीं। उन्हे व्यवस्थित करने के लिए मुट्ठी भर व्यक्ति ही थे !

इस अकांड प्रकरण का अभी विसर्जन नहीं हुआ था, और कई दिनों तक होने वाला नही था। और गोमटाभिषेक के लिए इन्द्रगिरि पहाड़ जितने ऊँचे सामग्री के ढेर की आवश्यकता थी। ऐसी सामग्री की तैयारियां गोमटाभिषेक के लिए कौन करनेवाला था ?

बेलगोला मे इतने व्यक्ति थे ही नहीं। आस-पास के वैष्णव और शैव की आबादी में से कोई व्यक्ति मिल नही सकता था। नाना अन्य देशों में से बुलाया जाए, हजारो के हिसाब से वे आए साधन-सामग्री लाए, साधन-सामग्री के ढेर को हिमालय जितना ऊँचा उठा सकते है . परन्तु उसके लिए समय न था। आचार्यश्री का संकल्प तो था परन्तु इस संकल्प की अवधि न थी; यह अवधि इतनी स्वल्प थी कि मनुष्य की बुद्धि उसका साथ नहीं दे सकती थी !

वहाँ एक अकेला व्यक्ति...इतना प्रयत्न कर रहा था.. किसलिए ?...

गोमती धीरे-धीरे प्रागण मे से ढाल पर आई और धीरे-धीरे इन्द्रगिरि का ढाल उतरने लगी।

अपार कुतूहल गोमती को कल्याणी सरोवर की ओर आकर्षित कर रहा था। वह नजदीक गई—अधिक नजदीक गई—और उसकी आंखे फटी रह गई : यह व्यक्ति था—इन सब अनर्थों का मूल—विद्योया !

"तुम ..यह, हमारा मजाक क्यों कर रहे हो ?" गोमती ने पूछा, "या मेरी धीरज की थाह लेना चाहते हो ? तुम्हे बेलगोला छोडकर चले जाने को कहा था या नही ?"

"और मैने कहा था कि मैं जाने वाला नही, यह क्या तुमने नहीं सुना ?"

गोमती तिरस्कार पूर्वक हँसी—"तुम्हे अक्कल नही, परन्तु शक्ति अधिक है। तुम मानते हो कि तुम्हारी इस ताकत के कारण तुम्हे कोई निकाल नही सकता। ठीक है। हमे लाचार कर, हमारी लाचारी का लाभ उठाने की बात राय हरिहर न सोचे तो और कौन सोच सकता है ? परन्तु तुम्हे

एक बात कहती हूँ : शायद अधिक दिन यहाँ रहने पर तुम्हें यह बात सूचित कर देगी। आचार्यश्री के संकल्प की सिद्धि के लिए हमारे यहाँ आदमियों की बहुत कमी है इसलिए इसी समय आदमी भेजो, जिन्हें भेजो वे वीर हों, वणिकों को ही भेजना—होलेयों को नहीं—इस तरह की विशेष सूचना लेकर हमारे संदेशवाहकों ने प्रस्थान किया है।"

"वे भले आएं। इस बड़े काम के लिए तो जितने अधिक व्यक्ति हों उतने ही कम हैं।"

"तुम समझे नहीं। संकल्प-सिद्धि के लिए पहला कार्य क्या—यह तुम शायद समझे नहीं।"

"मैंने कहा न कि मैं अपनी संकल्प-सिद्धि के बिना जानेवाला नहीं।"

"देखेंगे।"

"देखना। साथ ही एक और बात याद रखना। मैंने कहा है कि मुझ पर तुमने जो दोपारोपण किया है वह निराधार है। तुम्हारे होलेयों के और तुम्हारे बीच के किसी मतभेद की भूमिका में मैंने सीधे या टेढ़े-मेढ़े ढंग से कभी कोई भाग नहीं लिया है।"

"और मैंने जो तुम्हें कहा, शायद वह तुमने नहीं सुना है : मैं तुम्हारी बात का एक अक्षर भी नहीं मानती। मेरा विश्वास है कि तुम एकदम झूठे आदमी हो और यदि मुझे अवसर प्राप्त होगा तो तुम्हें उस झूठ की सजा देने में मुझे जितना आनन्द मिलेगा उतना शायद किसी दूसरे को नहीं मिलेगा।"

"और यकीन रखना कि यदि तुम्हें वह अवसर मिला तो मैं किसी तरह की बाधा नहीं डालूंगा। मैं यहाँ से जाऊँगा तो या तुम्हें साथ ले जाऊंगा या यहाँ तुम्हारा होलेय बनकर मरूँगा!"

"इसीलिए शायद तुमने यह काम शुरू किया है!"

"हाँ।"

"तो करो। बेकार में मैं तुमसे बीच में बात कर तुम्हारा समय व्यतीत कर रही हूँ। तुम्हारी पाशविक सी शक्ति एक आध बार भी यदि मनुष्यता के कर्म मे काम आएगी तो तुम्हारा कल्याण होगा!"

: १८ : ......हरि करे सो होय !

शासन भगवान की जिस शीतल छाया के नीचे वेलगोला के वीरों और वणिकों ने नाना छप्पन देशों में व्यापार और व्यवहार, काफिलों और जहाजरानी का साम्राज्य स्थापित किया था, उसी शीतल छाया के स्थापक आचार्य भगवान गोमटेश्वर का एक संकल्प भी वेलगोला आज पूरा नहीं कर सकेगा इस अभाव का विषाद समस्त वेलगोला पर काले पर्दे की तरह छाया हुआ था, मानो वणिक मात्र के मानस पर भारी शिला ही पड़ी थी।

इस समय बड़ी-बड़ी हवेलियों में रहने वाले वणिकों, बड़े-बड़े महलों के वासी वीरों, नाना भाँति के आलयों में रहने वाले व्यापारियों आदि समुदाय की नौजवानी मध्य सागर में बहने वाले जहाजों पर सागर और पवन के संघर्ष में जूझ रही थी। उनकी जवानी सघन वनों में मलाया, वाली, खत्ता, खोना, श्रीलन (सीलौन) और ब्रह्म देश की राहें पार कर रही थीं। वीरवणिक अर्थात् साहस की महागंगा। यह महागंगा ईरान से वाली द्वीप तक, चीन के वनों से लेकर ब्रह्म देश की गुफाओं तक, स्याम के घनघोर वनों से लेकर मलाया की वनराइयों में विहरती थी। लेकिन नदी तो ज्यों-ज्यों आगे और आगे बढ़ती जाती है, बहती जाती है, और नित्य नए किनारों को पार करती जाती है, त्यों-त्यों उसकी जवानी खिलती जाती है, यद्यपि उसका मूल स्रोत निर्जन पहाड़ों की गोद में एक नन्हा-सा झरना मात्र होता है !

इसी भाँति वीर वणिकों के मूल साहस की महागंगा वेलगोला में इस

समय केवल वृद्ध, स्त्री-पुरुष, बालक और विधवाएँ ही थीं और यद्यपि इस अभिषेक के पर्वत को अपने सिर पर उठा लेने की उनकी श्रद्धा अनन्त थी, तथापि उनकी शक्ति तो सीमित ही थी—नाम मात्र की शेष थी।

घर-घर अभिषेक की तैयारियाँ हो रही थीं। भाँति-भाँति के कार्यों की सूचियाँ तैयार की जा रही थीं : नौ नदियों का जल दूर से नजदीक लाना चाहिए; हजार घड़े भर सोने-चाँदी के फूल गढ़े जाएँ; हजार घड़े शहद एकत्र करना होगा; अभिषेक के दिन हजार घड़े ताजा दूध और दही उपयोग में लाया जाएगा, इस हेतु कितनी ही सफेद और नीली गौओं का प्रबन्ध करना होगा; श्रीफल लाने होंगे; कल्याणी सरोवर से प्रतिमा के मस्तक तक अखूट और अटूट और अखंड मार्ग बन सके इतने श्रीफल....

संकल्प का शुभागमन होने पर उसका स्वागत करना ही पड़ेगा; परन्तु वह असमय आया—जब कि किसी प्रकार की अनुकूलता न थी। यदि शासन देव आचार्यश्री की कसौटी करें तो वे किस प्रकार पार उतरेंगे? और पार न उतरें तो आचार्यश्री...हंत पापं...यह विचार ही असम्भव है....दुःसह है। आचार्यश्री ने पृथ्वीसेट्ठि की कसौटी की हो तो उसमें से वे किस प्रकार पार उतरेंगे? पृथ्वीसेट्ठि अपनी पुत्री की कसौटी करते हों... और पृथ्वीसेट्ठि की मुद्रा वीरवणिकों की कसौटी करती हो...तो...तो...

कसौटी मे पार उतरना असम्भव था। तो धर्म विडंबना का पाप कौन सहेगा? और दूसरे धर्म, समय और सम्प्रदाय जब हँसी उड़ाएँगे, तब उस हँसी को कैसे सहन किया जा सकेगा? हमारी निष्फलता पर हमारे द्वेषी भागवत, शैव और वीर शैव कितने प्रसन्न होंगे!...

अब यदि होलेय होते...पालेर होते...तो मज़दूरी के काम उन्हें सौंपकर कुछ सफलता प्राप्त हो सकती है। परंतु कमबख्त रायरेखा....कमबख्त महामंडलेश्वर....कम्बख्त विजयधर्म राज्य...अरे, भाई....क्षमा...क्षमा... क्षमा करे....अभिषेक के संकल्पकाल में सर्व रागद्वेष को छोड़ दो....मन से किसी का भला न चाहना...मनसा-वाचा-कर्मणा हिंसा का ख़याल, हिंसा की वाचा, हिंसा की बुद्धि भी न आनी चाहिए...इसलिए होलेय की बात छोड़ दो! उन कम्बख्तों को जाने दो...उस रायरेखा और उसके मंडलेश्वर

को...उन सब को...उन सब को...उस विजयधर्म राज्य...और उनके महाकरणाधिप...ये सब नरक में जानेवाले हैं। किसी भी धर्म का उपहास करने से किसी को कुछ न मिला है।

इसलिए हमें क्या करना है—क्या हो सकता है—इतनी ही बात करो !

पाँच-सात वृद्ध और वृद्धाएँ बड़े व्यवहारी के साथ बात करते थे, उन्हें पूछ रहे थे : हमें क्या करना है ?

बड़े व्यवहारी ने कहा : जहाँ जहाँ हमारे जहाजों के पिछले समूह हैं, जहाँ जहाँ हमारे व्यापारिक समूह के पिछले भाग है—वहां जितने संदेश भेजे जा सकते हैं मैंने भेज दिए हैं। परंतु चाहिए जितने संदेशवाहक मिलने मुश्किल हैं। इतने पर भी जितने मिले उतने गए हैं। अब इससे अधिक कुछ हो नहीं सकता है—ऐसा मुझे लगता है।"

"मैं तो गोमती और बड़े व्यवहारी को भी कह-कह कर थक गया कि हम सब आचार्यश्री के पास जाकर उन्हें जनाएँ कि आपका संकल्प सच है—वह हमारे सिर माथे पर—परंतु इस समय तो हम केवल धन देकर छूट सकते हैं; दूसरा कुछ नहीं हो सकता; तो आप इस संकल्प को लेकर अहिहोल पधारिए। हम लोग संघ के रूप में जाकर प्रार्थना करेंगे तो आचार्यश्री संघ की आज्ञा को टालेंगे नहीं।" वरजांग ने बेचैन होकर कहा।

"इस प्रकार नहीं हो सकता। गोमटाभिषेक तो गोमटेश्वर की प्रतिमा का ही हो सकता है; और कहीं नहीं हो सकता !"

"परंतु एक इसी प्रतिमा का क्या महत्त्व है ? दूसरी प्रतिमा पर भी तो अभिषेक हो सकता है ?" वरजांग ने अपना तर्क जारी रखा।

"यह भी नहीं हो सकता। यह नहीं कि इसमें केवल बेलगोला की प्रतिष्ठा का प्रश्न है; इसमें तो नाना छप्पन देशों के व्यापारिक स्थलों का भी सवाल है। बेलगोला को जीवित रहना होगा तो जीवित रहेगा और यदि मरना होगा तो मरेगा। यदि उसकी दुर्दशा होनी होगी तो अवश्य दुर्दशा ही होगी। इनमें से कुछ भी मेरे हाथ से नही हो सकता।"

"तुम भी इतने हठीले हो कि गोमती को नीचा दिखाकर ही चैन लोगे !"

वरजांग ने चिढकर कहा—"एक पागल हो तो उससे निपट सकते हैं, परन्तु दो दो पागल हों तो उनसे किस प्रकार निपटा जा सकता है ? अगर इतनी चिंता है तो फिर तुम ही खुद संदेशा लेकर क्यों न चले गए ?"

"तुम तो युवक हो। तुम स्वयं संदेश लेकर क्यों न गए ?" बड़े व्यवहारी ने पूछा।

"मैं बेलगोला छोड़ दूँ ? इसका सम्मान सुरक्षित रखने के लिए एक समझदार व्यक्ति की आवश्यकता होती है—ऐसा समय आ गया है—इस पर मैं बेलगोला को छोड़ूँ, इसमें कोई तथ्य नहीं। जल्दी या देर से तुम्हें आचार्यश्री को विनती करने जाना ही होगा, तभी मेरी ही जरूरत पड़ेगी, न ?"

एक वृद्ध ने कहा—"हमने तो आज तक बातें ही बातें की हैं, जब कि एक व्यक्ति तो रोज कुछ न कुछ करता ही रहता है।"

"बिबोया की बात कर रहे हो ?" व्यवहारीजी ने कहा : "अरे, इन सभी अनर्थों का मूल तो वही है !"

"वह चाहे जो हो; यह तो सच है कि वह भी काम तो करता है, न ? हम भी बातें छोड़कर जितना हो सके उतना काम करें और अंत में शेष काम के लिए आचार्यश्री हाथ जोड़नेवाले दूसरा क्या हो सकता है ?"

"मैं भी यही कहता था न ?" वरजांग ने ज़ोर से कहा : "परन्तु मेरी मानता कौन है ? मैं तो कहता हूँ कि रेती में जहाज चलाने-जितनी मेहनत करके, बाद में हाथ जोड़ने से तो अच्छा है अभी पहले से ही जोड़ लें।"

"गोमती अम्मा कहाँ हैं ?" व्यवहारी ने इस बात को टालने के लिए यह प्रश्न पूछा।

उन्होंने सोचा—"वरजांग की बात कुछ ग़लत तो न थी। लेकिन स्वयं व्यवहारी उठकर उसी भाँति के काम करे, यह कैसे हो सकता है ?"

"मेरी बात सुनें तो, कहूँगा कि इस सारे बखेड़े का मूल यह लड़की ही है। पृथ्वीसेट्ठि की मुद्रा अगर उसके बजाय मेरे हाथ में होती तो ऐसा न होता। अरे, वे परचेरी माँगते हैं तो परचेरी दे दो ! 'हाँ' भर कह देने

में क्या जाता है ? फिर मौका देखकर उस टोटी को ठिकाने लगाते और होलेयों की अक्ल दुरुस्त करते हमें कौन रोकनेवाला था ?..."

"मैं रोकती ! वरजांग..." गोमती भीतर आई—"मैं तुझे यह पूछती हूँ कि साक्षात् शासन भगवान के सामने जिसने वचनभंग नहीं किया, किसी राजा-महाराजा को दिया हुआ वचन भंग नहीं किया....वह क्या तीन जीतल के होलेयों से वचनभंग करेंगे। अरे गँवार ! वीर वणिक वचनभंग करें तो समान पद, मर्यादा और वर्ग के व्यक्तियों से करें। उसमें उनकी शोभा है। अगर वे होलेयों को वचन देकर उसका उल्लंघन करें तो ? तो...क्या वीर वणिक होलेयों के समान हैं ?"

"तेरे हाथ जोड़ता हूँ मैं !" वरजांग बोला—"लेकिन अब तू करना क्या चाहती है ? तेरे पास पृथ्वीसेट्ठि की मुद्रा है। बता, तू ही कह दे, क्या करना है ?"

"मुझे कोई मार्ग नहीं दीख रहा है," गोमती ने कहा—"लेकिन एक बात कहती हूँ : मैं बेलगोला के अपमान का बदला लूँगी। अपमान हुआ है तो उसका, न हुआ है तो सम्भावित—होनेवाले अपमान का प्रतिशोध लूँगी। संकल्प की अवधि पूर्ण होने तक मैं प्रतीक्षा करूँगी।"

तिरस्कार का अत्यंत अपमानपूर्ण हास्य वरजांग के मुंह से बाहर निकला। वर्षों से आज तक जो व्यक्ति गोमती के सामने असहाय, दीनहीन की तरह खड़ा रहा था, आज वही गोमती की दशा पर हंस रहा था ! उसे यों हँसने की सूझी थी !

"अवधि वह पूरी हो गयी यही न मान ले मेरी माँ ! अच्छे और समझदार आदमी की राय न लेना, सत्य-परंपरा यानी हमारे विवाह-संबंध की परंपरा को स्वीकार न करना और जिस तरह कुम्हार गधे की पूँछ को पकड़े रहता है, उस प्रकार परम्परा की पूँछ को थामे रहना...अरे पगली,... परंपरा का यह स्वप्न...मर्यादा की ये बातें...सभी गधे की पूंछ की तरह हैं ! जो इस पूँछ को पकड़ता है, वह लात खाता है; और जो परंपरा के कान पकड़ता है, उसके पीछे-पीछे परंपरा मौन रहकर चली आती है।" वरजांग फिर से हँसा और उस हास्य में भरे हुए तिरस्कार के कारण दिशाएँ फट

क्यों न गईं, इस बात का अचरज स्वयं वरजांग को भी था। उसने कहा—"अगर यह परम्परा सच है तो....तो...तो..."

"तो क्या ? कहने ही बैठा है तो कहता क्यों नहीं ? मैं भी देखती हूँ कि जिस परम्परा ने तुझमें मेरा पति बनने का भ्रम पैदा किया है, आखिर वह कैसी है ?

"अरे, मेरी परम्परा मेरे पास रहने दे। और अपनी ही परम्परा को देख। और देखकर उसे सँभाल कर रखना। सुन, तेरे इन आचार्य-वाचार्य और पंडित-खंडित के संकल्प पूरे होने वाले नहीं है। तू चाहे जितनी अंधी है फिर भी इतना तो तू भी कह सकती है। तेरा आचार्य संथारा करेगा, तेरा बाप उसके पीछे मरेगा। क्या तू सोचती है कि चाँद-सूरज दोनों का घूमना बंद हो जाएगा ? क्या तू सोचती है कि आसमान टूट पड़ेगा और धरती फट जाएगी ? राम राम कह ये दोनों मरेंगे तो अपनी मौत मरेंगे, बाकी दुनिया तो इसी चाल से चलती रहेगी। अभिषेक के संकल्प के बाद अगर नियत अवधि में वह पूरा न हुआ तो गोमटेश्वर की प्रतिमा लोप हो जाएगी, ऐसी धारणा है। क्या तेरा खयाल है कि पचास हाथ की यह प्रतिमा चलायमान हो जाएगी ? मुझे तो यही समझ में नहीं आता कि तुझे यह भूत कहाँ से लग गया है !"

"लेकिन मैं तो सोचती हूँ। इसका कारण यह है कि मेरा जन्म बेलगोला में हुआ है और तेरा अहिहोल में।"

"अरे पगली ! सच्चा व्यवहारी और सच्चा वणिक तो मैं ही हूँ। चाहे मैं अहिहोल का रहनेवाला होऊँ, फिर भी मैं बाप-दादों के कुएँ में डूबकर मरनेवाला नहीं हूँ। झूठ-मूठ के वैर कमाकर मैं कर्मों के बंधन नहीं बाँधता। अरी, पहाड़ को कोई खोदता नहीं, उसके पास में फिरकर ही जाता है, ऐसा ही आदमी सच्चा बनिया है। और जो खोदने बैठता है, वह गँवार है।"

"लेकिन वरजांग मुझे तो अपने पागलपन में ही आनन्द मिल रहा है। मैं इसी तरह मरूँगी। लेकिन तू यदि इतना समझदार है तो मुझ जैसी पगली के पीछे क्यों दुखी होता है और क्यों कर मुझे दुख देता हैं ? तेरा

और मेरा प्रेम भिन्न है। तेरा और मेरा पंथ भिन्न है। अतः तू अपने रास्ते जा और मुझे अपने पागलपन में लीन रहने दे।"

"होलेयों को रोक लेने का एक अवसर तुझे मिला था, वह तूने खो दिया। अब तो बेलगोला की सारी सम्पदा देने पर भी होलेय लौटकर नहीं आएँगे। पागल होने पर ही वे आ सकते हैं। अब यदि तू उन्हें परचेरी के अधिकार दे दे, तब भी भला वे किस काम आएँगे? होलेयों को तो राय हरिहर की सेना में भर्ती होने का सुअवसर मिल गया है! अरे पगली, अब यदि तू अधिक तीन-पाँच करती है तो वे पूरे बेलगोला को ही लूट लेंगे। और ज़रा सोच ले, राय हरिहर की सेना बेलगोला को लूटना चाहे तो उसे रोकने के लिए, तेरे पास है ही क्या?"

"तुझे और भी कुछ कहना है? मुझे दूसरे काम हैं।"

"क्या कहूँ? आज अगर पाँच हज़ार आदमी भी काम पर लग जाएँ तो भी संकल्प की अवधि में तैयारी पूरी नहीं हो सकती। और तेरे पास काम करने वाला दूसरा है ही कौन? अधिक से अधिक—एक तू। दूसरा कोई बेवकूफ नज़र नहीं आता है!....और दूसरा तेरा यह..."

सिर पर घास का गट्ठर लेकर जाते हुए त्रिबोया की ओर वरजांग ने अँगुलिनिर्देशन किया—"इस दुनिया में मैंने बहुत से बेवकूफ देखे लेकिन ऐसा बेवकूफ कहीं नहीं देखा।"

"और उसने भी तेरे जैसा, दूसरा नहीं। यह नर दोमार है, शत्रु है, फिर भी इसकी बेवकूफी में एक ऐसा गुण है, वरजांग, जो तुझ में नहीं है। यह धर्म की शपथ को मानता है और अपने वचन के प्रति वफादार है।"

"तो भले यह अपनी मर्यादा और वफादारी के कोल्हू में पिस जाए। मुझे इससे क्या?"

"तुझे कुछ न हो, परन्तु मुझे तो है। मैं इस आदमी से एक बात ज़रूर सीखना चाहूँगी—बातों में वक्त न खोना, परिणाम की चिंता न करना और सामने प्रस्तुत काम को पूरा कर देना। वरजांग, एक बात याद रखना: जिस दिन गोमटेश्वर के संकल्प की अवधि पूर्ण होगी, उस दिन

दूसरे सब लोग चाहे शर्म के मारे मुँह छिपा लें, मगर मैं तो वहाँ हाजिर रहूँगी, और रहेगा यह दोमार भी !"

"और फिर ?

"फिर की बात फिर...फिर गोमती इस अभिषेक की अवहेलना करने और करानेवाले से निपटने तक ता जीवित रहेगी अवश्य। इतनी बात मैं जानती हूँ, शेष भगवान जाने।"

दूर पर धूल के गोले दिखलाई दिए। मानो बादल चढ़ आए हैं।

और उन बादलों के बीच में सूर्य की किरणों से चमकते हुए अस्त्र-शस्त्र दृष्टिगोचर हुए।...तेजी से बादल निकटतर आ गए। निकट आकर फट गए। अब धरती पर लय और ताल की आवाजें स्पष्ट सुनाई देने लगीं।

और धूली के बादल से बाहर प्रकट होती घुड़सवारों और पैदल सैनिकों की सेना अपने भालों को ऊँचा उठाए, आती हुई नज़र आई !....

हाँफती-हाँफती एक वृद्धा दौड़ती आई—

"भागो, भागो," उसने चीखकर कहा—"भागो, भागो, भागो, भागो... टोटी आ रहा है, होलेय आ रहे हैं। वेलगोला को लूटने के लिए आ रहे हैं। भागो, भागो।"

वृद्धा गिरती-दौड़ती, चीखती-पुकारती आगे और आगे भागती रही।

वरजांग और गोमती एक दूसरे की ओर देखते रह गए !

"गोमती, भाग जा।" वरजांग ने चीत्कार जैसे स्वर में कहा—"भाग, भाग, जल्दी से भाग।"

गोमती का चेहरा रूई की तरह सफेद पड़ गया। उसके इस चेहरे का रंग उड़ गया। किन्तु वाणी निश्चल थी—

"तुझे जाना हो तो तू चला जा। मैं तो यहाँ से एक क़दम भी नहीं हटाऊँगी। आखिर, वेलगोला में मरने के लिए भा तो कोई चाहिए, न !"

"गोमती, पगली मत बन। हिंसक पशुओं के सामने हठ नहीं करते। और होलेय तो हिंसक पशुओं से भी अधिक अधम हैं।"

"तू जा। गोमती वेलगोला में ही जीएगी और वेलगोला में ही मरेगी ! और मरने में दुःख ही कहाँ है ? मेरे समस्त संताप और राग का अंत आ

जाएगा। कदाचित् शासननाथ को यही मंजूर है कि मेरे बलिदान पर मेरे समस्त संतापों का अंत हो जाए।"

सिर पर घास का भार लिए बिबोया उसकी ओर ताक कर देखता रहा। फिर बोझा उसने फेंक दिया और एक कुल्हाड़ी लेकर आया।

कुल्हाड़ी हाथ में उठाए वह गोमती के पास में आकर खड़ा हो गया।

उसने एक शब्द तक न कहा। परन्तु उसकी आकृति से यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि कोई गोमती की ओर हाथ उठाए, इसके पहले ही बिबोया मरने और मारने को कटिबद्ध खड़ा था।

वरजांग वहाँ से भागकर चला गया !

गोमती एक शिला पर बैठ गई।

बिबोया कुल्हाड़ा सँभालकर खड़ा रहा !

बड़ी-बड़ी आँखों में छलकता अभिमान; उसका मुख और मुख पर प्रकट अभिलाषाएँ; उसका हृदय और हृदय से झर-झर बहता परम्परा का मद—इस समय, इस तरह निचुड़े हुए थे, जिस तरह कोल्हू में ईख निचोड़ ली जाती है! गोमती की श्रद्धा शेषनाग के शीश पर स्थित कील के समान थी, परंतु इस वक्त मानो शेषनाग दौड़ चला है, धरती में हलचल आई है और श्रद्धा के दीप बुझ गए हैं और श्रद्धा के स्तम्भ धराशायी हो गए हैं!

समक्ष, दृष्टि के सामने होलेय चले आ रहे थे। वैरी के रूप में नहीं, सेना के सहज अभियान में वे आ रहे थे। सेना की सम्पूर्ण व्यवस्था और साजोसामान से वे सजे थे। गोमती देख रही थी—सशस्त्र होलेय क़दम मिलाते हुए आ रहे थे! हरावल (सेना का अग्रभाग) में टोटी चल रहा था। और वह मानो होलेय नहीं है, गोमती के चाबुक की मार खाने के लिए पैदा हुआ कोई पामर, पराधीन पशु नहीं है वरन् फुफकार करता प्रचंड सर्पराज चला आ रहा है! अरे, यह वही टोटी था! टोटी ही था, इसमें तनिक भी शंका न थी!

धूल के बादल फट गए थे और उनमें से होलेय प्रकट हो रहे थे! और फिर से इस समय धूल के बादल ऊँचे चढ़ रहे थे और उनमें से घुड़सवार निकल आए थे! उनकी भगवा वर्दी, भले, आज दृष्टिगोचर हुई हो, उनका जिक्र तो कब से सुना जा रहा था!

और अपलक गोमती उन्हें देखती रह गई! उसकी देह में तनिक भी हलचल न हुई!

बिबोया उसके निकट गया। उसने कहा—

"गोमती! जीवित नर भद्र को प्राप्त होगा और जीवित नारी भी! तुम चली जाओ!"

यंत्र-चलित पुतली का सिर जिस प्रकार कल के द्वारा चलता है, उस प्रकार गोमती ने सिर हिलाया—

"तुम चले जाओ! जासूस नट! तुम्हारा काम पूरा हो गया है। वेलगोला के वीर वणिकों का विनाश होगा; वेलगोला की सम्पदा लूटी जाएगी; उसका अभिषेक अपूर्ण रहेगा! इससे अधिक तुम क्या चाहते

होठ चबाकर बिबोया ने अपने रोष को वश में रखा। सालुवा चला गया। उसके सवार चले गए। वहाँ से हटकर इंद्रगिरि पर्वत की तलहटी की राह पर दोनों ओर खड़े रहे!

फिर एक पालकी आई।

फिर एक घुड़सवार आया। उसकी देह पर नख से शिखा तक श्वेत वस्त्र थे। हाथ में कोई अस्त्रशस्त्र नहीं था। सिर पर मात्र एक कामदार कलंगी थी। और उसकी मुद्रा मानो सूर्यकिरणों से जगमग कर रही थी।

और बिबोया के कंठ से चीत्कार निकली—

"राय हरिहर....राय हरिहर...राय हरिहर...!"

एक तीव्र आर्तस्वर मानो उसके अन्तस्तल की गहराई से उठा। उसके कंठ से, अग्नि की रेखा खींचती-सी वाचा प्रकट हुई—

"राय हरिहर! हाय, तुम्हें यह क्या सूझा?"

बिबोया के सिर पर ज्वालामुखी-सा कुछ फट पड़ा! उसकी आँखों के सामने अँधेरा-उजाला नाच उठा! उसे, किसी ऊँचे पर्वत से नीचे-बहुत नीचे खाई में फेंक दिया गया हो, इस तरह, रुँधे श्वास के कारण उसके पेट में दर्द होने लगा!

अपने हाथ की कुदाली को उसने फेंक दिया! और राय हरिहर के मार्ग के मध्य में वह खड़ा हो गया। उसके सफेद घोड़े की लगाम ज़ोर से थाम ली। घोड़ा चौंककर खड़ा हो गया!

"मेरे राय...मेरे मण्डलेश्वर...मुझे मारने के लिए तुझे इतना कष्ट उठाना पड़ा?"

"तुम क्या कहना चाहते हो? मैं तुम्हारा कथन नहीं समझा? तुम कौन हो?"

"मैं कौन?....अघोरनाथ भगवान कालमुख विद्याशंकर ने जिस समय आठ सिर माँगे थे, तब एक सिर मैंने भी अर्पण किया था—एक अपना सिर!...अघोरनाथ की उग्र विद्या और शिक्षा के ताप को सहन न कर सका तो मैं वहां से लौट आया था, गुरुचरण की वंदना करके....वही हूँ मैं! राजसंन्यासी कतिपय योद्धाओं को लेकर जब मदुरागढ़ जीतने के

लिए गए थे, तब उनके साथ मैं भी था।...उनकी मृत्यु का दुःखद संवाद तुर्की सेना के बीच से लाकर दादैया तक पहुँचाने वाला मैं ही हूँ....मदुरा के सुलतान ने राज संन्यासी का सिर भाले पर टांग दिया था....तुर्की सेना को चीर कर, राजसंन्यासी के शीश को वापस लाकर, कावेरी के तट पर उसका पवित्र दाहसंस्कार करने वाला मैं हूँ...महाराज....आप पूछ रहे हैं मुझे.... मैं कौन हूँ !...."

बिबोया ने राय हरिहर के पीछे कुछ हाथी देखे, जो इसी दिशा में आगे बढ़ रहे थे। अपनी सूंड़ हिलाने वाले, लम्बे दाँतों वाले वे काले पहाड़ जैसे हाथी इसी ओर आ रहे थे। वे असली सिंहली हाथी थे, जो अपनी अम्बारी के बोझ को फूल की तरह उठाए आगे बढ़ रहे थे !

बिबोया ने एक विचित्र आवाज़ निकाली। यह आवाज़ ऐसी थी कि जिसे आज तक किसी ने नहीं सुना था। इसे सुन कर प्रत्येक रामभद्र हाथी अपने-अपने स्थान पर ही ठहर गया ! महावतों के प्रयत्न करने पर भी वे आगे नहीं बढ़ते थे !

उन रुके हुए सजीव पर्वतों की ओर उँगली दिखाकर, आँसुओं से रुँधे हुए कंठ से बिबोया बोला—"यह तो मैं हूँ महाराज ! आपकी हस्तिसेना का दण्डनायक...महाराज...आपने विजयधर्म का वरण किया है, अतः मैंने अपनी हस्तिसेना आपको अर्पित की थी ! अपनी ज़िन्दगी, अपना पौरुष, अपनी विद्या, सब कुछ आपको अर्पण किया था ! और बदले में आपने मुझे दी मौत !...महाराज ! मैंने आपकी सेवा की ! और तो मैं कुछ नहीं कहता—परंतु मुझे वीर की भाँति मरने का अवसर देते ? यह तो आपने मुझे कौए और कुत्तों की मौत मारा !" और त्वरित राय हरिहर के पास खड़े एक साथी की कटार झपट कर बिबोया ने राय हरिहर के सामने धर दी और बोला—"महाराज, आप ही इस खंजर से मुझे मार डालें ! मेरे प्राणों का विसर्जन हो। मैं एक शब्द भी नहीं कहूँगा ! और महाकरणाधिप दादैया सोमैया ने विजय धर्म के लिए मेरी सेवाओं को स्वीकार कर जो अपूर्व अवसर दिया था, आज उसके निमित्त मृत्यु मेरी अंतिम सेवा है।"

राय हरिहर के आस-पास कतिपय मण्डलेश्वर सावधान खड़े हो गए।

की दृष्टि-सीमा तक 'अमारि' की जो मर्यादा है, वह हमारी भी मर्यादा बनेगी। अभिषेक तक मदुरा-विजय का हमारा संग्राम स्थगित रहेगा !"

बिबोया देखता रहा...स्तब्ध होकर देखता रहा...और फिर वह दौड़ चला....जहाँ गोमती बैठी थी वहाँ...!

"गोमती ! गोमती..." वह बोला। आनंद के अतिरेक में, आज सबसे पहली बार उसने गोमती का स्पर्श किया और उसे इसका ध्यान भी न रहा !—

"गोमती ! गोमती ! मेरे महामंडलेश्वर आए हैं।...जानती है.... किस लिए...? किसी युद्ध के लिए नहीं...गोमटाभिषेक पूरा करने के लिए। वे होलेयों को भी लौटा लाए हैं। सर्व साधन-सामग्री सहित वे आए हैं।— गोमती, विजयधर्म के महामंडलेश्वर इसी लिए आए हैं...गोमती, गोमती !..."

और उत्तर की प्रतीक्षा के पूर्व ही, बिबोया अवाक् गोमती को अपने कंधे पर उठाकर ले आया और उसे राय हरिहर के सम्मुख खड़ी कर दिया—

"महाराज ! ये हैं वीर वणिकों के पृथ्वीसेट्ठि ! पृथ्वीसेट्ठि की मुद्रा इन्हीं के पास है। ये वायीजन श्रेष्ठि की पुत्री गोमती देवी हैं।"

बिबोया ने गोमती को नीचे बिठा दिया और वह तो बेसुध होकर गिर पड़ी !

अब सम्पूर्ण वेग एवं शक्ति के साथ अभिषेक की तैयारी होने लगी। रात-दिवस राय हरिहर की अश्वसेना चारों दिशाओं में दौड़ने लगी। पलक मारते उसने नौ नदियों के जल एकत्र कर दिए। कल्याणी सरोवर के तट पर चारों ओर चावल के घास की छाया छा दी गई ! और अवधि से पूर्व ही कल्याणी के तट से लगा कर प्रतिमा के पादपद्म तक श्रीफल का मार्ग बन गया। श्रीफल का ऊँचा मंच भी बन गया। कर्णाटक के राजभंडार के सोने चाँदी के फूल, सोने के वराह, शहद के हज़ार-हज़ार घड़े कल्याणी तट पर व्यवस्थित रूप से रख दिए गए। हज़ार श्वेत गाएँ और हज़ार श्याम गौएं आईं। हज़ार नीली गाएँ आईं और उनके दूध के घड़े भी छलकते रहे।

अंत में वह धन्य वसंतपंचमी आई, जिस तिथि को, सवासौ से अधिक वर्षों के अंत में, भगवान गोमटेश्वर की प्रतिमा का ऋद्धिसिद्धि से अभिषेक होने वाला था। आसपास से भक्त अनुयायी आए और याचक भी आए। विजयधर्म के परमशैव महामंडलेश्वर कर्नाटकराज जैसे परम भागवत का धनभंडार लेकर वीर वणिकों के देव का अभिषेक करते हैं। इस कुतूहल से प्रेरित होकर कितने ही भक्त आए। शैव भी आए। आनेवालों में कुछ लोग उत्सव में भाग लेनेवाले भी थे और कुछ उत्सव को कुतूहल पूर्वक देखने वाले भी थे।

चिउँटियों के दल के समान लोगों के दल बेलगोला में भर आए। इतने आदमी थे कि यदि समूचे बेलगोला पर थाली फिराई जाए तो वह नीचे न गिरेगी, लोगों के सिरों पर होकर निकल जाएगी।

प्रातःकाल में लोगों की भारी भीड़ अभिषेक की दिशा में बढ़ने लगी। किसी के सिर पर नदी के स्वच्छ जल का घड़ा था, किसी के पास शहद का घड़ा था, किसी के पास दही का घड़ा था, तो किसी के पास फूलों का घड़ा था, कोई सिक्के का घड़ा सिर पर लेकर चल रहा था।—इस प्रकार व्यक्तियों की अखंड पंक्ति श्रीफल के मार्ग से चंद्रगिरि पर चढ़ने लगी। दर्शक को पल भर के लिए प्रकृति का क्रम बदल जाने का भ्रम हो जाए, उस भाँति सफ़ेद वस्त्रों से सुसज्जित यह मानव समूह, मानो एक विशाल नदी पहाड़ से नीचे उतरने के बदले, ऊपर चढ़ रही हो, इस प्रकार प्रतीत हो रहा था! बाजे बज रहे थे और उनकी गूँज दूर-दूर तक छा रही थी।

पचास हाथ ऊँची प्रतिमा के सामने आँगन में घड़े रखे हुए थे और हरेक घड़े के पास उनके भाविक के खड़े रहने का स्थान निश्चित था।

ठीक मध्याह्न के समय आचार्यश्री मंच पर आए। उनके पीछे-पीछे श्रद्धालुओं का संघ भी ऊपर आया और उन्होंने मूर्ति के मस्तक से जल-सिंचन शुरू किया। कार्यकर्त्ता इस भाँति खड़े थे कि घड़े नीचे से ऊपर आसानी से, जल्दी से जल्दी आचार्यश्री और उनके मंडल के पास पहुँच जाते और वहाँ उनका क्रमानुसार सिंचन होता।

सिंचन इस प्रकार प्रारम्भ हुआ मानो धर्म और श्रद्धा की धारा प्रवाहित हो रही है। अभिषेक शुरू हो गया। वाद्य-यंत्रों का विपुल कोलाहल गूँजने लगा। नगर-नारियों का मंजुल कंठ मनोहर गीतों से गूँजने लगा। वे धर्म के स्तवन मधुर कंठ से गा रही थीं। एक घड़ी...दो घड़ी...अभिषेक आगे बढ़ा...आधा पूरा हुआ....और समस्त मानव मेदिनी में एक सन्नाटा छा गया। स्तवन बन्द हो गए। वाद्य बंद हो गए। सर्वत्र मूक और मूढ़ विस्मय छा गया।

"यह क्या चमत्कार है ? यह क्या है ? यह किस देव का प्रकोप है ?..."

अभिषेक की सामग्री ठेठ मस्तक से पादपद्म तक पहुँचनी चाहिए। उसके बजाय, जल, दूध, दही, मधु सभी भगवान के कंधे से और छाती से खिसक कर कटि प्रदेश के आगे से और नीचे खिसक जाता था। भगवान की जंघा बिंदु मात्र जल से भी न भीगी थी। जंघा-नीचे कर वल्मीक भी एकदम कोरा था। वहाँ भी एक भी बूंद नहीं पहुँची थी। यह अति विस्मय की बात थी।

यह क्या ? क्या श्रद्धा अपूर्ण थी ! क्या यह अभिषेक महाप्रभु को अस्वीकार था ?...यह क्या ? यह क्या ?...

मूक उत्कटतापूर्वक अभिषेक आगे बढ़ा। संध्याकाल सम्पूर्ण हुआ... लेकिन भगवान की जंघा तक एक भी बिंदु का स्पर्श न हुआ। भगवान के वल्मीक को भी एक भी बिंदु न छू सका।

तभी वहाँ एक होलेय स्त्री आई। वह वृद्ध थी। और उसके पास में दूसरा पात्र न था। सिर्फ एक सूखी तुम्बी थी। उसमें थोड़ा-सा दूध था।

काँपते हाथों इस होलेय वृद्धा ने अपना पात्र आचार्यश्री को सौंप दिया। बोली—

"मेरी यह श्रद्धा—प्रभु के चरण में अर्पित कीजिए।"

अभिषेक के समय भक्तजन यदि अतिरिक्त सामग्री लाते हैं तो वह भी

चढ़ा दी जाती है। चढ़ना आवश्यक है। आचार्यश्री ने तुम्बी अपने हाथ में ली। और दूध मूर्ति के मस्तक पर चढ़ाया।...और आश्चर्य है—ठेठ मस्तक से वल्मीक तक...जंघा के ऊपर से बहता हुआ यह दूध पादपद्मों तक एक अखंड धारा के रूप में प्रवाहित हो गया।

आचार्यश्री ने जयघोष किया—

*"गुलाईमाता की जय हो!"

हज़ारों कंठों से जयघोष उठा—

"गुलाईमाता की जय हो।" चारों ओर जय-जयकार होने लगा। प्रभु का अभिषेक प्रभु ने स्वीकार किया। बेलगोला का सौभाग्य परिवर्द्धित हुआ। गंगाराज के महामात्य चामुण्डराय के पश्चात् सवा सौ से अधिक वर्षों के बाद में, फिर से गोमटाभिषेक सानन्द संपन्न हुआ।

बेलगोला धन्य हुआ।

---

*आज भी गोमटेश्वर की प्रतिमा के निकट गुलाईमाता की प्रतिमा स्थित है।

श्रवण बेलगोला की अधिकांश बस्ती वृद्धजनों, वृद्धाओं, विधवाओं, बालकों और वरजांग-जैसे निकम्मे लोगों से पूर्ण थी ।

घर-घर गुलाईमाता की चर्चा चली ।

गंगाराज के दण्डनायक चामुण्डराय के पश्चात्, सवा सौ साल से भी अधिक वर्षों की अवधि के पश्चात्, आज पहली बार बेलगोला ने यह दृश्य देखा था । उस महोत्सव के अनेक विवरण कई लोगों ने अपने वृद्ध-बुजुर्गों के मुंह से सुने थे । वृद्धों को कर्णोपकर्ण वृत्तांत प्राप्त हुए थे । इसके अलावा किन्हीं शिलालेखों में चामुण्डराय के उस अभिषेक का वर्णन अंकित था । फिर भी लोगों ने एक महाअभिषेक आज पहली बार अपनी आंखों आप देखा !

आश्चर्य तो सब को एक ही बात का था ! इतना अनंत जल, प्रवाही वस्तुओं का इतना बड़ा समूह—कल्याणी सरोवर तक जिसकी सरिता बहती जा रही थी और अनेक जिसमें स्नान कर पावन हुए थे । किन्तु उसका एक बिन्दु भी भगवान् की जंघा तक नहीं पहुँचा था । और एक अकिंचन वृद्धा—वह भी होलेय क्षुद्रा !—उसकी मात्र एक तुम्बी—गुलाई में भरा थोड़ा-सा दूध जंघा तक ही नहीं पहुँचा, वरन् वल्मीक से बहकर ठेठ चरणों तक नीचे पहुँच गया !

किसी ने कहा : ये गुलाईमाता साक्षात् पद्मावती देवी थीं ! किसी ने कहा—भगवान् के द्वारपाल यक्ष की पत्नी थीं और यह शिक्षा देने के लिए

आई थीं कि भगवान् को स्वल्प पुजापा भी पूर्णरूपेण प्रिय है। भगवान् की पूजा के समय गर्व नहीं रखना चाहिए, वरन् दीनभाव रखना चाहिए ! यही सब को सिखाने के लिए वे आई थीं ! भगवान् सम्पत्ति के नहीं, भावना के भूखे हैं, यही वतलाने के लिए वे आई थीं।

यह तो जो हो, सो हो, परंतु अभिषेक पूरा हुआ ! बेलगोला कृतकृत्य हुआ ! परम्परा कहती है कि आगे जब तक अभिषेक का उद्घोष नहीं उठता, तब तक बेलगोला की ऋद्धि-सिद्धि पर प्रभु की दयामय दृष्टि बनी रहेगी !

परंतु....भीतर ही भीतर...सब के मन को एक कीट काट रहा था ! बेलगोला की ऋद्धि-सिद्धि के रक्षित रहने के सम्बन्ध में भगवान् का वचन तो सत्य हुआ, किन्तु इस विषय में मनुष्यों का वचन सच होगा या नहीं ?

होलेय यदि चले जाएँ तो बेलगोला में क्या बच रहेगा ? इसका जवाब किसी के पास न था। और किसी को इसमें शंका न थी कि होलेय जानेवाले हैं ! यों भी, जब होलेय चले गए थे, तब कोई उन्हें रोक न सका था ! सो, अब तो उनके साथ स्वयं राय हरिहर हैं, उनकी सेना है, उनकी राय-रेखा है ! इतने महान् पृष्ठबल के रहते होलेयों को क्योंकर लौटाया जा सकता है ! यह तो राय हरिहर की कृपा है कि अभिषेक सानन्द समाप्त हो गया ! अब ऐसा कोई सुचिह्न दृष्टिगोचर नहीं होता था कि राय हरिहर इससे अधिक कृपा दिखलाएँ ! आखिर, वे हैं तो परम भागवत या परम शैव !... चाहे जो हों, परन्तु इतना तो निश्चय था कि वे भी किसी एक समय के अनुयायी हैं !

जिस समय समस्त बेलगोला नगर राय हरिहर की प्रशंसा कर रहा था, उस समय वे आचार्यश्री को प्रणाम कर, बिदा ले रहे थे ! उन्हें हर्ष था कि आचार्यश्री की धर्मश्रद्धा को संतोष मिला !

उस समय वे वायीजन श्रेष्ठि से बिदा माँग रहे थे, क्योंकि उन्हें खुशी थी कि श्रेष्ठि की मुद्रा प्रकाशित रही !

तभी वरजांग वहाँ आया। राय हरिहर के नायक उनके पीछे खड़े थे। उनके बीच मार्ग बनाता हुआ वरजांग आया !

उसने पुकार मचाई—

"आचार्यश्री इसे आशीर्वाद मत देना !"

"क्यों ?"

"इसने हमारे होलेयों को बहकाया है। लुभाया है। यदि इसने नहीं, तो इसके जासूस—दोमार ने।...."

"मेरा कोई दोमार नहीं। न मैंने किसी के होलेयों को बहकाया है।"

"अच्छा जी !" वरजांग ने तीव्र स्वर में कहा—"अपने शब्द से मुकर जाओ, ऐसे तो नहीं हो न, तुम ?"

इस अपमानजनक प्रश्न का उत्तर भी राय हरिहर ने शांतिपूर्वक, सिर हिलाकर दिया—नकारात्मक।

"तो न्याय दीजिए।"

"न्याय ? बेलगोला वीर वणिकों का धाम है। यहाँ न्याय का तराजू पृथ्वी सेट्ठि के हाथ में है। भला, मैं कौन होता हूँ, बेलगोला में न्याय करने वाला ?"

"यों निरर्थक शब्दजाल बुनकर हमें उनमें फँसाने की बातें रहने दीजिए।"

"मैं आपको, आखिर, किसलिए फँसाऊँ ?"

"किसलिए ? बेलगोला को जीत लिया जा सके, इसलिए ?"

"मैं बेलगोला को क्यों जीतने लगा ?"

"अपने राज्य में मिलाने के लिए।"

"आप भूल रहे हैं। मेरा कोई राज्य नहीं है। जो राज्य है, वह भगवान् कालमुख विद्याशंकर महाराज का है। मैं तो मात्र उनका महामंडलेश्वर हूँ।"

"वाणी का चमत्कार, मंडलेश्वर, तुम अन्यत्र नहीं पर बेलगोला के वीर वणिकों को ही दिखलाओगे ?"

"वाणी-चमत्कार का प्रश्न ही नहीं उठता ! यह तो मात्र सत्य है: पूछ लीजिए इन सब से !"

"तो तुम्हारे इन गुलामों में से मुझे सच्चा उत्तर कौन देगा ? शायद

कोई मस्त-आवारा आदमी खड़ा हो जाए ! परंतु शेर से कौन कह सकेगा कि तुम्हारे मुँह से बदबू आती है ?"

"आप ग़लती कर रहे हैं, न केवल एक विषय में, लेकिन अब तक की सभी बातों में ! भगवान् कालमुख के राज्य की इस धरती पर अंकित कोई सीमारेखा नहीं है। वह तो कल्पनासृष्टि है। विचारों की दुनिया है। इसमें किसी के लिए सीमावृद्धि नहीं होती, न किसी की ओर से किसी के विरुद्ध विद्रोह किया जाता है ! जिसे अपना भावी और अपनी धरती भगवान् कालमुख विद्याशंकर को सौंपनी है, वही, उन्हें इनका दान देता है। हमारे राज्य की अभिवृद्धि के लिए न तो युद्ध होते हैं, न प्रपंच ही रचे जाते हैं, वरन्, दान लिए जाते हैं।"

"तब तो राय-रेखा भी एक दान ही है ? क्यों ?"

"हाँ ! समस्त दक्षिणापथ का भविष्य संकटमय है ! मेरे भाई ! चारों समय, चारों भाषाएँ, चारों जातियाँ और उनके साथ दो सौ तेरह, छोटे-बड़े राज्य—स्वाधीन दुर्ग और स्वाधीन जागीरदारियाँ, इन सब पर इस समय भयंकर भविष्य झूम रहा है !...भाई, कावेरी के उस पार दक्खिन में मदुरा में तुर्क सुलतान बैठा है। तुंगभद्रा और कृष्णा के उस पार भी, दिल्ली का सुल्तान और देवगिरि का उसका सूबेदार बैठा है। उनकी नज़रें दक्षिणापथ पर हैं। और उनकी नज़रों को हम अच्छी तरह जानते हैं। उनका मुकाबिला करने का मतलब है—दक्षिणापथ की संस्कृति को जीवित रखना ! जिस किसी नागरिक के मन में यह भावना है : वही विजयधर्म राज्य का वासी है। यह भावना ही विजयधर्म राज्य है। इस भावना के परिणाम स्वरूप समूह शक्ति का संचय करने के निमित्त और इसमें से एक नए राज्य की रचना के लिए जो अपना राज्य दान में देता है, उस प्रदेश की कठिनाई और उस पर आनेवाली विपदा सबके लिए समान रूप से कठिनाई और विपदा है ! उत्तरापथ से यह शिक्षा मिलती है कि अलग-अलग रहकर कोई जी न सकेगा ! दक्षिणापथ ने भी एक बार यह अच्छी तरह देख लिया है। इस मर्यादा को समझना-बूझना ही, इस राज्य की वफ़ादारी है।"

"ऐसी लम्बी-चौड़ी बात हम वणिक बच्चे नहीं समझ सकते ! ये तो सब आगामी कल की बातें हैं ! आज की बात कीजिए न ? क्यों कर आपने हमारे होलेयों का हरण किया ? किसलिए तुमने अपने दोमार जासूस यहाँ भेजे ?"

"मैंने किसी दोमार को नहीं भेजा !"

"नहीं भेजा ? तो मैं न्याय माँगता हूँ। सुना है कि राय हरिहर बड़ा न्यायप्रिय है। उसका न्यायदान विख्यात है।....न्याय के विषय में वे किसी की शर्म या संकोच को बाधक नहीं बनने देते।...तब मैं भी आज आपसे न्याय माँगने आया हूँ।"

"यदि आप न्याय माँगते हैं तो ज़रूर न्याय मिलेगा। अगर कोई आदमी झूठमूठ ही हमारा दोमार बनकर यहाँ आया है तो, उसे भरपूर दंड दिया जाएगा।"

"ठीक है ! मैं बिबोया के विरुद्ध न्याय और दंड माँगता हूँ। वह तुम्हारा दोमार बनकर यहाँ आया है।"

"तुमसे उसने कहा है क्या ?"

"अरे वह क्या कहेगा ! सारा गाँव कहता है; मैं स्वयं भी कहता हूँ।"

टोटी एक क़दम आगे बढ़ आया !

बोला—

"अगर बिबोया के खिलाफ़ किसी को न्याय माँगने का अधिकार है तो वह मुझे है। वरजांग सेट्ठि को नहीं, मंडलेश्वर ! आपने समस्त दक्षिणापथ में राय-रेखा का घोष किया ! उसके धर्मादेश के शिलालेख स्थापित किए। जहाँ-जहाँ आप पधारे, वहाँ-वहाँ आपने वाचन मुद्रा के रूप में इन शिला-खंडों की स्थापना अवश्य करवाई। यह राय-रेखा समस्त दक्षिणापथ के होलेयमात्र को परचेरी के अधिकार देती है। हम उन्हीं अधिकारों को स्वीकार कराने के लिए पृथ्वीसेट्ठि की हवेली पर गए। लेकिन हमारे विरुद्ध हवेली के द्वार बंद कर दिए गए। हमें चाबुकों की धमकी दी गई ! और तभी आपकी हस्तिसेना के इस नायक ने आकर हमें सताया, बाहर निकाल दिया और हमें पीटा ! जिस समय आप की राय-रेखा के छात्र खोजने के

लिए चले, तब उन छात्रों को अस्वीकार करने वाले थे पृथ्वीसेट्ठि और ये बिबोया। इन्होंने हमें सताया, मार-पीट की, धमकियाँ दीं और हमारे एक दो आदमियों को जान से मार डाला! इन्होंने राय-रेखा का द्रोह किया है। मैं न्याय दान के निमित्त आपसे प्रार्थना करता हूँ, महामंडलेश्वर!"

"राय-रेखा का न्याय तो मात्र राजगुरु ही दे सकते हैं। राय-रेखा के शासन के अनुसार—राय-रेखा का उल्लंघन हुआ है या नहीं, इस तथ्य का निर्णय, पहले, राजगुरु करते हैं, बाद में अधिकर्णिक की कार्यवाही शुरू होती है।"

"यह तो हमें बहलाने की बात है, मंडलेश्वर! क्या तुम यह मानते हो कि हम वीर वणिक, यहाँ से उठकर, शृंगेरीमठ के शंकराचार्य के पास जाएंगे? उनसे फरियाद करेंगे?"

वरजांग इस तरह बोला मानो क्रूर रीति से मज़ाक उड़ा रहा है।

फिर बेलगोला वासियों की भीड़ की ओर मुड़कर उसने कहा—

"यह तो 'जा बिल्ली कुत्तों को मार'—जैसी बात है! हमारे व्यापारिक काफ़िले आज छप्पन देशों में विचरण कर रहे हैं इस कारण, यह, सबल लोगों की निर्बलों पर सवारी है!....वाणी का कपट चाहे जितना काम में लाया जाए, फिर भी लूट तो लूट ही है! फिर वह होलेयों की हो या दूसरी किसी वस्तु की!"

राय हरिहर ने कहा—"भाई वरजांग, न्याय माँगने के लिए, फरियाद करने के लिये—आपको अधिक दूर जाना पड़े, सो बात नहीं है। विजय धर्मराज्य के राजगुरु आपको यहीं मिल जाएँगे।"

"यहीं मिल जाएँगे?...यहीं मिलेंगे?"...

'हाँ! आज भोर में ही मुझे भगवान क्रियाशक्ति विद्यातीर्थ महाराज का संदेश मिला है। उन्हें सम्भावना प्रतीत हुई है कि उनकी जीवनलीला समाप्त होनेवाली है। अतएव, राय-रेखा के धर्मादेश के अनुसार विजयधर्म के राजगुरु का पद उन्होंने अपने उत्तराधिकारी को सौंप दिया है।"

वरजांग मुंह बाए देखता रहा। उसे कुछ न सूझ रहा था!

राय-रेखा के धर्म-शासन का जो भाग भगवान कालमुख विद्याशंकर ने अपने श्रीमुख से मुझे सुनाया है और प्रसिद्ध करने के लिए दिया है, वह इस प्रकार है : चार भाषाओं के कवियों में जो सबसे वयोवृद्ध होगा, वह राजकवि और चारों समय के आचार्यों में जो सबसे वयोवृद्ध होगा, वह राजगुरु ! इस धर्मादेश के अनुसार अब भगवान् क्रियाशक्ति महाराज के उत्तराधिकारी हैं—पंडित आर्यभद्र देव !"

और पंडित आर्यभद्र को प्रणाम कर, राय हरिहर ने दण्डवत् रूप में उनके दोनों पैरों का स्पर्श किया और अपने दोनों हाथों से उन्हें छूते हुए बोले—

"भगवान् ! इस समय इसी विषय में चर्चा करने के लिए मैं उपस्थित हुआ था ! भगवान, चारों समय की मर्यादा, चारों भाषाओं का गौरव और चारों जातियों का पुरुषार्थ आपकी उपाधि और हमारा स्वास्थ्य है। भगवान्, आशीश दीजिए !"

स्तब्ध जन-मेदिनी की ओर देखकर, पंडित आर्यभद्र देव बोले—

"महानुभावो, प्रकृति की लीला अनन्त एवं विचित्र है। शासनदेव ने अभी तक इतना बंधन मेरे लिए शेष रखा है। मंडलेश्वर, यही कर्मबन्धन मेरा भार बनेगा, यह मुझे ज्ञात था ! भगवान क्रियाशक्ति महाराज के जीवन-दीप का अब निर्माण होनेवाला है, यह भी मैं जानता था ! और लगभग एक मास पूर्व ही उन्होंने मुझे संदेश भेज दिया था। इसी कारण, तो मैंने इस अभिषेक का संकल्प किया था ! और प्रायोपदेश का निर्धार किया था। परन्तु..." पंडित आर्यदेव भद्र ने कहा, "शासनदेव की यही इच्छा होगी कि मैं एक कर्मबन्धन स्वीकार करूँ। मंडलेश्वर महाराज ! आपको 'धर्म का लाभ' हो। आपकी विजय हो ! वीर वणिकों के संकल्प को पार उतारने के लिए, आप स्वयं आए हैं। अब भला, मैं इस उपाधि से कैसे मुक्त हो सकता हूँ !"

वरजांग या टोटी, दोंनों में से किसी को यह न सूझा कि क्या उत्तर दें !

पंडित आर्यभद्र देव कहते रहे—

"सहस्रों वर्षों से इस देश में साम्राज्य रहते आ रहे हैं। राज्य रहे है। महाराजा रहे है, सम्राट रहे हैं। उन्होंने धर्म के अनेक कार्य सम्पन्न किए हैं। उनमें से कुछ ने अनर्थमय आचरण भी किए हैं! परंतु किसी ने 'राय-रेखा' की कल्पना न की और न ही उस पर आचरण किया!

"और एकमात्र विजयधर्म-राज्य ने यह करके दिखा दिया। मण्डलेश्वर, तुम्हारा यह अश्व तुम्हारी राजधानी बनेगा!—और जहाँ तक 'राय-रेखा' जीवित रहेगी, वहाँ तक चारों ओर विजयनगर साम्राज्य का प्रताप इस धरती पर प्रकाशित होगा!

राय-रेखा—कैसी साफ़ और सीधी चीज़ है! परंतु बड़े समय तक बड़े लोगों के दिमाग़ में भी इसकी कल्पना नहीं आई! विजयनगर साम्राज्य के विस्तार में रहने वाले किसी भी व्यक्ति को स्वच्छन्दता का, उछृंखलता का अधिकार नहीं है! संसार में जितने अधिकार हैं, सबके साथ 'धर्म' जुड़ा हुआ है! राज्य किसी की आय के तीसवें भाग से अधिक, कुल कर वसूल नहीं कर सकता! आज तक 'न्यायतंत्र' सेनापतियों और दंडनायकों के हाथ में रहा है, अब आगे से वह राजगुरु द्वारा निर्वाचित धर्माधिकारी के हाथ में रहेगा! न्यायसभा की बैठक सदैव नगरमन्दिर में प्रजाजनों की उपस्थिति में ही होगी। खानगी में किसी की तलाशी न ली जाएगी और धर्माधिकारी की आज्ञा के बिना, किसी को कोई दंड नहीं दिया जा सकेगा! राजगुरु अथवा धर्माधिकारी की आज्ञा के बिना, राज्य अथवा राज्याधिकारी सेठ, नायक या दुर्गपाल किसी की सम्पदा या जायदाद नहीं ले सकेगा!

"इसके अतिरिक्त राज्य चारों धर्मों के उत्सव, समान भाव और रूप से, मनाएगा। चारों भाषाओं के पण्डितों के योग से कला–सभा की रचना होगी। राज्य के सभी आदेश शिलालेख पर अंकित किए जाएँगे, कोई आदेश मौखिक न रहेगा। आदेश फिर चाहे वह मण्डलेश्वर का हो, महाराज विद्याशंकर का हो, राजगुरु का हो, नायक का हो या महाकर्णाधिप का हो!

"वीर वणिक बन्धुओ! राय-रेखा अति विशाल है! हमें ऐसी राज्य-व्यवस्था की रचना करनी है कि जिसकी छाया में नीचे से नीचा आदमी भी

यह सोचे कि यह राज्य मेरा है और मैं अपना सर्वस्व देकर भी इसकी रक्षा करूँगा। यदि कोई बाहरी शक्ति इस पर आक्रमण करेगी तो, मेरी भी हानि होगी। राय-रेखा का काम है कि जनमन में ऐसी भव्य भावनाएँ भर दे।...

जनता के वर्ग एक दूसरे पर आधारित हैं और सब से छोटे वर्ग पर सब से ज्यादा भार है। जनता सीढ़ी की बनावट की तरह है। नीचे के वर्गों के अधिकारों का सम्मान सोपान-पंक्ति के समान है। मंडलेश्वर, मेरे लिए बड़ा कर्मबंधन उपस्थित हुआ है।...परंतु मेरा विश्वास है कि इससे जीवों का कल्याण होगा।...इसलिए वीर वणिको ! आप भी विचार कीजिए। यदि आप तुरुष्कों के भाई-बंधु बनना चाहते हों तो राय-रेखा आपके काम की नहीं है। परंतु इतना न भूलियेगा कि विराट और खारे सागर की दोस्ती एक छोटी-सी मीठी नदी के लिए महँगी पड़ती है। नदी के जल से सारा सागर तो महँगा नहीं होगा, उल्टे वह नदी के मीठे जल को अपने पेट में पचा जाएगा और नदी से प्राप्त जल को भी खारा कर देगा। सच, आपका कल्याण तुरुष्कों के साथ रहने में नहीं है, दाक्षिणात्यों के साथ ही है। विजयधर्म के साम्राज्य की स्थापना हो गई है। अब आप इसे विजयनगर के साम्राज्य के रूप में ऊँचा उठा सकते हैं। मैं एक साधु भला, आपको क्या आदेश दे सकता हूँ ? सिर्फ सलाह ही दे सकता हूँ।"

तब वायीजन बोले—

"भगवन, आपकी सलाह हमारे लिए आदेश से भी अधिक है। यदि वीर वणिक पुरुषार्थ को पुष्पार्पण करने में पीछे रह जाते तो भगवान गोमटेश्वर की यह प्रतिमा सैकड़ों वर्षों से आकाश में अपना सिर छुआ कर अडोल खड़ी न रहती। आज हमने देखा है कि भगवान सिर्फ श्रद्धा के भूखे हैं। इन दयासागर के लिए एक अकिंचन होलेय की पूजा भी महापूजा के समकक्ष, उससे भी अधिक, स्वीकार्य है ! महाराज, जिसमें श्रद्धा है, वह मानव है। जो मानव हैं वे समस्त, शासन भगवान के सम्मुख समान हैं। देव जिनकी पूजा स्वीकार करता है, उनका, अधिक कुछ नहीं तो, आदर तो हमें अवश्य करना चाहिए। जिस महाप्रभु ने एक होलेय माता की पूजा स्वी-

कार की है उस प्रभु प्रतिमा की साक्षी में, मैं कहता हूँ कि समस्त दक्षिणा-पथ में राय-रेखा ने होलेयों को परचेरी के जो अधिकार दिए हैं, वे यहाँ भी दिए जाएँगे। इसमें भगवान साक्षी हैं। इस साक्षी के प्रमाण स्वरूप भगवान गोमटेश्वर की इस प्रतिमा के पास ही होलेय गुलाईमाता की प्रतिमा भी स्थापित की जाएगी और उसकी भी पूजा होती रहेगी!"

फिर वायीजन ने मण्डलेश्वर राय हरिहर की ओर घूमकर पूछा—

"मण्डलेश्वर, आपने बेलगोला की प्रतिष्ठा और सम्मान की रक्षा की है, कहिए, बेलगोला आपके लिए कौन-सा प्रिय कार्य कर सकता हे।"

"यही कि महाराज, अब तक आप बेलगोला के पृथ्वीसेट्ठि बने रहे, अब समस्त विजयनगर साम्राज्य के पृथ्वीसेट्ठि भी बनिए!"

"जैसी आपकी आज्ञा। अब एक बात पूछ सकता हूँ?"

"पूछिएगा।"

"आपके धरती है, राज्य है, सेना है, किन्तु साधन-सामग्री का क्या हाल है?"

"श्रीमंत! कलियुग का कालयवन जो कुछ यहाँ करके चला गया, वह आप से छिपा तो नहीं है?"

"मण्डलेश्वर, जब आप भगवान कालमुख विद्याशंकर महाराज से मिलें तो उन्हें मेरी ओर से इतना निवेदन अवश्य कीजिएगा कि जब भगवान कालमुख की आज्ञा होगी, तब वायीजन समस्त विजयनगर साम्राज्य में एक प्रहर तक सोने की वर्षा बरसाएगा!

मण्डलेश्वर, युद्ध, फिर चाहे वह धर्म के क्षेत्र में हो, चाहे संसार के क्षेत्र में। उसके, मुख्य दो साधन होते हैं। प्रथम—मृत्यु के सम्मुख अभयता। द्वितीय—जीवन के लिए उपयोगी सामग्री की उपलब्धि। प्रथम आवश्यकता को आप सँभाल लेना। द्वितीय की पूर्ति का भार हम वीर वणिकों पर छोड़ देना!"

: २१ :

फिर...

बेलगोला में, दर्शक-मनुष्यों का मेला बिखर चुका था। राय हरिहर जा चुके थे और उनकी सेना भी प्रस्थान कर चुकी थी। आसपास की मानव-मेदिनी भी लौट चुकी थी।

परचेरी का अधिकार प्राप्त कर होलेय वापस आए थे। अब रहने के लिए उन्हें पक्के मकान, खाने के लिए पेट भर अन्न-धान और निरन्तराय पारिवारिक जीवन प्राप्त हो चुके थे। माता-पिता, पुत्र-पत्नी, पुत्री आदि के सामाजिक संबन्धों पर ममत्व की प्रतिष्ठा हुई और उन्हें चाहे किसी के हाथ बेच देने के अधिकार अब किसी के पास नहीं थे। यह अभयदान सभी होलेयों को मिल गया था। अब उन्हें समुचित मजदूरी भी मिलने लगी थी। और इस मजदूरी का निर्णय वीर वणिकों के श्रेष्ठि और होलेयों के श्रेष्ठि, दोनों मिलकर तय करते।

मजदूरी के प्रकार और दैनिक दर शिलाओं पर खुदवाकर नगर-मंदिरों में स्थापित किए जानें वाले थे। यदि इनमें किसी प्रकार का मतभेद उत्पन्न हो जाए तो उसका निर्णय राजगुरु द्वारा नियुक्त धर्माधिकारी करने वाले थे।

जिस प्रकार पृथ्वीसेट्ठि का कनकाभिषेक महामंडलेश्वर ने किया था और समस्त विजयधर्म राज्य के राजगुरु पंडित आर्यभद्र के आदेश के अनुसार आगे भविष्य में, विजयनगर साम्राज्य के प्रथम पृथ्वीसेट्ठि की मुद्रा अपने हाथों सज्जित की थी, उसी प्रकार, होलेयों, पालेरों और बेसवागाओं

के श्रेष्ठि के रूप में टोटी का रौप्याभिषेक वायीजन पृथ्वीमेट्ठि के हाथों हुआ था और टोटी को भी मुद्रा भेट की गई थी !

इस प्रकार बेलगोला के लोक-जीवन में स्वस्थता आई थी। फिर से समस्त व्यवहार सुचारु रूप से चलने लगा था। परन्तु यह सब राय-रेखा की मर्यादा के अनुसार चल रहा था।

इस तरह चारों समय के महाधर्म धाम, महाश्रद्धा धाम, महाधर्म नगर—भागवतों का श्रीरंग, शैवों का पंपा, वीर शैवों का शिवकांची, और निगंठों—अर्थात् जैनों का बेलगोला, आदि धाम विजयनगर साम्राज्य के विजयधर्म के अंगभूत बन गए थे !

अब परम पुरुषार्थ की एक महान शतरंज बिछ गई थी। यह शतरंज भावी काल के ढाई सौ वर्षों तक खेली जाने वाली थी। और इस तरह इम शतरंज के चारों कोने मजबूत बनाए गए थे !

और भारत भर के सहस्रों वर्ष के महान इतिहास में पहली बार एक महान् साम्राज्य की स्थापना हुई थी—एक ऐसे साम्राज्य की, जो रूढ़ अर्थो में साम्राज्य नहीं था, वैराज्य नहीं था, आधिपत्य नहीं था, भौज्य नहीं था। सर्वांग रूप में इस साम्राज्य की स्थापना विक्रम संवत् १३९२ की वसंतपंचमी के धन्य दिवस के शुभ अवसर पर हुई !

सालुवा मांगी को इस समय कहीं चैन न था। सब कुछ हुआ, परन्तु किसी ने उससे कुछ पूछा तक न था ! उसका मान खंडित हुआ था परन्तु किसी ने, उसे सांत्वना तक देने की, नहीं सोची थी। उसका गौरव नीचे गिरा था, और किसी ने उसे आश्वासन भी नहीं दिया था। और तो ठीक, एक छोटे-से, नगण्य राजकीय पद की उसकी मुद्रा भी महाकर्णाधिप दादैया सोमैया ने वापस ले ली थी। और एक होलेय से कुछ ही ऊँचे—एक बेस-वागा भालारी बिबोया को दे दी थी और राय हरिहर ने तो इस विषय में कार्य-कारण की जाँच भी न की थी !

समर्थ ज्योतिषियों ने उसके आगामी काल के भविष्य में एक महान् साम्राज्य का योग बतलाया था ! ऐसे सालुवा मांगी, राजकुल के, खानदानी मांगी की ऐसी अवगणना ! ऐसा अपमान !

अब इंद्रगिरि पर्वत सर्वथा निर्जन था ! भगवान गोमटेश्वर की प्रतिमा जो सैंकड़ों-हजारों भक्तों से घिरी रहती थी, अब अपनी एकाकी भव्यता में विराजित थी। सचमुच के वल्मीक को भी भुला दे, ऐसा वल्मीक उसके नीचे पत्थर में खुदवाया गया था।

उस वल्मीक से पीठ टिकाकर, बिबोया बैठा था।

सालुवा मांगी वहाँ आया, बोला :

"अरे भावजी ! तुझे ढूंढ़ने के लिए मुझे पाँचसौ हाथ ऊँचा पहाड़ चढ़ना पड़ा ! मैंने सारे बेलगोला के चक्कर काट लिए, और तू तो यहीं बैठा मिला !"

बिबोया ने बैठे-बैठे ही सालुवा मांगी के सामने देखा।

"कहाँ गया वह तेरा सोमसामी ?" सालुवा ने पूछा।

"मुझे मालूम नहीं।"

"क्यों नहीं मालूम ? तेरे साथ ही तो वह आया था और फिर राय हरिहर के साथ वह नहीं गया—मुझे इसका विश्वास है। तो फिर वह गया कहाँ ?"

"तो, यहीं आस-पास ही कहीं होगा।"

"होगा ? तो वह यहाँ क्यों नहीं है ? तेरा तो वह भाई-बंधु था, न ?"

"जाने क्यों अब उसे मेरी भाईबंदी में शंका होती है। तुम्हारे ढूँढ़ने पर यदि वह तुम्हें मिल जाए तो, मेरा इतना-सा संदेश उसे कहना कि मुझे मिले।"

"मैंने सोचा, वह यहीं होगा। तीन दिन से खोजते-खोजते मेरे पैर घुटनों तक घिस गए हैं। अब फिर उसे कहाँ ढूँढ़ूँगा ?"

"क्यों, तुम तो कहते थे कि उससे तुम्हें बहुत ज़रूरी कोई काम है ?"

"वह तो है ही।"

बिबोया चुप रहा।

सालुवा ने कहा—"तुम जानते हो कि मेरा उससे क्या काम है ?"

"तुम्हें उससे क्या काम है ? कहने जैसा हो तो कहना ! मुझे किसी की निजी बातें जानने का शौक नहीं है।"

"भावजी ! तुम्हें जानने की इच्छा न हो, परन्तु मुझे तो है, न !"

"ऐसा तो क्या है ?"

"व ह, भूल गया ? वह मेरा साक्षी है—यदि वह भला है तो तू ने ही उसे खो दिया होगा ।"

"मैं सोमसामी को खो दूँ ? क्या भांग-वांग तो नहीं पी है ? मैं उसे क्यों खोने लगा ? मेरा तो वह पुराना भाई-बंधु है । उसे खोने से तो मेरी हानि ही होगी ।"

"वह तो मेरा साक्षी है ।"

"किसका ?"

"अरे वाह, भूल गया ? अपनी शर्त्त ?"

"शर्त्त ? कौन-सी शर्त्त ?"

"गोमती की शर्त्त......इसके लिए तो तू मुझे बड़ी-बड़ी चुनौतियाँ दे रहा था !"

'वही शर्त्त मैं हार गया हूँ । मुझे याद आयी । क्षमा करो । मैं तो साफ भूल गया था । लेकिन वह शर्त्त मैं हार गया हूँ । बस, इसीलिए ही तुम्हें सोमसामी की आवश्यकता थी ?"

"अरे भावजी, आप उस शर्त्त को हार गए हैं, इस को तो सारा देश जानता है । स्वयं दादैया सोमैया भी इस बात को जानते हैं । हार जाने के कारण अब तुझे 'स्थविर' और 'अंवेट्टि' का चुकास करना पड़ेगा । अतः मैं साक्षी के हेतु सोमसामी को ढूँढ़ रहा हूँ ।"

"इसमें भला, सोमसामी की ज़रूरत है ? सालुवा, हार-जीत के मूल्य चुकाने के लिए बिबोया को किसी साक्षी की आवश्यकता नहीं पड़ती ! दो दिन पूर्व ही मैंने ज़ीलन (सिलोन) पत्र लिखा है, शीघ्र ही वहाँ की मेरी जागीर और वहाँ के मेरे रामभद्र (हाथी), तुझे मिल जाएंगे !"

सालुवा मांगी कुछ देर बिबोया की ओर ताकता रहा ! बहुत कुछ वह कहना चाहता था, परन्तु अपने आपमें ही उसे रोक कर रख रहा था, और इस तरह हाथ के एक संकेत द्वारा उसने कहा—

"ठीक भावजी, हम तो अब ये चले ज़ीलन में निवास करने के लिए ! वहाँ न तो राय-रेखा है, न राजगुरु ही हैं और न राय हरिहर ही हैं। वहाँ तुर्क भी नहीं हैं ! लेकिन, जाते-जाते तुझे एक बात कहूँ क्या ? मैंने अपना समस्त जीवन नारी को पहचानने और जानने में बिता दिया है। इस दिशा में मैंने बहुत-कुछ खोया है और पाया भी बहुत है। और इसी के लिए निर्वासित हो रहा हूँ। अतः मेरे अनुभव की एक बात सुनता जा : इस संसार में नारी से अधिक सस्ती चीज़ दूसरी नहीं है, यदि हम जान-बूझ कर उसे महंगी न बना दें !"

—और सालुवा मांगी चल पड़ा ! चलते-चलते बोला : "लो भावजी, हम तो ये चले !" और वह इंद्रगिरि की सीढ़ियाँ उतरने लगा।

ढाल पर उसे सावनी मिली। सावनी ने उससे पूछा :

"भावजी, बिबोया ऊपर है ?"

"हाँ है ! क्यों ? तुम भी कोई शर्त्त पूरी करवाने जा रही हो क्या ? मेरा यह दोस्त सब से शर्त्तें ही बदता रहा है क्या ?"

सावनी आगे बढ़ने लगी।

तभी सालुवा मांगी बोला -"देखना बाई, तुम नवयुवती हो ! और उसके पास अब किसी नवयुवती के यौवन की सज्जा के लिए कुछ भी न रहा है।.......इसलिए चलो न उसे छोड़कर, मेरे साथ ? ज़ीलन में हमारी जागीर है। हमारे हाथी हैं। है क्या मन में तुम्हारे कुछ इच्छा ?"

सावनी पीछे न देख कर, ऊपर चढ़ने लगी।

"ठीक, जब तुम्हारी मरज़ी हो, तभी चली आना। तुम्हारे लिए मेरे द्वार सदैव खुले रहेंगे।"

और हँसता हुआ वह चला गया।

नीचे वरजांग मिल गया। सालुवा ने उससे कहा—

"क्यों अलायासेट्ठि ? अब तो तुम्हारे......"

वरजांग ने कुछ उत्तर न दिया और चलने लगा। वह मानो कुछ खोजता-सा इधर-उधर दृष्टि दौड़ा रहा था।

सावनी बिबोया के पास आई।

बड़ी देर तक खड़ी रही ।

अंत में पूछने लगी—

"तू चुप क्यों है ? कुछ कहता क्यों नहीं ? चल, मेरे घर चल !"

"सावनी, तू जा ! तेरा मेरा मेल सम्भव प्रतीत नहीं होता ! मैंने तेरे रंग-ढंग देख लिए हैं । तूने मेरे रंग-ढंग देखे हैं । टोटी कुम्भकार सेट्ठि की मुद्रा पहन कर तीर्थंकरों के धाम से बाहर आया है ।—वहीं तेरा भाग्य भी है । अपने हृदय का जितना रहस्य तू नहीं जानती, उतना मैं जानता हूँ । अरे टोटी...कुम्भकारसेट्ठि !"—बिबोया पुकार कर चिल्लाया !

टोटी उसके निकट आया । बिबोया से बोला—

"अरे, भावजी ! मैं तो आपको एकदम भूल गया हूँ । तुम्हारे विरुद्ध मैंने न्याय की माँग की, किंतु मैं न्याय लेना तो भूल ही गया ! काल के क्रम में कैसे कैसे परिवर्तन आते हैं !"

"तू चाहे मुझे भूल जाए लेकिन मैं तो तुझे नहीं भूला । यह रही तेरी अमानत, मेहरबानी करके इसे लिए जा ।"

फिर बड़ी देर तक बिबोया मूक और मूढ़ जैसा बैठा रहा । कुछ देर के बाद उसने आँख खोली तो देखा—उसके सामने वरजांग खड़ा है ।

"बिबोया, गोमती कहाँ है ?" उसने पूछा ।

"मुझे मालूम नहीं ।" बिबोया ने कहा ।

"सच बता दे, वह कहाँ है ? मैं तो उसे खोज-खोजकर थक गया हूँ । और याद रखना, यहाँ अब वह तेरा राय हरिहर नहीं है । अब तो मैं हूँ अलायासेट्ठि । तुझे जीवित ही जमीन में गाड़ दूँगा । समझता है कुछ ? बता, गोमती कहाँ है ?"

"बताऊँ ?" बिबोया धीमे-धीमे उठकर खड़ा हुआ । भयंकर और ठण्डी आँखों से वह वरजांग को देखता रहा । फिर उसने कहा—"सारे बेलगोला में कहीं वह होगी ही, लेकिन मेरे पास नहीं है ।"

वरजांग ने कहा—"ठीक है, ठीक है, देखता हूँ । तू यों नहीं माननेवाला है । अभी मैं अपने होलेयों को लेकर लौटता हूँ । तुझे बँधवाकर

जीवित ही चमड़ी उतरवाता हूँ। जानता है तू, मैं कौन हूँ? अलायासेट्ठि हूँ। अरे, अब तो तेरा राय हरिहर भी मेरा हाथ नहीं पकड़ सकता। जरा खड़ा रहना, मर्द का बेटा हो तो यहाँ से भागकर मत जाना! फिर देखता हूँ, कि खाल उधेड़ देने पर, तू मेरी गोमती का पता मुझे बतलाता है या नहीं!"

"वरजांग।" किसी की आवाज आई।

यंत्र-चालित पुतली की तरह वरजांग ने पीछे मुड़कर देखा। चौंककर पीछे की ओर घूमा—उसके पीछे ही गोमती खड़ी थी!

"गोमती!"

"वरजांग, तू जा, जिस काम का तू दावा कर रहा है, उस काम के लिए अब बेलगोला में एक भी होलेय नही है। तू जा और वायीजनश्रेष्ठि से बातचीत कर!"

'गोमती!'

"तू जा। मेरे पिता से मिल! जैसा वे कहें, वैसा ही करना!"

"मैं कुछ भी नहीं समझ रहा हूँ।"

"समझ जाएगा।" गोमती बोली—

"मेरे पिता तुझे समझा देंगे।"

वरजांग चला गया।

बिबोया धीमे-धीमे उठा।

"मैं बेसवागा भालारी, जीवन की अनेक बातों के खंडहर उलट-पुलट करने का काम मेरे लिए बच रहा है। बेलगोला छोड़ने से पहले, मैं दो मूर्तियों के दर्शनों का अभिलाषी था। एक तो भगवान गोमटेश्वर की मूर्ति का, उनके दर्शन मैं कर चुका। दूसरे तुम्हारा! मेरे वचन या कार्य से तुम्हारा जो कुछ मानापमान हुआ हो, तुम्हारे मन को आघात लगा हो, पीड़ा पहुँची हो, उसके लिए मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ! मैं जा रहा हूँ... और अब, फिर....कभी, हम मिलेंगे नहीं!"

"इस तरह तुम कैसे जा सकते हो ?"

गोमती ने कहा—"इतनी-सी देर में भूल गए ? तुम्हें तो यहीं रहकर अपना सारा जीवन होलेय के रूप में बिताना है !"

"मेरी उपस्थिति से तुम्हारा अपमान होता है, यह सोचकर ही मैं जा रहा था। वैसे, मेरा शेष जीवन तो यहाँ या और कहीं, होलेय के रूप में ही व्यतीत होने वाला है। इस बात को मैं भूला नहीं हूँ !"

"यदि, फिर कभी ऐसा जूआ न खेलने का वचन दे सकते हो, तो मैं तुम्हें मुक्त करती हूँ।"

"जूआ खेलने के लिए, अब मेरे पास रह ही क्या गया है ?"

"सच बात है। किन्तु मुझे, मन ही मन डर लगता है। यह तो तुमने सुना होगा कि हारा हुआ जुआरी दूना दाँव लगाता है। लेकिन जीता हुआ जुआरी यदि दूसरी बार खेले, तो मैं कहाँ जाऊं ?"

"गोमती !"

"मेरे नाथ !"

तभी सोमसामी एक ओर से निकल आया। हँसकर वह कहने लगा—

"अहा ! अब हमारा मिलन होगा। शेष तो, मैं तुम से डर रहा था ! मेरा मन कहता था, बच्चा सोमसामी, जान अगर प्यारी हो तो, बिबोया के सामने न जाना !"

और सबके चेहरे पर मौन की मधुरता खेलने लगी !